महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
(A Central University Established by Parliament by Act No.3 of 1997)

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)
द्वितीय सेमेस्टर

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट - हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
श्री अनुराग कुमार पाण्डेय

खंड - 2
श्री अनुराग कुमार पाण्डेय

खंड – 3
श्री रविन्द्र कुमार

खंड -4
श्री गजानन निलामे

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
अनुभाग अधिकारी, दू.शि. निदेशालय

सुश्री शिल्पा एवं श्री प्रवेश कुमार
सहायक, दू.शि. निदेशालय

श्री हरीश चंद्र शाह
तकनीकी सहायक, दू.शि. निदेशालय

श्री महेन्द्र प्रसाद
संपादकीय सहायक, दू.शि. निदेशालय

सुश्री मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

आवरण पृष्ठ
सुश्री मेघा आचार्य

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 - सामाजिक गतिकी एवं परिवर्तन**	3
	इकाई - 1 प्रवासन	4-13
	इकाई - 2 ग्रामीण - शहरी द्वंद्व	14-24
	इकाई - 3 उद्योगीकरण एवं वैश्वीकरण	25-32
	इकाई - 4 परिवर्तनशील व्यावसायिक संरचना एवं उदारीकरण का प्रभाव	33-41
2	**खंड - 2 - विकास की अवधारणाएं**	2
	इकाई - 1 सामाजिक और मानव विकास	43-53
	इकाई - 2 सतत विकास	54-61
	इकाई - 3 विकास और प्रगति: आर्थिक और सामाजिक आयाम	62-71
	इकाई - 4 विकास का जेंडर परिप्रेक्ष्य	72-81
	इकाई - 5 जनसंख्या और विकास	82-89
3	**खंड - 3 - विकास: मानव अधिकार परिप्रेक्ष्य**	90
	इकाई - 1 संविधान के सामाजिक आदर्श	91-105
	इकाई - 2 सामाजिक कार्य और मानवाधिकार	106-113
	इकाई - 3 हितकारी अर्थव्यवस्था और विकास	114-122
	इकाई - 4 भारतीय न्यायिक प्रणाली	123-133
4	**खंड - 4 - सामाजिक विधान**	134
	इकाई - 1 महिलाओं एवं बालकों /बालिकाओं के लिए कानूनी प्रावधान	135-153
	इकाई - 2 बुर्जुगों एवं विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के लिए कानून	154-168
	इकाई - 3 आदिवासियों के लिए कानून	169-182
	इकाई - 4 सामाजिक विधान के समकालीन संदर्भ	183-192

MSW 09 समाज कार्य एवं सामाजिक विकास

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (द्वितीय सत्र) के प्रश्नपत्र **MSW 09 समाज कार्य एवं सामाजिक विकास** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को चार खंडों में विभाजित किया गया है।

पहले खंड में सामाजिक गतिकी एवं परिवर्तन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रवासन,ग्रामीण-शहरी द्वंद्व,उद्योगीकरण एवं वैश्वीकरण एवं उसके प्रभावों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

दूसरे खंड में विकास की अवधारणा की चर्चा की गई है। सामाजिक और मानव विकास की अवधारणा को समझाते हुए सतत विकास का उल्लेख किया गया है। विकास और प्रगति के सामाजिक और आर्थिक आयामों को एकसाथ समझने का प्रयास किया गया है। विकास के जेंडर परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डाला गया है।

तीसरे खंड में विकास को मानवाधिकार परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। इस कड़ी में संविधान के सामाजिक आदर्शों का उल्लेख किया गया है। सामाजिक कार्य और मानवाधिकार के बीच संबंधों का वर्णन किया गया है। हितकारी अर्थव्यवस्था और विकास के आपसी संबंधों की चर्चा करते हुए न्यायिक प्रणाली को बताया गया है।

चौथे खंड में भारत में विद्यमान विभिन्न सामाजिक विधानों की चर्चा की गई है। जिसमें महिलाओं, बालक/बालिकाओं,आदिवासियों के लिए बने विधानों का उल्लेख किया गया है। साथ ही सामाजिक विधानों के समकालीन संदर्भों की चर्चा भी की गई है।

खंड - 1

सामाजिक गतिकी एवं परिवर्तन

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 1
प्रवासन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रवासन: संकल्पना और अर्थ
1.3 प्रवासन के प्रकार व पक्ष
1.4 प्रवासन के प्रवाह
1.5 प्रवासन के कारक
1.6 प्रवासन के परिणाम
1.7 सारांश
1.8 बोध प्रश्न
1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- प्रवासन की संकल्पना और अर्थ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रवासन के प्रकार व उसके विभिन्न पक्षों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रवासन के प्रवाह व उसके कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रवसन के परिणाम का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रवासन एक प्रक्रिया है, जो निरंतर क्रियाशील रहती है। मानव समुदाय एक समूह के रूप में ऐच्छिक और अनैच्छिक कारणों से सदैव स्थानांरित होता रहा है, वह बेहतर भविष्य और जीविकोपार्जन की कामना लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करता रहा है। प्रवासन,मनुष्य समुदायों का दिन और रात तथा गर्मी-सर्दी-बरसात, सूखा आदि ऋतुओं की पर्यावरण आवर्तिता की अथवा किसी आंतरिक लय के प्रतिक्रियास्वरूप, अक्षांश, देशांतर या उन्नतांशों में निर्गमन व प्रत्यागमन से संबंधित है। प्रवासन अनिवार्यत: दोतरफा प्रक्रिया है, अर्थात् किसी स्थानविशेष से आवर्ती प्रस्थान और उसी स्थान को पुन: प्रत्यागमन। प्रस्थान और प्रत्यागमन की दिशाएँ बारी-बारी से परिवर्तित होती रहती हैं।

1.2 प्रवासन: संकल्पना और अर्थ

प्रवासन एक सामाजिक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया उतनी ही पुरातन है, जितनी कि स्वयं मानव सभ्यता। सभी कालों में किसी-न-किसी रूप में हम प्रवासन की उपस्थिति को देख सकते हैं। मानव समाज के विकास और अन्य स्थानों में सभ्यता, संस्कृति आदि के विकास में लोगों द्वारा किया गया प्रवासन उल्लेखनीय भूमिका निभाता है। इसी प्रवासन ने एक संस्कृति को अन्य समाजों तक पहुँचने का काम किया है और साथ ही वहाँ की संस्कृति को अपने समाज से जोड़ने का भी। खानाबदोशी काल, शिकारी काल, पशुचारण काल आदि में मनुष्यों ने बहुत यात्राएं की हैं, वे एक स्थान से दूसरे स्थान संचरण किया करते थे और यही कारण है की सभ्यता और संस्कृति का विकास संभव हो पाया। यह संचरण की संस्कृति आज भी भारत सहित एशिया, लेतीं अमेरिका और अफ्रीका देशों के चरागाही समुदायों में विद्यमान है। प्रवासन एक प्राकृतिक नियम है और सदैव से लोग दूसरे देशों को गमन करते रहे हैं, जीविकोपार्जन करते रहे हैं, बसते रहे हैं। पहली पीढ़ी प्रवासी ही होती है, सदियाँ या फिर पीढ़ियाँ बीत जाने के बाद वह देश अथवा स्थान पूरी तरह उनका हो जाता है। दूसरे देश की नागरिकता प्राप्त होने के बाद भी उन्हें उनके मूल देश से ही पहचान मिलती है। यदि भारत की बात करें तो यहाँ कभी आर्य आए, फिर कुछ मुस्लिम सल्तनत आई, मुगल आए जो यहीं के बाशिंदे हो गए, अंग्रेज़ आए जो बहुत वर्षों तक शासन कर वापस लौट गए। आस्ट्रेलिया, अमेरिका, न्यूज़ीलैंड की तो पूरी जनसंख्या ही यूरोपीय मूल की है। वहाँ के मूल निवासी रैड इंडियन और ऐबोरीजनल, तो कभी भी मुख्य धारा में आ ही नहीं पाए, ना उन्हें मुख्यधारा में लाने का प्रयत्न किया गया। प्रवासी यूरोपीय समुदायों ने वहाँ की प्राकृतिक संपदा व संसाधनों का जहां तक संभव था इस्तेमाल किया और अपना देश बनाया, अपने मूल देशों से अलग हो गए।

जनसंख्या के किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसने की प्रक्रिया को प्रवासन कहा जाता है। इसमें लोगों द्वारा कुछ दूरी को तय करना और उनके निवास स्थान में बदलाव होना अनिवार्य शर्त होती है। सामान्य तौर पर जन्म दर अथवा मृत्यु दर से जनसंख्या का प्रवासन प्रभावित होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2005 में विश्व जनसंख्या का लगभग 3% अपने जन्म के मूल देश से दूसरे देश की ओर प्रवासित हुई है। कैसल और मिलर का मानना है कि आवागमन और संचार तकनीकी में क्रांतिकारी परिवर्तन के परिणामस्वरूप वर्तमान शताब्दी को निःसंदेह 'प्रवासन युग' की संज्ञा दी जा सकती है। भारत में, 2001 की जनगणना के अनुसार, देश में कुल आंतरिक विस्थापितों की संख्या 30.9 करोड़ से ज़्यादा थी। NSSO के 2007-08 के आंकड़ों के अनुसार, कुल आबादी का लगभग 30 प्रतिशत अर्थात् 32.6 करोड़ जनसंख्या आंतरिक प्रवासी थी। इसमें सबसे अधिक महिलाओं की संख्या (70 प्रतिशत से अधिक) है। एक सामान्य धारणा है कि यह तबका सदैव से समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन से वंचित रहा है और इनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। वर्ष 2011 की जनगणना से प्राप्त आकड़ों के अनुसार, कुल आंतरिक विस्थापितों की

संख्या 40 करोड़ तक पहुंच चुकी थी। हालांकि, इसके मापन की सैद्धांतिक कठिनाईयों के कारण इस आंतरिक विस्थापन के आकलन में उतार-चढ़ाव पाया गया है। इसके बावजूद यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दस में प्रत्येक तीसरा भारतीय आंतरिक विस्थापन से जुड़ा हुआ है।

1.3 प्रवासन के प्रकार व पक्ष

प्रवासन को कई कारकों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है–

- **अभिप्रेरणा के आधार पर**
    1. आर्थिक प्रवासन
    2. सामाजिक प्रवासन
- **काल के आधार पर**
    1. दीर्घकालीन प्रवासन
    2. लघुकालीन प्रवासन
- **देश के आधार पर**
    1. अंतरमहाद्वीपीय प्रवासन
    2. अंतरराष्ट्रीय प्रवासन
    3. अंतरप्रांतीय प्रवासन
    4. स्थानीय प्रवासन
- **सामाजिक संगठन के आधार पर**
    1. व्यक्तिगत प्रवासन
    2. पारिवारिक प्रवासन
    3. सामुदायिक प्रवासन
- **दूरी के आधार पर**
    1. लंबी दूरी से संबंधित प्रवासन
    2. छोटी दूरी से संबंधित प्रवासन
- **दिशा के आधार पर**
    1. उत्प्रवास प्रवासन
    2. अप्रवास प्रवासन

प्रवासन के पक्ष

प्रवासन के निम्न पाँच पक्ष होते हैं और इन्हीं के आलोक में प्रवासन पर विमर्श किया जाता है–

ज्ञान शांति मैत्री

1. **देश पक्ष-** इस पक्ष में इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि किस क्षेत्र अथवा प्रदेश से जनसंख्या किस क्षेत्र अथवा प्रदेश के लिए गमन कर रही है-
   i. **अंतरमाहाद्वीपीय प्रवासन-** इसमें प्रवासन एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप को होता है। 16वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक यूरोपीय आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका आदि महाद्वीपों में जाकर बसने लगे। वर्तमान समय में भारत तथा अन्य विकासशील देश बेहतर रोज़गार व उच्च जीवन गुणवत्ता कि आशा से विकसित देशों को प्रवासन करते हैं।
   ii. **अंतरराष्ट्रीय प्रवासन-** एक ही महाद्वीप के दो देशों के मध्य जनसंख्या के स्थानांतरण को इस प्रवासन के अंतर्गत रखा जाता है। भारत के विभाजन के दौरान लाखों कि संख्या में हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख स्थानांतरित हुए थे।
   iii. **अंतरप्रांतीय प्रवासन-** इस प्रवासन में एक राज्य से दूसरे राज्य की ओर लोग स्थानांतरित होते हैं। 60 के दशक में हरित क्रांति के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से बहुत से श्रमिक पंजाब की ओर प्रवासित हुए थे।
   iv. **स्थानीय प्रवासन-** यह प्रवासन एक ही प्रांत के दो स्थानों के मध्य होता है। इसमें प्रमुखतः चार धाराएँ पाई जाती हैं–
      - ग्राम से नगर की ओर
      - ग्राम से ग्राम की ओर
      - नगर से ग्राम की ओर
      - नगर से नगर की ओर

2. **काल पक्ष-** इस पक्ष के तहत समय के सापेक्ष प्रवासन का अध्ययन किया जाता है–
   i. **दीर्घकालीन प्रवासन-** जब प्रवासन एक लंबे काल के लिए होता है। 17वीं, 18वीं व 19वीं शताब्दियों में स्पेन व पुर्तगाल से दक्षिण अमेरिका और ब्रिटेन, जर्मनी व फ्रांस से उत्तरी अमेरिका के लिए इस प्रकार के कई प्रवासन हुए हैं।
   ii. **सामयिक/मौसमी प्रवासन-** यह प्रवासन किसी निश्चित समय अथवा ऋतु से संबंधित होता है। वर्तमान समय में उत्तरी भारत में गन्ने की फसल के तैयार होते ही मज़दूरी हेतु चीनी मीलों की ओर स्थानांतरण किया जाता है।
   iii. **दैनिक प्रवासन-** इसमें लोग प्रतिदिन जीविकोपार्जन के लिए प्रवासन करते हैं।

ज्ञान शांति मैत्री

3. **कारण पक्ष-** प्रवासन के कारण हो सकते हैं–

i. **भौतिक प्रवासन-** भौतिक कारणों से प्रवासन बड़े पैमानों पर हुआ है। हिमयुग में हुआ प्रवासन, ऐतिहासिक काल में मध्य एशिया की जलवायु के शुष्क हो जाने से हुए प्रवासन, वर्तमान समय में राजस्थान व गुजरात में सूखे के कारण होने वाले अल्पकालीन प्रवासन, गंगा बेसिन के किनारे बसे लोगों का प्रवासन आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

ii. **आर्थिक प्रवासन-** आर्थिक दशा के कारण होने वाले प्रवासन को इस श्रेणी के अंतर्गत रखा जाता है। प्रमुख आर्थिक कारण निम्न हैं–

- जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि और जीवन निर्वाह के साधनों में कमी
- दूसरे प्रदेशों में नवीन कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता
- अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ भूमि का आकर्षण
- सिंचाई की उपयुक्त व्यवस्था
- उद्योगीकरण विकास
- खनिज संपदा की प्राप्ति
- यातायात और व्यापार की सुविधा

iii. **सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवासन-** भारतीय समाजों में रीति-रिवाज और परंपराओं के कारण भी प्रवासन होते हैं। विवाह के पश्चात महिला का पुरुष के घर जाकर रहना इसी प्रकार का प्रवासन है। धार्मिक कारणों से भी प्रवासन होते हैं, यथा- 10वीं शताब्दी में इस्लाम धर्म के प्रचारकों का ईरान की ओर बढ़ने से पारसी परिवारों का गुजरात व महाराष्ट्र की ओर किया गया प्रवासन।

iv. **राजनीतिक प्रवासन-** राजनीतिक कारणों से जनसंख्या का स्थानांतरण प्रमुख रूप से निम्न क्रियाओं के फलस्वरूप होता है–

- आक्रमण
- विजय
- उपनिवेश
- बलात् अथवा बाध्य प्रवासन

v. **जनसांख्यिकीय प्रवासन-** जनसंख्या में वृद्धि होने से संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न होता है, जिसके परिणामस्वरूप इस प्रकार का प्रवासन अस्तित्व में आता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के मज़दूर जनसंख्या के दबाव के कारण ही पंजाब की ओर स्थानांतरित होते हैं।

4. **संख्या पक्ष-** यह प्रवासन के इस अध्ययन से संबंधित है कि किस स्थान अथवा प्रदेश से कितनी जनसंख्या स्थानांतरित हुई है। यह तीन प्रकार का होता है–
   - बृहत संख्या प्रवासन
   - मध्यम संख्या प्रवासन
   - अल्प संख्या प्रवासन

5. **स्थिरता पक्ष-** कुछ प्रवासन स्थायी तौर पर होते हैं। यूरोपीय जातियों का आस्ट्रेलिया, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका में किया गया पलायन चिरस्थायी था और वे वहीं जाकर बस गए।

1.4 प्रवासन के प्रवाह

एक ही देश की सीमाओं में रहकर प्रवासन मुख्य रूप से चार प्रवाहों को उत्पन्न करता है–

1. **ग्राम से ग्राम की ओर प्रवासन-** ग्रामीण भारत की अर्थव्यवस्था पूर्ण रूप से कृषि व्यवसायों पर आधारित रहती है। लोग फसल कटाई, बुवाई अथवा दोनों के लिए एक गाँव से दूसरे गाँव को स्थानांतरित होते रहते हैं। जनन स्थान के लोग गंतव्य स्थान पर खेतों में काम करने के उद्देश्य से जाते हैं और ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जनन स्थान पर खेती के अवसर कम मात्रा में उपलब्ध हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि जनन स्थान में जनसंख्या की अधिकता हो, जिसके कारण पर्याप्त मात्रा में काम उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। इस प्रवासन में अधिक संख्या पुरुषों की होती हैं।
2. **ग्राम से शहर को ओर प्रवासन-** ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर गमन एक सामान्य घटना है। यह प्रवासन मुख्य रूप से उद्योगीकरण विकास के कारण उत्पन्न रोज़गार के अवसरों को प्राप्त करने के लिए होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती निर्धनता, शिक्षा का अभाव, स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी, अपेक्षाकृत कम रोज़गार के अवसर, कम व अनिश्चित वेतन आदि प्रमुख कारण जनसंख्या को शहर प्रवासन के लिए प्रेरित करते हैं।

3. **शहर से शहर की ओर प्रवासन-** समान्यतः इस प्रकार का प्रवासन आर्थिक दशा को समृद्ध करने से संबंधित होता है। इसमें लोग छोटे शहरों से बड़े शहरों को उच्च आर्थिक रोज़गार अवसरों की तलाश हेतु पलायन करते हैं। साथ ही बड़े शहरों में आर्थिक के अलावा सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों से संबंधित सुविधाएं भी उपलब्ध रहती हैं, जो प्रवासन हेतु लोगों को आकर्षित करती हैं।
4. **शहर से ग्राम की ओर प्रवासन-** शहर से ग्राम की ओर प्रवासन एक प्रकार का प्रति-प्रवाह है। यह प्रवासन इसलिए होता है, क्योंकि शहरों के अतिसंकुल व पर्यावरणीय प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं व खराब स्वास्थ्य की समस्याओं, आवास संबंधी समस्याओं के कारण लोगों का शहर में रहना दूभर हो जाता है। इनके अलावा कुछ प्राकृतिक दशाएँ भी हैं, जिनके कारण लोग शहर से गाँव की ओर प्रवासन करते हैं।

1.5 प्रवासन के कारक

प्रवासन के प्रमुख कारक निम्न उल्लेखित हैं–

1. **आर्थिक कारक-** सामान्य तौर पर सबसे अधिक जनसंख्या स्थानांतरण आर्थिक समृद्धि के कारण ही होता है। कृषि व्यवसाय, भूमि की अनुपलब्धता और जोतों का आकार आदि प्रवासन को प्रेरित करने वाले कारक हैं। लोगों की अवनति, आर्थिक दशाएँ और उनके निर्धनता की परिस्थिति उन्हें प्रवासन की ओर उन्मुख करती है। उद्योगीकरण एवं कृषि प्रधान देशों में अद्योगिक केंद्र और इसके साथ ही ग्रामीण दबाव भी इसके लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं।
2. **सामाजिक कारक-** आर्थिक कारकों की ही भांति सामाजिक कारक भी इसके लिए प्रमुख दशाएँ उत्पन्न करते हैं। महिला विवाह के पश्चात अपने पति के घर जाकर रहने लगती है, यह सामाजिक कारक ही हैं, जो उसे प्रवासन के लिए विवश करते हैं। भारतीय समाज में एक निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर पर जीवन-यापन करने वाले लोग समान्यतः अधिक गतिशील होते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उनके पास भूमि संपदा का अभाव होता है, जिसके कारण वे किसी भौगोलिक बंधन में बंध नहीं पाते हैं।
3. **जनसांख्यिकीय कारक-** जनसांख्यिकीय कारक भी प्रवासन के लिए आवश्यक दशाएँ उपलब्ध कराते हैं। प्रवासी की आयु प्रवासन के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। जनसंख्या में वृद्धि भी प्रवासन के लिए प्रेरित करती है। उत्तर प्रदेश और बिहार में होने वाला प्रवासन जनसंख्या की अधिकता और संसाधनों की पर्याप्त मात्रा में अनुपलब्धता के कारण ही होता है।

1.6 प्रवासन के परिणाम

इस सामाजिक प्रक्रिया के कारण प्रवासी, प्रवासी गंतव्य क्षेत्र और प्रवास जनन क्षेत्र तीनों प्रभावित होते हैं। प्रवासन के परिणाम मुख्य रूप से चार होते हैं–

1. **जनसांख्यिकीय-** प्रवासन से जनन क्षेत्र की जनसंख्या कम होती है जबकि गंतव्य क्षेत्र की जनसंख्या में बढ़ोतरी होती है। जनसंख्या के इस मात्रात्मक परिवर्तन के इतर गुणात्मक परिवर्तन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रवास प्रक्रिया से सभी जनसांख्यिकीय लक्षणों (यथा- घनत्व वृद्धि, आयु, लिंग, उत्पादकता, शिक्षा आदि) में परिवर्तन होता है। प्रवासन मुख्य रूप से आयु, लिंग व तकनीकी कौशल पर निर्भर करता है और यह प्रवासीय प्रवृत्ति प्रायः नवयुवकों में अधिक परिलक्षित होती है। गंतव्य स्थान पर आजीविका हेतु जाने वाले प्रवासियों को बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है और समायोजन हेतु अपेक्षाकृत उवा जनसंख्या अधिक उपयुक्त होती है। प्रवासन में आयु व लिंग संबंधी अनुपात में अंतर देखा जा सकता है। गंतव्य स्थान पर महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों के अनुपात में वृद्धि हो जाती है और इसके विपरीत जनन स्थान पर महिलाओं और वृद्ध लोगों के अनुपात में वृद्धि हो जाती है। इन घटनाओं के कारण जन्म दर व मृत्यु दर प्रभावित होता है। जनन क्षेत्र से तकनीकी रूप से कुशल व दक्ष लोगों के पलायन के कारण वहाँ की गुणवत्ता का पलायन होता है, जिसे **प्रतिभा पलायन** के नाम से संबोधित किया जाता है। इससे गंतव्य स्थान की गुणवत्ता उच्च हो जाती है और जनन क्षेत्र की गुणवत्ता निम्न हो जाती है।
2. **सामाजिक व सांस्कृतिक-** प्रायः लोग रोज़गार व आजीविका हेतु शहरों की ओर पलायन करते हैं। जिस मात्रा में लोग शहरों की ओर प्रवासन करते हैं, उस मात्रा में शहर की आधारभूत संरचना में परिवर्तन नहीं हो पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वहाँ रोज़गार के अवसर कम होने लगते हैं, जिससे समाज कल्याण, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, परिवहन आदि सुविधाओं पर अतिरिक्त बोझ पड़ने लगता है। इसके कारण शहर में मलिन बस्तियों में वृद्धि होने लगती है और आपराधिक प्रवृत्तियों में भी बढ़ोतरी होने लगती है। इसके अलावा शहर में भीड़ व बेरोज़गारों की संख्या में भी इजाफा होने लगता है।

   प्रवासी व्यक्ति की अपनी संस्कृति व सभ्यता होती है, जिसे वह गंतव्य स्थान पर भी लेकर जाता है। चूंकि शहरों में भूमि के अभाव के कारण कई संस्कृतियों व क्षेत्रों और कई धर्मों, जातियों, संप्रदायों, मतों आदि के लोग एक-साथ रहते हैं, जिसके कारण आए दिन उनमें द्वेष, कलह आदि की घटनाएँ घटती रहती हैं। कनाडा में फ्रेंच व अंग्रेज़ी और दक्षिण अफ्रीका में डच व अंग्रेज़ी भाषी लोगों के मध्य झगड़े होते रहते हैं।

3. **आर्थिक-** प्रवासन के कारण जनन व गंतव्य स्थानों में जनसंख्या व संसाधनों के मध्य असंतुलन व्याप्त हो जाता है। यदि लोगों का प्रवासन कम जनसंख्या व अधिक संसाधनों से संबंधित क्षेत्र की ओर होता है, तो इससे बहुत लाभ होता है। प्रवासी लोग जनन क्षेत्र को अपनी आय का कुछ भाग भेज देते हैं, जिसके कारण जनन क्षेत्र की आर्थिक उन्नति होती है। एक अन्य परिवर्तन यह होता है कि जनन क्षेत्र से नवयुवकों व कुशल लोगों का प्रवासन हो जाने के कारण वहाँ के संसाधनों का समुचित मात्रा में उपयोग नहीं हो पाता है।
4. **शारीरिक-** प्रवासन में कई बार लोगों के विवाह हो जाते हैं। इससे नस्लीय परिवर्तन होने का डर रहता है। कई बार प्रवासन से लोग नई जगह पर सहज नहीं हो पाते हैं; कुछ लोगों को इसमें कुछ समय लगता है, तो कुछ लोगों में कुछ शारीरिक समस्याएँ पनपने लगती हैं। इसके अलावा गंतव्य क्षेत्र अथवा जनन क्षेत्र कि बीमारियों को फैलाने के लिए भी प्रवासन उत्तरदायी हो सकता है। विभिन्न बीमारियों, यथा- मलेरिया, एड्स, स्वाइन फ्लू आदि के फैलाव का कारण प्रवासन ही है।

1.7 सारांश

इस इकाई प्रवासन की संकल्पना और अर्थ पर प्रकाश डाला गया। वर्तमान समय में वैश्वीकरण के दौर में प्रवासन और तेज़ी से फैलता चला जा रहा है। विशेषकर प्रादेशिक प्रवासन और यह समाज की प्रकृति को निरंतर परिवर्तित कर रहा है। इस आधार पर प्रवासन एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया बनती चली जा रही है और इसे विश्लेषित करना एक आवश्यक पहलू बन जाता है। इसके अलावा इस इकाई में प्रवासन के प्रकार व विविध पक्षों को बताया गया और इसके प्रवाह, उत्तरदायी कारक व प्राप्त परिणामों के बारे में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञान शांति मैत्री

1.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: प्रवासन की संकल्पना और अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 2: प्रवासन के प्रकार और उसके विविध पक्षों पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 3: प्रवासन के प्रवाह और उसके लिए उत्तरदायी कारकों का वर्णन कीजिए।

बोध प्रश्न 4: प्रवासन के परिणामों को विश्लेषित कीजिए।

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

हुसैन, एम. (2005). *ह्यूमन ज्योग्राफी*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

लहरी, एस. (2011). *माइग्रेशन, हेल्थ एंड डेवेलपमेंट*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

राव, एम.एस.ए. (1986). *स्टडीज़ इन माइग्रेशन: इंटर्नल एंड इन्टरनेशनल माइग्रेशन इन इंडिया*. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

कपूर, डी. (2010). *डाइस्पोरा, डेवेलपमेंट एंड डेमोक्रेसी: ड डोमेस्टिक इंपेक्ट ऑफ इन्टरनेशनल माइग्रेशन फ्राम इंडिया*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इंडिया

मुखर्जी, श. (2013). *माइग्रेशन इन इंडिया: लिंक्स टू अर्बनाइजेशन, रिजनल डिसपार्टीज़ एंड डेवेलपमेंट पोलिसिज*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

चन्दना, आर.सी. (2007). *ज्योग्राफी ऑफ पोपुलेशन्स: कन्सेप्ट्स, डिटर्मिनेंट्स एंड पेटर्न्स*. नई दिल्ली: कल्याणी पब्लिशर्स

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2
ग्रामीण-शहरी द्वंद

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 ग्रामीण समाज: अर्थ एवं परिभाषा
2.3 ग्रामीण समाज की विशेषताएँ
2.4 भारतीय गावों की सामाजिक संरचना
2.5 शहरी समाज: अर्थ एवं परिभाषा
2.6 शहरी समाज की विशेषताएँ
2.7 शहरी सामाजिक संरचना
2.8 ग्रामीण व शहरी विभेद
2.9 सारांश
2.10 बोध प्रश्न
2.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- ग्रामीण समाज की अवधारणा व विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- भारतीय गावों की सामाजिक संरचना का विश्लेषण कर सकेंगे।
- शहरी समाज और उसकी विशेषताओं को प्रदर्शित कर सकेंगे।
- शहरी सामाजिक संरचना का वर्णन कर सकेंगे।
- ग्रामीण व शहरी विभेद को विश्लेषित कर पाएंगें।

2.1 प्रस्तावना

मानवीय निवास स्थानों की व्याख्या विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में की गई है और इन व्याख्याओं के प्रमुख आधार के रूप में जनसंख्या, मकानों की संरचना, प्रशासन व वैधानिक तथा सरकार को चयनित किया गया। इन आधारों पर निवास स्थानों को कई भागों में वर्गीकृत किया गया है, जिंसमें पुरवा, गाँव, कस्बा, शहर/नगर, महानगर, प्रदेश अथवा क्षेत्र आदि प्रमुख हैं। इस इकाई में ग्रामीण और

शहरी समुदायों पर विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा, जो मानव के सामाजिक जीवन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं।

2.2 ग्रामीण समाज: अर्थ एवं परिभाषा

विभिन्न विद्वानों द्वारा 'ग्रामीण' शब्द की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि वह क्षेत्र ग्रामीण कहा जाएगा जहां आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से पिछड़े लोग रहते हैं। वहीं कुछ विद्वानों का मानना है कि उस क्षेत्र को ग्रामीण की संज्ञा दी जा सकती है, जहां मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि को अपनाया गया हो। कुछ विद्वानों का यह मत है कि वह क्षेत्र जो शहरी विशेषताओं के विपरीत है, वह ग्रामीण है। **बरट्रैंड** के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के निर्धारण में प्रमुख रूप से दो तत्व होते हैं–

1. कृषि व्यवसाय द्वारा आय की व्यवस्था अथवा जीवन-यापन
2. न्यून जनसंख्या घनत्व वाला क्षेत्र

- **सेंडरसन-** *"एक ग्रामीण समुदाय में स्थानीय क्षेत्र के लोगों की सामाजिक अंतःक्रिया और उनकी संस्थाएं शामिल होती हैं, जिसमें वह खेतों के चारों ओर व बिखरी झोपड़ियों तथा पुरवा अथवा ग्रामों में रहती है और जो उनके सामान्य क्रियाकलापों का केंद्र है।"*
- **फेयरचाइल्ड-** *"ग्रामीण समुदाय, पड़ोस की तुलना में व्यापक क्षेत्र है, जिसमें आमने-सामने के संबंध पाए जाते हैं, जिसमें सामूहिक जीवन के लिए अधिकांशतः सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक व अन्य सेवाओं की आवश्यकता होती है और जिसमें मूल अभिवृत्तियों और व्यवहारों के प्रति सामान्य सहमति होती है।"*
- **मैरिल एवं एलरिज-** *"ग्रामीण समुदाय के अंतर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है, जो छोटे से केंद्र के चारों ओर संगठित होते हैं और सामान्य से प्राकृतिक हितों की भागीदारी करते हैं।"*
- **इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेस-** *"एकाकी परिवार से बड़ा संबंधित एवं असंबंधित लोगों का समूह जो एक बड़े मकान अथवा निवास के कई स्थानों पर रहता हो, घनिष्ठ संबंधों से जुड़ा हो और कृषि योग्य भूमि पर मूल रूप से संयुक्त रूप से कृषि करता हो, ग्राम कहा जाता है।"*

उपर्युक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण समुदाय वह है, जहां कृषि मुख्य व्यवसाय हो, प्राकृतिक संबंधों की उपलब्धता हो, जनसंख्या न्यून हो, प्रकृति से निकटता हो, सामाजिक एकरूपता हो, दृष्टिकोणों और व्यवहारों-विचारों आदि में सहमति हो आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं।

2.3 ग्रामीण समाज की विशेषताएँ

ग्रामीण समुदाय की विशेषताएँ निम्नवत हैं–

1. ग्रामीण लोग जीवन-यापन के लिए प्रकृति पर निर्भर होते हैं। इनके प्रमुख कार्य कृषि आधारित व्यवसाय, पशुपालन, शिकार, मछली मारना और भोजन की व्यवस्था करना आदि होते हैं। भूमि, जंगल, मौसम आदि प्रकृति के अंग होते हैं और ये दशाएँ ग्रामीण जीवन को प्रभावित करती हैं।
2. प्रकृति पर निर्भरता के साथ-साथ इनका प्रकृति के प्रति घनिष्ठ संबंध भी रहता है। ये प्रकृति के निकट रहते हैं।
3. ग्रामीण समुदाय आकार में छोटा होता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि कृषि और पशुपालन आधारित जीवन-यापन के लिए प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा अधिक होनी चाहिए, ताकि सभी का निर्वाह आसानी से हो सके।
4. आकार छोटा होने के कारण सभी लोग एक-दूसरे को निजी तौर पर जानते हैं। ग्रामीण समुदाय में प्राथमिक संबंधों की प्रधानता होती है और उनमें घनिष्ठ, निकट और प्रत्यक्ष संबंध पाए जाते हैं।
5. आकार छोटा होने और प्राथमिक संबंधों की प्रधानता के कारण उनमें 'हम' की भावना पाई जाती है अर्थात ग्रामीण समुदायों में सामुदायिक भावना का समावेश होता है। बाढ़, भूकंप, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाओं व अन्य संकटकालीन अवसरों पर सभी लोग उसका सामना एकजुट होकर करते हैं।
6. विभिन्न विद्वानों द्वारा भारतीय ग्रामीण समुदायों को एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह आत्मनिर्भरता सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में देखी जा सकती है। जजमानी प्रथा, ग्राम पंचायत, विशेषीकृत संस्कृति आदि वे विशेषताएँ हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में पाई जाती है।
7. संख्या में भी ग्रामीण समुदाय अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। कम जनसंख्या घनत्व होने के कारण ग्रामीण समुदाय विभिन्न समस्याओं (बीमारी, मकानों का अभाव आदि) से बच जाते हैं।
8. ग्रामीण लोगों का जीवन सरल होता है। वे नगर के समान चमक-दमक, बनावटी जीवन से दूर रहते हैं और ना ही वे कृत्रिमता को पसंद करते हैं। इसके इतर ग्रामीण लोगों की आय भी उतनी अधिक नहीं होती है कि वे नगरीय जीवन शैली को अपना सकें।
9. भारतीय ग्रामीण लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि होता है। 70 से 75 प्रतिशत लोग अपना जीवन-यापन कृषि कार्यों द्वारा ही करते हैं। इसके इतर ग्रामीण लोगों के अन्य प्रचलित व्यवसाय मिट्टी व धातु के बर्तन बनाना, वस्त्र बनाना, चटाई बनाना, गुड़ बनाना, रस्सी बनाना आदि प्रचलित हैं।
10. ग्रामीण समुदायों में सामाजिक नियंत्रण के साधन अनौपचारिक प्रकृति के होते हैं। उनके व्यवहारों और विचारों को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए धर्म, परंपराएँ, रीति-रिवाज,

रूढ़ियाँ आदि होते हैं। उनमें ईश्वर के प्रति भय, प्रेम, श्रद्धा आदि की भावना होती है जिसके कारण वे किसी अनैतिक कार्य को करने से डरते हैं।

11. भारतीय ग्रामीण समुदायों की एक प्रमुख विशेषता है संयुक्त परिवार की प्रधानता। यहाँ एकाकी परिवारों से इतर उन परिवारों की अधिकता होती है, जिनमें तीन अथवा उससे अधिक पीढ़ी के सदस्य रहते हैं, इनका भोजन, संपत्ति, धार्मिक क्रियाएँ संयुक्त रूप से संपन्न होती हैं और परिवार का मुखिया प्रायः एक बुजुर्ग सदस्य होता है। सभी पारिवारिक सदस्यों द्वारा उसकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य होता है।

12. भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता जाति व्यवस्था रही है और यह व्यवस्था ग्रामीण समाजों में अपने कठोर स्वरूप में पाई जाती है। इसका निर्धारण जन्म पर आधारित होता है और सभी के जातिगत व्यवसाय होते हैं। वैवाहिक संबंध जातिगत होते हैं, प्रत्येक जाति की अपनी एक पंचायत होती है, जो जातिगत नियमों को दृढ़ता प्रदान करती है।

13. प्रत्येक जाति का विशिष्ट व्यवसाय होने के साथ-साथ उनके उस व्यवसाय से जुड़े कुछ कर्तव्य होते हैं और ग्रामीण समुदायों में इन कर्तव्यों से परिभाषित व्यवस्था को जजमानी प्रथा कहा जाता है। विभिन्न जातियाँ दूसरी जातियों को अपनी सेवाएँ देती हैं और इसके बदले में उन्हें कुछ नकद, भोजन, वस्त्र अथवा फसल का कुछ भाग प्रदान किया जाता है।

14. प्रत्येक गाँव की एक ग्राम पंचायत होती है, जिसमें प्रायः गाँव का वृद्ध व्यक्ति मुखिया होता है। भारत में यह प्रथा प्राचीन समय से विद्यमान रही है। ग्रामीण समस्याओं का निवारण इसका प्रमुख उद्देश्य होता है।

15. भारतीय गाँवों में सामाजिक व सांस्कृतिक समरूपता पाई जाती है। सभी लोग प्रायः एक ही भाषा, परंपरा, संस्कृति, जीवन शैली से संबंधित होते हैं।

16. ग्रामीण समुदाय की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। स्वतंत्रता के लगभग 65 वर्षों के बाद भी शिक्षा का प्रतिशत 74 से ऊपर नहीं उठ पाया है। उच्च और तकनीकी शिक्षा का अभाव पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। हालांकि ग्रामीण समाजों में शिक्षा के स्तर में आंशिक सुधार अवश्य हुए हैं।

2.4 भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना

अनेक विद्वानों द्वारा भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन किया गया है, जिनमें से प्रमुख श्रीनिवास, दुबे, रेडफ़ील्ड, मजूमदार, मैकिम मैरिएट, मिल्टन सिंगर, बी.आर.चौहान, विलियम वाईजर, आस्कर लेविस, आंद्रे बेते आदि हैं। भारत में अनेक जातियाँ और जनजातियाँ रहती हैं और कई गाँवों में तो जातियाँ और जनजातियाँ एकसाथ निवास करती हैं। इसके कारण गाँव की संरचना पहले की तुलना में जटिल हो गई है, क्योंकि जातियों में जनजातियों के कई तत्व विलीन हो गए हैं और ऐसा ही कुछ

जनजातियों के साथ भी हुआ है। कई गाँव प्रादेशिक विशिष्टताओं के कारण जटिल हो गए हैं, तो कुछ गाँव जनसंख्या अधिकता अथवा न्यूनता, नगर से दूरी, गाँव की भौतिक बसावट के कारण भी जटिल हो गए हैं। उत्तर भारत के गाँव मध्य और दक्षिण भारत के गाँव से अनेक अर्थों में पृथक अस्तित्व रखते हैं और उनकी सामाजिक संरचना में भी कई विभेद देखे जा सकते हैं। भारतीय गावों की सामाजिक संरचना के बारे में समझ विकसित करने के लिए गाँव के आंतरिक संबंधों, समूहों, गाँव को समुदायों में समुदाय के रूप में समझना होगा और गाँव की सामाजिक संरचना की स्थाई इकाइयों के बारे में ज्ञान अर्जित करना होगा। दुबे और अन्य विद्वानों ने भारतीय गावों की सामाजिक संरचना को समझने के लिए दो दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं–

- भारतीय ग्राम एक विशेष पूर्ण इकाई के रूप में।
- भारतीय ग्राम बड़े समुदाय में संबंधित एक छोटी संबंधित इकाई के रूप में।

भारतीय गाँव की सामाजिक संरचना के प्रमुख अंगों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. **जाति-** जाति का निर्धारण जन्म से होता है और प्रत्येक जाति का एक पृथक व्यवसाय होता है। इस जाति आधारित व्यवसाय से संबंधित कुछ कर्तव्य होते हैं, जो अन्य जातियों से अंतर्संबंधित होते हैं। व्यक्ति अपनी ही जाति में वैवाहिक संबंध स्थापित कर सकता है, खान-पान आदि के नियम और निषेध आदि का निर्धारण जाति व्यवस्था द्वारा ही किया जाता है। गाँव में सामाजिक संस्तरण का निर्धारण भी जाति द्वारा ही किया जाता है। सभी जातियाँ आर्थिक संबंधों, दायित्वों और कर्तव्यों से आपस में बंधी हुई होती हैं, इसे जजमानी प्रथा की संज्ञा दी जाती है। प्रत्येक जाति की अपनी एक जाति पंचायत होती है, जो उनके व्यवहारों को नियंत्रित करती है और जातीय नियमों की अवहेलना पर दंडात्मक कारवाई करती है। जातीय एकता एक गाँव तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु यह दूसरे गाँव से भी संबंधित रहती है।
2. **ग्राम पंचायत-** गाँव में ग्राम पंचायत की सत्ता और शक्ति समुदाय की सामाजिक संरचना को संगठित करने का काम करती है। ग्राम पंचायतों पर जाति, वर्ग, वंश आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इनके काम में सहयोग करने का काम जाति पंचायतों द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायतों के स्थान पर वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था आधारित पंचायतों की व्यवस्था की गई है, जो कि अधिक प्रजातांत्रिक है।
3. **परिवार, विवाह और नातेदारी-** गाँव की सबसे सूक्ष्मतम इकाई व्यक्ति होता है और उससे ऊपर परिवार, नातेदारी, वंश, उपजाति, वर्ण आदि इकाइयां होती है। ग्रामीण परिवारों की संरचना प्रायः विस्तृत और संयुक्त प्रकार की होती है। ये परिवार मुख्यतः पितृसत्तात्मक व पुरुष प्रधान होते हैं और इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि होता है। परिवार में मुखिया की सत्ता ही सर्वशक्तिमान होती है। गाँव में विवाह को दो परिवारों को जोड़ने वाली संस्था के रूप में दर्जा दिया जाता है। विवाह एक

अनिवार्य संस्था है, यह अंतर्जातीय होता है, सगोत्र विवाहों पर प्रतिबंध होता है, उच्च जातियों में विधवा पुनर्विवाह निषेध है, जबकि निम्न जातियों में इसका प्रचलन आम है। परिवार और विवाह के विस्तार से नातेदारी समूह का जन्म होता है। यह वह समूह है जो रक्त और विवाह संबंधित संबंधों पर आधारित होता है। यह व्यक्ति को नियंत्रित करने और निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और आज भी विभिन्न गावों में ये सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा के लिए अपने कर्तव्यों का वहन करते हैं।

4. **धर्म-** भारत एक धर्म प्रधान देश है। यहाँ अनेक प्रकार के धर्म, मत और संप्रदाय प्रचलित हैं। गाँव में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है और धार्मिक संस्कारों के मानने से आपसी सहयोग, समानता और एकीकरण की भावना का संचार होता है। दीपावली, होली, दशहरा, कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी ईद, मुहर्रम, पोंगल, क्रिसमसं आदि विशिष्ट अवसरों व त्यौहारों पर लोग संगठित होते हैं और प्रेम व सौहार्द का विकास होता है।
5. **आर्थिक संस्थाएं-** गाँव की अर्थव्यवस्था जाति आधारित होती है। कृषि, पशुपालन व भूमि पर स्वामित्व के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन किया जाता है। एक लंबे समय से जजमानी व्यवस्था ही गाँव की अर्थव्यवस्था रही है। वाईजर, लेविस, दुबे, सिंह व ईश्वरन आदि विद्वानों द्वारा जजमानी व्यवस्था का अध्ययन किया गया है। एस.सी. दुबे ने अपनी पुस्तक *'इंडियन विलेज'* में जजमानी व्यवस्था के प्रमुख चार कार्य बताए हैं–
   - कृषिगत क्रियाओं से जुड़े व्यवसायों को सेवाएँ देना।
   - सामाजिक व धार्मिक जीवन से जुड़े कृषि व अन्य व्यावसायिक जातियों को सेवाएँ देना।
   - कुछ व्यावसायिक सेवाएँ जातियों को परंपरागत सेवाओं के बदले में देना।
   - व्यावसायिक सेवाएँ, नकद भुगतान की उम्मीद से देना।

6. **शैक्षणिक संस्थाएं-** हालांकि गावों में औपचारिक शिक्षण संस्थाएं सीमित होती हैं, तथापि वहाँ अनौपचारिक तौर पर जाति द्वारा यह काम किया जाता है। व्यक्ति अपनी परंपरागत जातिगत व्यवसाय पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त करता रहता है। परिवार द्वारा धार्मिक क्रियाओं, कृषि, दस्तकारी, त्यौहारों व व्यापार आदि की जानकारी दी जाती है। आधुनिक समय में गाँव में औपचारिक शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था की जा रही है।
7. **प्रतिमान, मूल्य और परिवर्तन-** ग्रामीण सामाजिक संरचना के रूप में प्रतिमान, मूल्य, आदर्श आदि की महत्ता को नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता है। सामाजिक मूल्यों और आदर्शों के आधार पर ही बालक का समाजीकरण किया जाता है और उसे सही एवं गलत में फर्क करना सिखाया जाता है। बालक ही नहीं वरन वयस्क के जीवन में भी सामाजिक मूल्यों और आदर्शों

का महत्व बहुत होता है। ये मनुष्य को अनैतिक कार्यों से दूर रहने के लिए प्रेरित करते हैं। परंपरागत ग्रामीण सामाजिक संरचना में कई परिवर्तन भी हुए हैं, यथा- सामुदायिक विकास परियोजनाएं, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, पंचवर्षीय योजनाएँ, पंचायती राज आदि। आज ग्रामीण समाजों में आधुनिकता की छाप को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

2.5 शहरी समाज: अर्थ एवं परिभाषा

शहरी समाजों में लोग कृषि के अतिरिक्त कई अन्य व्यवसायों में संलग्न हैं। यहाँ जनाधिक्य रहता है, सामुदायिक भावना की कमी होती है और प्रायः लोगों का विभिन्न गतिविधियों में शामिल होने के कारण समय का अभाव पाया जाता है। शहर शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'सिटी' का हिंदी रूपांतरण है। यह 'सिटी' शब्द लैटिन भाषा के 'सिविटाज' से बना है, जिसका अर्थ 'नागरिकता' होता है। अंग्रेज़ी भाषा का 'अर्बन' लैटिन भाषा के 'अर्बनस' से बना है, जिसका अर्थ 'शहर' होता है। लैटिन भाषा के 'अर्ब्स' का हिंदी अर्थ भी 'शहर' होता है।

- **थियोडरसन-** *"शहरी समुदाय एक ऐसा समुदाय है, जिसमें उच्च जनघनत्व, गैर-कृषि व्यवसायों की प्रधानता, जटिल श्रम विभाजन से उत्पन्न उच्च मात्रा का विशेषीकरण और स्थानीय सरकार औपचारिक व्यवस्था पाई जाती है। नगरीय समुदायों की विशेषता जनसंख्या की विभिन्नता, अवैयक्तिक व द्वितीयक संबंधों का प्रचलन तथा औपचारिक सामाजिक नियंत्रण पर निर्भरता आदि है।"*
- **बर्गल-** *"नगर ऐसी संस्था है जहां के अधिकतर निवासी कृषि कार्य के अलावा अन्य कार्यों में संलिप्त हों।"*
- **ममफोर्ड-** *"नगर स्पष्ट अर्थों में एक भौगोलिक संरचना है, एक आर्थिक संगठन व एक संस्थात्मक प्रक्रिया, सामाजिक प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि और सामूहिक एकता का सौंदर्यात्मक प्रतीक है।"*
- **विलकाक्स-** *"जहां मुख्य पेशा कृषि है, उसे गाँव और जहां कृषि के अलावा अन्य व्यवसाय प्रचलित हैं, उसे शहर कहेंगे।"*
- **लुईस वर्थ-** *"सामाजिक दृष्टि से शहर की परिभाषा सामाजिक भिन्नता वाले व्यक्तियों के बड़े, घने बसे हुए एवं स्थाई निवास के रूप में की जा सकती है।"*

उपर्युक्त वर्णित सभी परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शहर वह क्षेत्र है जहां जनसंख्या की बहुलता और विविधता पाई जाती है, गैर-कृषि व्यवसायों की प्रधानता रहती है, जटित श्रम

विभाजन और विशेषीकरण पाया जाता है, द्वितीयक संबंधों की प्रधानता होती है और औपचारिक संबंधों को महत्व दिया जाता है।

2.6 शहरी समाज की विशेषताएँ

अनेक विद्वानों द्वारा शहर की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है–

- **रॉबर्ट पार्क, बर्गेस, नेल्स एंडरसन, जिम्मरमेन और सोरोकिन** के अनुसार-
  1. जनसंख्या की बहुलता
  2. जनसंख्या की विभिन्नता
  3. द्वितीयक संबंधों की प्रधानता
  4. कृत्रिमता
  5. व्यक्तिवादिता
  6. व्यवसायों की बहुलता और विभिन्नता
  7. श्रम विभाजन और विशेषीकरण
  8. गतिशीलता
  9. सामाजिक समस्याएँ
  10. शिक्षा और संस्कृति के केंद्र
  11. राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र
  12. सुरक्षा
  13. स्वास्थ्य और मनोरंजन की व्यवस्था
  14. मानव सभ्यता के पोषक
  15. धार्मिक और पारिवारिक महत्व का अभाव
  16. प्रतिस्पर्धा
  17. आर्थिक विषमता
  18. यातायात और संदेशवाहन के साधनों की बहुलता
  19. फैशन के प्रति लगाव
- **आर. फ्रीडमैन** के अनुसार-
  1. समूहों और व्यक्तियों के मध्य कार्यात्मक अन्योनाश्रितता
  2. जनसंख्या की अधिकता और अधिक जनघनत्व
  3. विभिन्नताएँ
  4. प्राथमिक संबंधों का अभाव

ज्ञान शांति मैत्री

5. परिवारों के कार्यों का ह्रास
6. सदस्यों में अजनबीपन
7. संदेशवाहन के साधनों की प्रचुर मात्रा
8. श्रम विभाजन और विशेषीकरण
9. शहरी संस्कृति की परिवर्तनशील प्रकृति

- **किंग्सले डेविस** के अनुसार-

1. सामाजिक भिन्नता
2. द्वितीयक संघ
3. सामाजिक सहिष्णुता
4. द्वितीयक नियंत्रण
5. ऐच्छिक संघ
6. व्यक्तिवादिता
7. सामाजिक गतिशीलता
8. स्थानीय अलगाव

2.7 शहरी सामाजिक संरचना

शहर और शहरी दोनों ही शब्दों का प्रयोग सामान्यतः एक ही अर्थ में किया जाता है, परंतु 17वीं शताब्दी के मध्य और उसके बाद से शहर को एक प्रकार का स्थान माना जाने लगा और शहरी को एक जीवन जीने की शैली के रूप में माना जाने लगा। जनसंख्या एक ऐसा आधार है, जो गाँव को कस्बे से पृथक करता है, कस्बे को शहर से पृथक करता है, शहर को महानगर से पृथक करता है। विद्वानों द्वारा शहरी सामाजिक संरचना की व्याख्या जनसंख्या के आकार और घनत्व के आधार पर की गई है। यथा- भारत में अनेक जनगणनाओं के अनुसार शहर की स्थायी जनसंख्या कम-से-कम 5,000 होनी चाहिए। इसके अलावा पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी शहरों को परिभाषित किया जाता है। इसके अनुसार शहरी क्षेत्र का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने शहरी क्रिया-कलाप एवं आवास व्यवस्था, राजनैतिक संस्था, बाजार, व्यवसाय केंद्र आदि का स्थानिक वितरण और शहरी क्षेत्र के विस्तार की प्रक्रियाओं और स्वरूपों पर ध्यान आकृष्ट किया। गार्डन चाइल्ड और मैक्स वेबर का मानना है कि शहर का मुख्य लक्षण बाजार की उपस्थिति और उसमें विशिष्ट वर्ग के व्यवसायियों की मौजूदगी है। अन्य धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय संस्थाएं, जटिल प्रशासनिक संरचनाएँ आदि भी शहरों में विद्यमान रहती हैं। शहरी लोगों द्वारा आवश्यकताओं और हितों को साधने के लिए अपेक्षाकृत जटिल संगठनात्मक व्यवस्था में स्वयं को संगठित कर लेते हैं, यथा- न्यायालय, अस्पताल संगठन, सुपर बाजार आदि।

किसी भी समुदाय में शहरी जीवन शैली के अंश का संज्ञान तीन तत्वों पर निर्भर करता है–

- जनसंख्या का आकार
- जनसंख्या का घनत्व
- जनसंख्या की विषमता

शहरीकरण को परिवर्तन की प्रमुख इकाई के रूप में विश्लेषित किया जाता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारत में आर्थिक विकास और राजनीतिक बदलाव हुए और साथ ही कई नवीन मूल्यों व अभिवृत्तियों का उभार हुआ। यह ग्रामीण और शहरी जीवन के मध्य तारतम्यता बनाए रखने वाले तत्वों को प्रदर्शित करता है।

2.8 ग्रामीण व शहरी विभेद

इस इकाई में ग्रामीण व शहरी विशेषताओं से यह तो स्पष्ट हो गया है कि दोनों समाजों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। ग्रामीण समाजों में सरल, पारंपरिक व शालीन सामाजिक जीवन पाया जाता है, जबकि शहरी समाजों में गतिशील, कौतूहल व सुविधाओं से परिपूर्ण सामाजिक जीवन पाया जाता है। दोनों समाजों में व्याप्त अंतर को सोरोकिन और जिम्मरमेन ने व्यक्त करने का प्रयास किया है–

1. ग्रामीण समाज मुख्य रूप से कृषि व्यवसायों में संलिप्त रहते हैं और उनकी जीवन शैली भी कृषि संबंधों से संचालित होती है, जबकि शहरी समाजों में लोग विनिर्माण, मैकेनिकल व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार और अन्य गैर-कृषिगत व्यवसायों में लगे होते हैं।
2. ग्रामीण समाजों का लघु आकार होता है और जनसंख्या घनत्व कम होता है, जबकि शहरी समाजों का आकार अपेक्षाकृत बहुत अधिक होता है और जनघनत्व भी अधिक होता है।
3. आकार सीमित होने के कारण ग्रामीण समाजों में प्राथमिक संबंधों की प्रधानता होती है जबकि शहरी समाजों में द्वितीयक संबंध पाए जाते हैं।
4. ग्रामीण समाज में लोगों का प्रकृति से प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है जबकि शहरी समाज प्रकृति की अपेक्षा मानव निर्मित वातावरण अथवा कृत्रिमता के सन्निकट होता है।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों में सामाजिक समरूपता की भावना पाई जाती है, जबकि शहरी क्षेत्रों में लोग विषमजातीय होते हैं।
6. ग्रामीण समाजों में विभेदीकरण और स्तरीकरण शहरी समाजों की तुलना में कम मात्रा में पाया जाता है।
7. ग्रामीण समाजों में जनसंख्या की गतिशीलता, प्रादेशिक और अन्य रूपों में शहरी समाजों की तुलना में कम होती है।

2.9 सारांश

इस इकाई में ग्रामीण समाज व शहरी समाजों की अवधारणा व विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया। इसके साथ-ही-साथ ग्रामीण व शहरी सामाजिक संरचना के बारे में भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन विमर्शों से यह पता तो चल ही जाता है कि दोनों समाजों में कई भिन्नताएँ पाई जाती हैं, परंतु औपचारिकता के तौर पर ग्रामीण व शहरी समाजों में पाए जाने वाले प्रमुख अंतरों को भी इस इकाई में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

2.10 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: ग्रामीण समाज क्या है? स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 2: ग्रामीण समाज की विशेषताओं को बताइए।

बोध प्रश्न 3: ग्रामीण सामाजिक संरचना पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 4: शहरी समाज की अवधारणा स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 5: ग्रामीण व शहरी समाजों में पाए जाने वाले विभेद का वर्णन कीजिए।

2.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

सोरोकिन एवं जिम्मरमेन. (1929). *प्रिंसिपल्स ऑफ रुरल-अर्बन सोशिओलोजी*. न्यूयॉर्क: हेनरी होल्ट एंड कंपनी

देसाई, ए.आर. (1969). *रुरल सोशिओलोजी इन इंडिया*. मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन

रामचंद्रन, आर. (2007). *अर्बनाइजेशन इन इंडिया: सोशिओलोजिकल कंट्रीब्यूशन्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स

ठाकुर, म. (2014). *इंडियन विलेज*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

फ्लाइंगन, डबल्यू.जी. (2011). *अर्बन सोशिओलोजी*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

सिंह, क. (2011). *ग्रामीण विकास*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

सिंह, वी.एन. एवं सिंह, ज. (2015). *नगरीय समाजशास्त्र*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3
उद्योगीकरण एवं वैश्वीकरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्योगीकरण
3.3 उद्योगीकरण की विशेषताएँ
3.4 उद्योगीकरण और सामाजिक परिवर्तन
3.5 वैश्वीकरण
3.6 वैश्वीकरण की विशेषताएँ
3.7 वैश्वीकरण का प्रभाव
3.8 वैश्वीकरण के दुष्परिणाम
3.9 सारांश
3.10 बोध प्रश्न
3.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- उद्योगीकरण और उसकी विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- उद्योगीकरण और सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण और उसकी विशेषताओं को प्रदर्शित कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण के प्रभाव और दुष्परिणामों का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक पशु माना जाता है और वह अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ है। विभिन्न विशेषताओं से परिपूर्ण होने के कारण ही मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो संस्कृति का सृजनकर्ता है। मनुष्य ने अपने जीवन को आरामदेह व स्थाई बनाने के लिए अनेक अविष्कार किए, कई प्रौद्योगिकी को जन्म दिया। उद्योगीकरण और वैश्वीकरण कुछ इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ हैं, जो मनुष्य के बेहतर जीवन की कल्पना से संबंधित हैं।

3.2 उद्योगीकरण

उद्योगीकरण क्रांति का प्रतिफल ही उद्योगीकरण है। प्रौद्योगिकीय, आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया जो पूर्व उद्योगीकरण समाज को उद्योगीकरण समाज में रूपांतरित करती है, उद्योगीकरण के नाम से जानी जाती है। यह वस्तुओं के व्यापक उत्पादन हेतु ऊर्जा के स्रोत और मशीनी प्रौद्योगिकी प्रयोग के परिणामस्वरूप घटित हुई। यद्यपि कुशल और अकुशल दोनों प्रकार के श्रमबल का उद्योगीकरण में पर्याप्त रूप में इस्तेमाल होता है। उद्योगीकरण को ऐसी प्रक्रिया कहा जा सकता है, जिसमें लघु व कुटीर उद्योग का स्थान विस्तृत व व्यापक उद्योगों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। उद्योग में जड़ शक्ति का इस्तेमाल किया जाता है और मशीनों द्वारा उत्पादन होता है। इस प्रकार से उत्पादन विशाल मात्रा में होता है और यह अत्यंत शीघ्र होता है।

- **ब्रिज गैराल्ड-** *"किसी समाज में उद्योगीकरण का पहला चरण छोटी-छोटी मशीनों के विकास पर जोर देता है, जबकि अंतिम चरण बड़ी-बड़ी मशीनों के विकास पर केंद्रित होता है।"*
- **केर क्लार्क-** *"उद्योगीकरण का तात्पर्य उस स्थिति से है, जिसमें पहले का कृषक अथवा व्यापारिक समाज एक उद्योगीकरण समाज की दिशा में परिवर्तित होने लगता है।"*
- **एम.एस. गोरे-** *"उद्योगीकरण उस प्रक्रिया से संबंधित है, जिसमें वस्तुओं का उत्पादन हस्तचालित न होकर विद्युतचालित मशीनों से किया जाता है।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि उद्योगीकरण एक प्रक्रिया है, जिसमें लघु उद्योगों के स्थान पर व्यापक उद्योगों की स्थापना होती है, उत्पादन कार्य हस्तचालित के स्थान पर विद्युतचालित मशीनों द्वारा संपन्न किया जाता है, कृषि उत्पादन संबंधों के स्थान पर उद्योगीकरण उत्पादन संबंधों को प्राथमिकता दी जाती है।

ज्ञान शांति मैत्री

3.3 उद्योगीकरण की विशेषताएँ

उद्योगीकरण की विशेषताएँ निम्नानुसार हैं–

1. उद्योगीकरण का प्रत्यक्ष संबंध उत्पादन की प्रक्रिया से है।
2. इस प्रक्रिया के दौरान अनेक प्रकार के नवीन उद्योगों को स्थापित किया जाता है।
3. उद्योगीकरण में हस्तचालित उत्पादन के स्थान पर मशीनी उत्पादन को महत्व दिया जाता है।
4. उद्योगीकरण में मानव शक्ति और पशु शक्ति की जगह पर जड़ शक्ति (यथा- कोयला, डीजल, पेट्रोल, जल विद्युत, परमाणु शक्ति आदि) का प्रयोग किया जाता है।
5. उत्पादन में श्रम विभाजन और विशेषीकरण पाया जाता है।
6. उद्योगीकरण में उत्पादन व्यापक मात्रा में किया जाता है और यह उत्पादन कार्य शीघ्र गति से संपन्न होता है।

7. उद्योगीकरण में प्रौद्योगिक, वैज्ञानिक और तकनीकी पद्धतियों पर आधारित उत्पादन का प्रयास किया जाता है।
8. इसमें प्राकृतिक संसाधनों का पूर्णरूपेण दोहन किया जाता है।
9. इससे आर्थिक विकास होता है और पूंजी के विकास और विस्तार पर ज़ोर दिया जाता है।
10. उद्योगीकरण में सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता के तत्व पाए जाते हैं।
11. इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप परंपराओं, प्राचीन विश्वासों व मान्यताओं में कमी आती है।
12. उद्योगीकरण के कारण नवीन उत्पादन संबंध व वर्ग व्यवस्था (मजदूर और मालिक वर्ग) का उभार होता है।
13. इस प्रक्रिया से देश की पूरी आर्थिक संरचना परिवर्तित की जा सकती है।

3.4 उद्योगीकरण और सामाजिक परिवर्तन

हालांकि भारत में उद्योगीकरण का आरंभ औपनिवेशिक काल से माना जाता है, परंतु यह आरंभ अंग्रेज़ उद्यमियों और पूँजीपतियों द्वारा बहुत न्यून पूंजी निवेश से शुरू हुआ था और यह सस्ते माल व सस्ते श्रमिकों तक पहुँच के लिए किया गया था। आरंभिक प्रयासों के कारण भारतीय उद्यमियों ने भी उद्योगीकरण क्षेत्र में पूंजी निवेश करना शुरू कर दिया। अंग्रेज पूँजीपतियों के एकाधिकार को चुनौती दिए जाने के कारण तत्कालीन सरकार द्वारा भेदभावपूर्ण नीतियाँ अपनाई जाने लगी। इससे प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की भावना को बढ़ावा मिला। स्वतंत्र भारत में आर्थिक नीति में नेहरू ने समग्र विकास और समाजवादी प्रतिमानों को लागू किया। इस प्रयास ने भारत में भारी उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया। उद्योगीकरण के कारण भारत में हुए सामाजिक परिवर्तन को निम्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है–

1. उद्योगीकरण के कारण अनेक व्यवसायों, कारखानों, सह शिक्षा, बसों, रेलगाड़ियों, होटलों आदि का उभार हुआ और इस परिवर्तन ने जातिगत दृढ़ता को कमज़ोर करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।
2. सामाजिक व्यवस्था में धन और वैयक्तिक गुणों को महत्व दिया जाने लगा, जिसके कारण वर्ग का उदय हुआ।
3. परंपरागत भारत की प्रमुख विशेषताओं में से एक संयुक्त परिवार रहा है, परंतु उद्योगीकरण के दौर में यह इकाई टूट कर एकाकी परिवारों में रूपांतरित हो रही है।
4. उद्योगीकरण के कारण उत्पन्न नगरीकरण ने परिवार के कार्य और उसके प्रति लोगों के दृष्टिकोण को बड़ी मात्रा में प्रभावित किया है और आज परिवार का महत्व लोगों के सामाजिक जीवन से कम होता जा रहा है।

5. उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर महिलाओं की तुलना में पुरुषों के प्रवसन में तेजी आई है और साथ-ही-साथ बाल मज़दूरी के भी कई आकड़ें सामने आए हैं। इस कारण से बाल शोषण और अपराधों में वृद्धि आई है।
6. उद्योगीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं के लिए शिक्षा, रोज़गार आदि सामाजिक अवसरों में समानता का मार्ग प्रशस्त किया है।
7. इसके कारण परंपरागत विवाह व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ है और अनुलोम व प्रतिलोम विवाह, कानूनी संरक्षण से प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विलंब विवाह, बाल विवाह निषेध, विधवा पुनर्विवाह, तलाक आदि जैसी प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं।
8. समाज में श्रम विभाजन और विशेषीकरण को महत्व दिया जाने लगा है।
9. इसके कारण बड़े द्वितीयक समूहों और नगरों का विकास तीव्रता से हो रहा है और दूसरी ओर वैयक्तिक संबंधों का ह्रास होता चला जा रहा है। 'हम की भावना' के स्थान पर 'मैं की भावना' की प्रधानता पाई जाती है।
10. उद्योगीकरण के कारण पारंपरिक मूल्यों और विचारों में परिवर्तन होता है और उसकी जगह नए मूल्य, नई विचारधारा, नई आवश्यकता द्वारा ग्रहण कर ली जाती है।

3.5 वैश्वीकरण

वैश्वीकरण वर्तमान परिदृश्य की एक वैश्विक प्रघटना है और साथ ही बहस के लिए यह एक वैश्विक मसला भी है। 80 के दशक से इस अवधारणा का सूत्रपात हुआ है और इसने संपूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। मोटे तौर पर वैश्वीकरण पूँजी, वस्तुओं, प्रौद्योगिकी और ज्ञान का राष्ट्रीय सीमाओं से परे बिना किसी रुकावट होने वाला संचार है। यह आर्थिक संवृद्धि के प्रयोजन से विश्व के देशों और लोगों के बीच एकीकरण और अंतर्क्रिया की प्रक्रिया है। वैश्वीकरण का तात्पर्य राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने से है।

- **एंथोनी गिडेंस-** *"अनेक लोगों और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में बढ़ती हुई अन्योनाश्रितता या पारस्परिकता ही भूमंडलीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है, इसमें समय और स्थान का महत्व समाप्त हो जाता है।"*
- **रोजेनाऊ-** *"उद्योगवाद और उत्तर-उद्योगवाद, आज ऐसी वैश्वीय सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक शक्तियों के रूप में स्थापित हो गई हैं जो वैश्वीकरण का पोषण करती हैं।"*
- **डेविड हार्वे-** *"वैश्वीकरण का जुड़ाव समय और स्थान की गति और गहनता से है, क्योंकि हमारा बाजार, ब्याज दर, भौगोलिक गतिशीलता आदि समय और स्थान उतार-चढ़ाव के साथ जुड़े हुए हैं। यह जुड़ाव सहज नहीं है।"*

- **रुड लबर-** *"वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है, जिसमें विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंधों की स्थापना में भौगोलिक दूरी की एक कारक के रूप में महत्ता कम होती है।"*
- **मेलकाम वाटर्स-** *"वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था पर जो भौगोलिक दबाव होते हैं, कम हो जाते हैं और लोग भी इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि अब भौगोलिक सीमाएं निरर्थक हैं।"*
- **डेविड हेल्ड** और **एंथोनी मैग्रू-** *"वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है, जिससे विभिन्न भू-भागों के मध्य क्रिया, अंतःक्रिया तथा शक्ति का विनिमय बिना किसी रुकावट के संभव हो पाता है।"*
- **के. होम-** *"वैश्वीकरण इतिहास का एक नया कालखंड है।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं को विश्लेषित करने पर एक जो सबसे महत्वपूर्ण पक्ष निकलकर सामने आता है वह है 'पूंजी'। अर्थात पूँजी, वैश्वीकरण के मूल में है जो समाज और संस्कृति को एक साथ विलीन करने को आतुर है। वैश्वीकरण एक संयुक्त प्रक्रिया है, जिसमें विविध समूहों के बीच सांस्कृतिक अंतर्क्रिया में तीव्रता की प्रक्रिया सम्मिलित रहती है। भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण का आशय है विदेशी कंपनियों को देश की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश की अनुमति प्रदान कर विदेशी निवेश को आमंत्रित करना, विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम जैसे क़ानूनों को शनैः शनैः समाप्त कर बहुराष्ट्रीय निवेशों को सुविधाएं देना, भारतीय कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग को प्रोत्साहित करना, अन्य देशों में संयुक्त परियोजनाओं के क्रियान्वयन को प्रेरित करना आदि को महत्व दिया जाना।

3.6 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं–

1. वैश्वीकरण मूल रूप से विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अंतःक्रिया और समन्वय से संबंधित प्रक्रिया है।
2. वैश्वीकरण आर्थिक संबंधों की पूंजीवादी व्यवस्था को महत्व देता है।
3. यह आर्थिक संवर्धन से संबंधित प्रक्रिया है।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रिया में बाजार द्वारा अर्थव्यवस्था नियंत्रित की जाती है।
5. वैश्वीकरण आर्थिक असमानता को उत्पन्न करता है।
6. यह एक प्रक्रिया है जो वैयक्तिक स्वायत्तता को साकार करने और लोकतंत्रीकरण से संबंधित है।
7. मानव की गरिमा और उसके अधिकारों को सुनिश्चित करने की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में, नागरिक समाज और अधिक सक्रियता से हिस्सेदारी लेते हैं।
8. वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने अंतरराष्ट्रीय देशांतर के संवर्धन में योगदान दिया है।

9. हालांकि वैश्वीकरण राज्य के वैयक्तिक कल्याण के प्राथमिक महत्व का ह्रास करता है, तथापि नागरिकों की सुरक्षा के प्रति राज्य के दायित्व को पूरी तरह भुलाया नहीं जा सकता है।
10. वैश्वीकरण द्वारा लोगों के सांस्कृतिक ज्ञान में बढ़ोतरी हुई है।
11. वैश्वीकरण लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठता है।
12. वैश्वीकरण ने स्वयं की उपस्थिति सचेतन तौर पर व्यक्तियों, राष्ट्रों और सांस्कृतिक क्षेत्रों में दर्ज की है।
13. वैश्वीकरण के कारण मध्य वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होता है।
14. वैश्वीकरण द्वारा पर्यटन को महत्व मिलता है।

3.7 वैश्वीकरण का प्रभाव

भारत में वैश्वीकरण के प्रभावों को इस प्रकार से उल्लेखित किया जा सकता है–

1. उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रियाओं में वृद्धि, जिसके फलस्वरूप सरकारी क्षेत्र में घटित हानियों की घटनाएँ कम हुई।
2. विदेशी मुद्रा के भंडार में और निर्यात में बढ़ोतरी हुई है।
3. विदेशी पूंजी निवेश में वृद्धि हुई है और विदेशी ऋण पर निर्भरता में कमी आई है।
4. प्रौद्योगिक स्तर में उत्तरोत्तर परिवर्तन हुआ है।
5. सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर बेहतर हुई है।
6. वैश्वीकरण ने भारतीय समाज में उपभोक्ता क्रांति के उभार को प्रोत्साहित किया है।
7. त्यौहारों का व्यवसायीकरण होने लगा है, यह बात और है कि इसका लाभ विदेशी कंपनियों को ज़्यादा हुआ है।
8. घटना प्रबंधन (जन्मदिन, विवाह, मुंडन आदि पर कार्यक्रम व साज-सज्जा हेतु बाजार में लोगों की उपस्थिति) का जन्म हुआ है।
9. गिफ्ट मेला, परिधान मेला, सेल आदि का प्रचलन तेजी से आया है।
10. विज्ञापन आदि के आधार पर वस्तुओं पर ऑफर का चलन भी आम हो चुका है।

3.8 वैश्वीकरण के दुष्परिणाम

वैश्वीकरण का नियोजन केवल लाभ की दृष्टि से किया गया था परंतु इसके कुछ दुष्परिणाम भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **भारतीय महिलाओं पर प्रभाव-** भारत की सामाजिक व्यवस्था सदैव से पितृसत्तात्मक रही है और यह इसी का परिणाम है कि जनसंख्या की संरचना में प्रति 1,000 पुरूष पर महिलाओं की संख्या 993 है। यह लिंग अनुपात में विभेद महिलाओं की निम्न दशा का परिचायक है। वैश्वीकरण

के कारण अनेक उद्योगों में पुरुष कामगारों की तुलना में महिला कामगारों को कम मज़दूरी प्राप्त होती है। घरेलू उद्योग धंधों में भी यह भेदभाव दृष्टिगोचर होता है। साथ ही वैश्वीकरण के दौर में लालची प्रवृत्ति का भी चलन आम हो गया है। दहेज जहां तथाकथित उच्च जातियों में ही प्रचलित था, वहीं आज यह निम्न जातियों में भी देखा जा रहा है।

2. **दलित, अनुसूचित व पिछड़ी जातियों पर प्रभाव-** भारतीय जाति व्यवस्था में सदैव से संस्तरण व्याप्त रहा है और इसमें अवस्थित दलित जातियों के प्रति उपेक्षित नज़रिया रखा जाता रहा है। संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों का लाभ समाज के धनी वर्गों को होता है और गरीब वर्ग इसके लाभ से वंचित रह जाता है। इस गरीब वर्ग में अधिकांशतः दलित और हाशिए के लोग हैं। 75 प्रतिशत से अधिक दलित कृषि कार्यों में संलग्न हैं और शहरी क्षेत्रों में इनमें से अधिकतर असंगठित क्षेत्रों में काम करके जीविका कमाते हैं। नवीन आर्थिक नीति के तहत भूमि सुधार को अपनाया गया है, जिससे दलितों को हानि होगी, क्योंकि वे राज्यों की भावी कार्ययोजना से बाहर हो जाएंगे।
3. **जनजातियों पर प्रभाव-** जनजातियों के कल्याणकारी व्यय में कटौती, सार्वजनिक क्षेत्रों में निजीकरण का बढ़ता महत्व, कृषि क्षेत्रों में निवेश में कमी, सार्वजनिक वितरण व्यवस्था में अव्यवस्था आदि के कारण जनजातियों में असंतुष्टि की भावना का जन्म हो रहा है। विकास के नाम पर उनको उनके ही निवास स्थान से विस्थापित किया जा रहा है और प्राकृतिक संसाधनों का पुरजोर दोहन किया जा रहा है। दोहन के साथ-साथ जनजातियों को इन संसाधनों के प्रयोग से वंचित रखा जा रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न इन परिवर्तनों ने जनजातियों के जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया।
4. **अल्पसंख्यकों पर प्रभाव-** 90 के दशक अर्थात जिस दशक में भारत में वैश्वीकरण का प्रादुर्भाव हुआ, इस दशक से अल्पसंख्यकों के साथ अनेक हिंसात्मक घटनाएँ घटी। इन घटनाओं ने भारतीय समाज को विघटित करने का काम किया है और इन घटनाओं के ही परिणामस्वरूप कई आतंकवादी गतिविधियां अस्तित्व में आई हैं। वैश्वीकरण ने जाति और धर्म को सीमाओं को तोड़ा है, परंतु साथ-ही-साथ समाज के कमज़ोर वर्ग के लिए यह घातक भी है। यह एक छोटे से समूह का प्रतिनिधित्व करता है और एक बड़े समूह की उपेक्षा करता है।
5. **खुदरा बाजार पर प्रभाव-** वैश्वीकरण के कारण बड़े व्यापारियों और कंपनियों को बहुत लाभ मिला है और सभी क्षेत्रों में उनके लिए आवश्यक दशाएँ भी उपलब्ध हुई हैं, वही इसके विपरीत जब बड़े व्यापारी बाजार में उपलब्ध होंगे तो स्वाभाविक सी बात है कि खुदरा व्यापारियों अथवा छोटे व्यापारियों का नुकसान होगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बड़े व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करना उनके सामर्थ्य से बाहर की सोच है, क्योंकि वे पूंजी, उत्पादन साधन, मशीनों आदि में बहुत पिछड़े हुए हैं।

3.9 सारांश

इस इकाई में उद्योगीकरण और वैश्वीकरण की संकल्पना व विशेषताओं पर प्रकाश डाला है और साथ-ही-साथ इससे समाज में होने वाले परिवर्तनों को भी अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

3.10 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1:उद्योगीकरण क्या है? स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 2:उद्योगीकरण और सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 3:वैश्वीकरण की संकल्पना को बताइए और साथ ही इसकी विशेषताओं को भी प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 4:वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 5:वैश्वीकरण के दुष्परिणामों पर चर्चा कीजिए।

3.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

वाटर्स, एम. (2010). *ग्लोबलाइज़ेशन*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

गिडेंस, ए. (2001). *द कंसिक्वेंसेज ऑफ मोडर्निटि*. लंदन: पोलिटी प्रेस

वर्मा, के.एम. (2015). *ग्लोबलाइज़ेशन एंड इनवायरमेंट*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

कृष्ण,स. (2014). *ग्लोबलाइज़ेशन एंड पोस्टकोलोनिज़्म*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

कपिला, उ. (2007). *इंडियन इकोनोमी: परफ़ार्मेंस एंड पोलिसिज*. नई दिल्ली: एकेडमिक फाउंडेशन

कुमार, न. (2003). *समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में उद्योगीकरण एवं श्रमिक परिवार*. नई दिल्ली: हिंदी बुक सेंटर

सिंह, श. (2010). *विकास का समाजशास्त्र*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

यादव, र.ग. (2014). *भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड

दुबे, अ.क. (2008). *भारत का भूमंडलीकरण*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन

मिश्र, एस.के. एवं पुरी, वी.के. (2012). *भारतीय अर्थव्यवस्था*. मुंबई: हिमालया पब्लिशिंग हाउस

इकाई 4
परिवर्तनशील व्यावसायिक संरचना एवं उदारीकरण का प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 व्यावसायिक संरचना
4.3 व्यावसायिक गतिशीलता के कारण
4.4 उदारीकरण
4.5 व्यावसायिक संरचना पर प्रभाव
4.6 सारांश
4.7 बोध प्रश्न
4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- व्यावसायिक संरचना का वर्णन कर सकेंगे।
- व्यावसायिक गतिशीलता के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- उदारीकरण की व्याख्या कर सकेंगे।
- उदारीकरण का व्यावसायिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

सामान्य तौर पर यदि कहा जाए तो उदारीकरण और व्यापार व वाणिज्य का संबंध प्रत्यक्ष रूप से देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में उल्लेखनीय भूमिका वहन करता है। उदारीकरण का सीधा तात्पर्य है अर्थव्यवस्था को वैश्विक बाजार स्तर प्रदान करना। इससे अर्थव्यवस्था की आंतरिक संरचना, विशिष्ट रूप से कार्य, व्यवसाय व रोज़गार पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उदारीकरण के पश्चात बिक्री व विपणन, सूचना प्रौद्योगिकी, अनुसंधान आदि विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रकार के व्यवसायों व रोज़गार के क्षेत्र उत्पन्न हो रहे हैं, जो युवा वर्ग को अनेक अवसरों को उपलब्ध कराने में सक्षम हैं।

4.2 व्यावसायिक संरचना

मूल रूप से व्यवसाय जटिल समाजों की विशेषता है और सरल समाजों में बहुत ही कम मात्रा में व्यवसाय पाए जाते हैं। व्यवसाय को एक मनुष्य द्वारा पारिवारिक क्रियाकलापों से इतर वहन की जाने वाली भूमिका के रूप में विश्लेषित किया जा सकता है जो आर्थिक पक्ष से संबंधित हो और जिसमें उसे आमदनी के साथ-साथ सामान्य सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। प्रगति और दिन-प्रतिदिन संवर्धित होते श्रम विभाजन के कारण निरंतर नवीन कार्य व व्यवसायों का अभ्युदय होता है। उद्योगीकरण समाज की संरचना कहीं अधिक विकसित व व्यापक क्षेत्र से जुड़ी होती है। इन समाजों में प्रमुख रूप से निर्माण आधारित व्यवसायों के साथ सेवा आधारित व्यवसाय होते हैं और इसके साथ ही कृषि, मछली पालन और अन्य व्यवसाय भी किए जाते हैं।

व्यवसाय और व्यावसायिक संरचना के लिए कुछ मानकों की व्यवस्था करने के लिए कोई सार्वभौमिक प्रणाली नहीं है। इसका निर्धारण अनेक कारकों द्वारा किया जाता है, यथा- किसी जगह की भौगोलिक स्थिति, प्रौद्योगिकीय विकास और उत्पादन शक्तियों का स्तर, प्रति व्यक्ति के आय का स्तर, अर्थव्यवस्था की संरचना, श्रम विभाजन और कार्य कुशलता आदि। किसी जगह की भौगोलिक स्थिति और पारिस्थितिकीय संसाधनों की उपलब्धता कार्य के चुनाव को नियत करती है। व्यावसायिक संरचना को कुछ उदाहरणों के आधार पर समझा जा सकता है, यथा- व्यावसायिक, तकनीकी, लिपिकीय, प्रबंधकीय, कौशल, अर्ध-कौशल, कौशलहीन, बिक्री। इन श्रेणियों को विभिन्न व्यवसायों में पुनर्विभाजित किया जा सकता है। जापान में मछली पालन बड़ी मात्रा में रोज़गार उपलब्ध कराता है। जिस प्रकार से प्रौद्योगिकी में वृद्धि होती जाती है, उसी प्रकार से उत्पादक बल में भी विकास होता है और इससे व्यावसायिक संरचना में विविधता आती है। जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है, उसी रूप में विनिर्मित उत्पादों की मांग में भी वृद्धि होती है और इससे द्वितीयक क्षेत्रों में विनिर्माण उद्योगों में उत्पादन विकसित होता है। भारत में, जनगणना व्यवसायों को प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र व तृतीयक क्षेत्र के रूप में तीन श्रेणियों में विभाजित करती है। प्राथमिक क्षेत्र में मछली पालन, कृषि मजदूर, पशुधन, खनन व उत्खनन आदि,द्वितीयक क्षेत्र में पारिवारिक अथवा घरेलू व अन्य उद्योग और तृतीयक क्षेत्र में परिवहन, व्यापार व वाणिज्य, संचार व अन्य सेवाओं को सम्मिलित किया जाता है।

व्यावसायिक गतिशीलता एक व्यक्ति द्वारा नए कौशलों की प्राप्ति के पश्चात अपने पूर्व व्यवसाय अथवा नौकरी को परिवर्तित कर लेने से संबंधित है। यह अंतरपीढ़ीय हो सकता है, जिसमें व्यक्ति व्यवसाय को अपने कामकाजी जीवन के दौरान परिवर्तित कर लेता है अथवा यह अन्तःपीढ़ीय भी हो सकता है, जिसमें व्यक्ति किसी ऐसे व्यवसाय का चुनाव करता है जो उसके पिता के व्यवसाय से अलग होता है। व्यावसायिक गतिशीलता एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग समाज में एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय की ओर उन्मुख होते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। यह स्थिति एक विशेष स्तरणात्मक मूल्य को अभिव्यक्त करती

है जिसे सामान्य तौर पर सभी द्वारा स्वीकारोक्ति प्राप्त होती है। यह उन समाजों में अधिक मात्रा में देखने को मिलती है जो अभी हाल ही में औद्योगीकृत हुए हैं।

4.3 व्यावसायिक गतिशीलता के कारण

व्यावसायिक गतिशीलता 20वीं सदी की विशेषता है। सरल समाजों में जहां व्यवसाय का आधार वंशानुगत होता है, वहीं जटिल समाजों में व्यवसाय का आधार परंपरागत तरीके नहीं होते हैं। हालांकि आज भी कुछ लोग परंपरागत आधारों पर व्यवसाय करने को महत्व देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय का चयन अपनी इच्छा व लाभ के आधार पर करना चाहता है और यही कारण है कि वर्तमान समय में व्यावसायिक गतिशीलता देखने को मिलती है। इसके प्रमुख कारण निम्नलेखित हैं–

1. **प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के कारण-** जैसे-जैसे किसी भी समाज में प्रौद्योगिकीय विकास होता है वैसे-वैसे व्यावसायिक गतिशीलता को बढ़ावा मिलता जाता है। प्रौद्योगिकीय विकास श्रम मांग में बढ़ोतरी करता है। यह परिस्थिति तब तक बनी रहती है, जब तक कि उन मशीनों का आविष्कार न हो जाए जो कम मज़दूरों के इस्तेमाल से अधिक मात्रा में उत्पादन कार्य कर सके। विकासशील देशों में इस बात पर पूरा ध्यान दिया जा रहा है कि प्रौद्योगिकीय विकास उस प्रकार का हो कि मज़दूरों की मांग बनी रहे और ज़्यादा संख्या में मज़दूर बेरोज़गार न हो पाएँ। यातायात व परिवहन के साधन का विकास भी इसके लिए ज़िम्मेदार है।
2. **मज़दूरों का शोषण-** विकासशील देशों में आर्थिक व सामाजिक विकास मज़दूरों के शोषण को जन्म दे रहा है। साहूकार, जमींदार व उच्च प्रस्थिति पर काबिज लोग मज़दूरों को वाजिब पारिश्रमिक नहीं देते हैं, जिसके कारण उन्हें विवश होकर दूसरे स्थानों पर जाकर अन्य व्यवसाय को अपनाना पड़ता है।
3. **शिक्षा का प्रचार-प्रसार-** शिक्षा का स्तर, व्यावसायिक गतिशीलता को प्रभावित करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाता है। इसके लिए सामान्य शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा दोनों ज़िम्मेदार हैं। शिक्षा के माध्यम से प्रौद्योगिक ज्ञान व तकनीकी ज्ञान में वृद्धि की जा रही है। विकासशील समाजों में इसलिए भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है, क्योंकि इससे सामाजिक व व्यावसायिक गतिशीलता में वृद्धि की जा सके।
4. **ज्ञान और कौशल में बढ़ोतरी-** उच्च पदों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति ज्ञान व कौशल के क्षेत्र में पारंगत हो। ज्ञान और कुशलता में वृद्धि होने के कारण व्यावसायिक गतिशीलता को प्रोत्साहन मिलता है।
5. **अर्जित गुणों का महत्व-** भारत में अब परंपरागत व्यवसायों का प्रायः ह्रास हो चुका है और वांछित व्यवसाय के लिए कड़ी मेहनत व प्रतिस्पर्धा से गुज़रना आज प्रत्येक मनुष्य के लिए चुनौती बन चुका है। आज जाति, वर्ग आदि से ऊपर उठकर व्यक्ति वही कार्य करना चाहता है,

ज्ञान शांति मैत्री

जिसमें लाभ के अवसर अधिक हों। जिस प्रकार से लोगों में अर्जित गुणों का समावेश होता चला जा रहा है, उसी प्रकार समाज में व्यावसायिक गतिशीलता को प्राथमिकता मिलती जा रही है।

6. **उच्च पद पाने की लालसा व दिलाने की प्रेरणा-** साधारणतः निम्न प्रस्थिति के लोगों में यह देखा जाता है कि वे पहले ही यह सोच लेते हैं कि उच्च प्रस्थिति के कार्य उनके द्वारा कर पाना संभव नहीं और यह कारण व्यावसायिक गतिशीलता के मार्ग को अवरुद्ध कर देता है। व्यावसायिक गतिशीलता के लिए यह आवश्यक होता है कि लोगों में उच्च पद पर आसीन होने या काम करने की लालसा प्रचुर मात्रा में होनी चाहिए। जिस प्रकार से उच्च पद प्राप्त करने की लालसा व्यावसायिक गतिशीलता के लिए आवश्यक होती है उसी प्रकार उच्च पद दिलाने की प्रेरणा भी इसमें वृद्धि का कारण है।
7. **कृषि कार्यों में जनाधिक्य होना-** भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ लगभग 60 प्रतिशत लोग कृषि व्यवसाय में संलग्न हैं। भूमि का क्षेत्रफल वही है और जनसंख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। जनसंख्या के अधिक होने के कारण लोगों की आवश्यकताएँ कृषि कार्यों से पूरी नहीं की जा सकती इस कारण भी व्यावसायिक गतिशीलता में बढ़ोतरी होती है।
8. **वंशानुगत व्यवसाय से असंतुष्टि-** सामान्यतः यह देखा जाता है कि जिन लोगों की प्रदत्त प्रस्थिति उच्च नहीं है, उनमें यह गतिशीलता अधिक मात्रा में पाई जाती है। वे उन व्यवसायों से दूर भागते हैं, जो उनके माता-पिता अथवा अन्य पूर्वजों द्वारा किए गए हैं। उनके स्थान पर वे उन व्यवसायों को अपनाने को प्राथमिकता देते हैं, जिनसे उन्हें अपेक्षाकृत उच्च सामाजिक प्रस्थिति अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके।
9. युद्ध व राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव भी व्यावसायिक गतिशीलता का एक कारण है।

ज्ञान शांति मैत्री

4.4 उदारीकरण

सन 1985 में सर्वप्रथम उदार आर्थिक नीतियों के बारे में तत्कालीन सरकार ने विचार करना आरंभ किया और उदारीकरण को मूर्त रूप 1991 में दिया जा सका। बजट और आर्थिक निर्णयों से संचालित इन आर्थिक नीतियों को उदार आर्थिक नीति या उदारीकरण कहा गया। 1991 में ही उदारीकरण के साथ ही साथ निजीकरण और वैश्वीकरण को भी भारत में लागू किया और इन्हीं कारणों से यह उदारीकरण केवल राष्ट्र तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु यह अंतरराष्ट्रीय उदारीकरण हो गया। आर्थिक नीति एक देश के आर्थिक विकास की दिशा को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह एक अत्यंत व्यापक शब्द है, जिसमें किसी भी सरकार की विदेशी व्यापार, राजकोषीय, मौद्रिक, रोज़गार, उत्पादन व अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों से जुड़ी नीतियाँ समावेशित रहती हैं। इस प्रकार से आर्थिक नीति का आशय देश में उपलब्ध आर्थिक, मानवीय व भौतिक संसाधनों के समुचित उपयोग से आर्थिक वृद्धि को गति प्रदान करना है। आर्थिक नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं–

- राष्ट्रीय आय में उच्च वास्तविक वृद्धि प्राप्त करना
- पूर्ण रोज़गार तथा कीमत स्थिरता
- स्थाई विनिमय दरों युक्त बाह्य व्यापार एवं भुगतान संतुलन में साम्य
- देश के नागरिकों को आर्थिक व सामाजिक न्याय दिलाना

आर्थिक नीतियों में समय के साथ-साथ निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। 24 जुलाई, 1991 को मनमोहन सिंह, जो नरसिंह राव सरकार में वित्तमंत्री के पद पर आसीन थे, ने अपने बजट भाषण में उदारीकरण और निजीकरण के माध्यम से भारतीय पूंजी के वैश्वीकरण के कार्यक्रम को प्रस्तुत किया। बदले वैश्विक परिवेश में तीव्र आर्थिक विकास के प्रयोजन से उदारीकरण की नीति क्रियान्वित की गई। उदारीकरण की नीति का सीधा संबंध नियंत्रणों और नियमों को विस्थापित कर मुक्त व्यापार हेतु अर्थव्यवस्था में खुलापन लाना और आर्थिक मसलों में राष्ट्र अथवा सरकार की भूमिका को कम-से-कमतर रूप से सीमित करते हुए वैयक्तिक क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि करने से है। इसके अनुसार मांग और आपूर्ति के नियमों की अर्थव्यवस्था के पहलुओं को निर्धारित करने में भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होनी चाहिए और व्यापार के तरीकों में किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए। देश के उद्योगीकरण विकास में उदारीकरण की उल्लेखनीय भूमिका है। इसका कारण यह है कि वैयक्तिक उद्यमियों के प्रोत्साहन का काम उदारीकरण ने बखूबी निभाया है और निर्माण प्रक्रिया के दौरान आने वाली समस्याओं का उन्मूलन भी किया है। इस कारण से उद्यमियों के लिए निवेश हेतु एक व्यापक क्षेत्र की व्यवस्था हो गई।

भारत द्वारा अपनी विदेश निवेश नीति का उदारीकरण किया गया। कुछ संवेदनशील क्षेत्रों के अलावा उद्योगीकरण क्षेत्रों में एक व्यापक मात्रा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को स्वीकृति प्रदान की गई। इसके बावजूद देश प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को पूरी तरह से लुभाने में सफल नहीं हो पाया। 2005-06 में कुल विदेशी निवेश 3,754 मिलियन डॉलर रहा, अगस्त 2000 से मई 2009 के दौरान कुल विदेशी निवेश 1,10,974 मिलियन डॉलर रहा। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि नीतिगत और अवसंरचनात्मक अवरोधों के कारण प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का परिणाम संतोषप्रद नहीं रहा।

4.4 व्यावसायिक संरचना पर प्रभाव

हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में उदारीकरण के प्रभाव को परखने का प्रयास किया जा रहा है, तथापि यह अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ हद तक इनमें सुधार हुआ है। भारत की जनगणना 1991 और 2001 द्वारा संगृहीत आकड़ों और NSSO के अनेक चक्रों, प्रमुख रूप से 1993-94 और 2000 के चक्रों के आधार पर हम कार्यबल व व्यावसायिक संरचना पर प्रभाव को विश्लेषित कर सकते हैं -

कार्य सहभागिता दर

कार्य सहभागिता दर से आशय कुल जनसंख्या की तुलना में कुल कार्यरत कर्मचारियों (दीर्घ व अल्पकालिक) की प्रतिशत हिस्सेदारी से लगाया जाता है। यह कुल जनसंख्या में कार्यरत जनसंख्या (महिला व पुरुष) का प्रतिशत होता है।

$$\text{WPR}= \frac{\text{कुल कर्मचारी (दीर्घ व अल्पकालिक)}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 100$$

1991 से 2001 के मध्य कामगारों की कार्य सहभागिता दर में कमी पाई गई है–

	1971	**1981**	**1991**	**2001**
महिला	12.1	14.1	16.0	14.7
पुरुष	52.6	51.6	51.0	47.8
कुल	30.5	33.5	34.2	30.5

प्रमुख कार्यकर्ताओं की कार्य सहभागिता दर (प्रतिशत में)

NFHS ने भारत के शहरी क्षेत्रों के लिए कुछ आकड़ों को प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार 1992-93 से 1998-99 के दौरान कार्य सहभागिता दर में कमी आई है। सबसे ज़्यादा कमी 45 वर्ष से आधिक आयु समूह की जनसंख्या में आई है और 20-59 वर्ष के आयु समूह के लिए यह दर सामान्य रही। इसके अलावा बड़े शहरों अथवा राजधानियों आदि में भी इस दर में कमी दर्ज की गई है और यह 57 प्रतिशत से कम होकर 55 प्रतिशत हो गई। वही छोटे शहरों में यह 53 प्रतिशत से बढ़ाकर 55 प्रतिशत और कस्बों में 54 प्रतिशत से बढ़कर 55 प्रतिशत हो गई है।

कार्य का सीमांतीकरण

भारत की जनगणना द्वारा प्रमुख कामगारों को लोगों के उस रूप में विश्लेषित किया जाता है, जिसमें वे लोग वर्ष में कम से कम 183 दिन कार्य करते हैं और इससे कम दिनों में काम करने वाले कामगारों को सीमांत श्रमिक की संज्ञा दी गई है। यदि कार्यबल में सीमांत श्रामिकों के अनुपात में बढ़ोतरी होती है तो इस पूरी प्रक्रिया को 'सीमांतीकरण' के नाम से जाना जाता है। अर्थात् यदि सार रूप में कहा जाए तो एक वर्ष में 183 दिनों से कम दिन कार्य करने वाले श्रमिकों के अनुपात में यदि वृद्धि दर्ज की जाए तो इसे सीमांतीकरण कहा जाता है। यह अवस्था मूल रूप से रोज़गार की स्थिति और श्रमिकों की आर्थिक

स्थिति में सामान्य अवनति को प्रदर्शित करती है। 1991 से 2001 के दौरान प्रमुख कामगारों का प्रतिशत 34.1 प्रतिशत से घटकर 30.5 प्रतिशत हो गया और इस कमी के कारण सीमांत श्रमिकों का प्रतिशत भाग 3.4 प्रतिशत से बढ़कर 8.8 प्रतिशत तक पहुँच गया।

रोज़गार और बेरोज़गारी

1993-94 से 1999-2000 के दौरान उदारीकरण के प्रभाव को विश्लेषित किया जा सकता है। इस दौरान ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में पूर्व के अनुपात की अपेक्षा रोज़गार की समग्र वृद्धि दर में कमी दर्ज की गई है–

अवधि	शहरी	ग्रामीण
1983 से 1987-88	2.77	1.36
1987-88 से 1993-94	3.39	2.03
1993-94 से 1999-2000	2.27	0.66

रोज़गार की वृद्धि दर (प्रतिशत परिवर्तन प्रतिवर्ष)

NSSO के 1993-94 और 2004-05 के आंकड़े से देश में रोज़गार और बेरोज़गारी की स्थिति को विश्लेषित किया गया है और इसके अनुसार उदारीकरण की अवधि में महिला व पुरुष जनसंख्या दोनों में बेरोज़गारी दर में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों दोनों में बढ़ोतरी हुई है। 2005-06 से 2006-07 के दौरान हुए आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान दैनिक स्तर के आधार पर बेरोज़गारी दर महिलाओं के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 5.6 प्रतिशत से बढ़कर 8.7 प्रतिशत हो गई और शहरी क्षेत्रों में 10.5 प्रतिशत से बढ़कर 11.6 प्रतिशत हो गई है। वहीं पुरुषों के लिए बेरोज़गारी दर शहरी क्षेत्रों में 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई और ग्रामीण क्षेत्रों में 5.6 प्रतिशत से बढ़कर 8 प्रतिशत हो गई है।

संगठित और असंगठित क्षेत्र

NSSO के विभिन्न समय में प्रस्तुत आकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र के रोज़गार में निरंतर कमी आ रही है–

क्षेत्र	1983	1994	1999-2000
संगठित क्षेत्र	24.01	27.37	28.11

असंगठित क्षेत्र	278.7	347.02	368.89
सरकारी क्षेत्र	16.46	19.44	19.41
निजी क्षेत्र	7.55	7.93	8.70
कुल रोज़गार	**302.75**	**374.45**	**397.00**

संगठित और असंगठित क्षेत्रों में रोज़गार वृद्धि (रोज़गार, दस लाख में)

क्षेत्र	**1983-94**	**1994-2000**
संगठित क्षेत्र	1.20	0.53
असंगठित क्षेत्र	2.01	1.02
सरकारी क्षेत्र	1.52	0.03
निजी क्षेत्र	0.45	1.87
कुल रोजगार	**2.04**	**0.98**

संगठित और असंगठित क्षेत्रों में रोज़गार वृद्धि (वृद्धि दर, प्रतिशत प्रति वर्ष)

ज्ञान शांति मैत्री

यह व्यावसायिक संरचना व रोज़गार पर हुए सुधारात्मक प्रयासों के प्रभाव का प्रदर्शक है। 1983-94 के मध्य 1.2 प्रति वर्ष की वृद्धि दर के पश्चात संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर 1994-2000 के मध्य के उदारीकरण के बाद की अवधि में कम होकर 0.53 प्रतिशत ही रह गई।

4.6 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत व्यावसायिक संरचना को समझने का प्रयास किया गया है और साथ-ही-साथ व्यावसायिक गतिशीलता के लिए उत्तरदायी कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा उदारीकरण क्या है? इससे संबंध विमर्श किस प्रकार के है? और यह किस प्रकार से समाज को प्रभावित कर रही है? इन प्रश्नों के उत्तर को तलाशने का प्रयास किया गया है। इस इकाई के अंत में व्यावसायिक संरचना पर उदारीकरण के प्रभावों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है।

4.7 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1:व्यावसायिक संरचना का वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 2:व्यावसायिक गतिशीलता के विभिन्न कारणों को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 3:उदारीकरण क्या है? स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 4:व्यावसायिक संरचना पर उदारीकरण के प्रभावों का विवेचन कीजिए।

4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

नैयर, डी. (2012). *लिबरलाइजेशन एंड डेवेलपमेंट*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इंडिया

सिंह, आर. (2015). *इंडियन इकॉनमी*. नई दिल्ली: टाटा मैगरा हिल एजुकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

नैयर, र. एवं शर्मा, ए.एन. (2004). *रुरल ट्रान्सफ़ार्मेशन इन इंडिया: द रोल ऑफ नॉन फार्म सेक्टर*. नई दिल्ली: इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमन डेवेलपमेंट

वर्मा, स. (2013). *द इंडियन इकॉनमी*. नई दिल्ली: यूनिक पब्लिशर्स

मिश्र, एस.के. एवं पुरी, वी.के. (2012). *भारतीय अर्थव्यवस्था*. मुंबई: हिमालया पब्लिशिंग हाउस

अग्रवाल, द. (2012). *भारत में नियोजित विकास एवं आर्थिक उदारीकरण*. नई दिल्ली: सागर पब्लिकेशन

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 2

विकास की अवधारणाएं

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 1
सामाजिक और मानव विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 सामाजिक विकास
1.3 सामाजिक विकास के प्रमुख निर्धारक
1.4 सामाजिक विकास के संकेतक
1.5 मानव विकास
1.6 मानव विकास के आयाम
1.7 मानव विकास के संकेतक
1.8 सारांश
1.9 बोध प्रश्न
1.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- सामाजिक विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सामाजिक विकास के प्रमुख निर्धारकों व उसके संकेतको का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानव विकास की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- मानव विकास के आयामों व संकेतकों का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सामाजिक विकास एक विस्तृत और बहुआयामी पद है, इसे कुछ निश्चित परिभाषाओं अथवा सीमाओं में बांधना दुष्कर है। सामाजिक विकास को परिभाषित करने से पहले विकास के बारे में संज्ञान कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। विकास का अर्थ एक निश्चित स्थिति से ऊर्ध्वाधर दिशा में प्रगति, परिवर्तन और उन्नति से है और प्रगति-परिवर्तन की यह मात्रा और गुण दोनों स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने चाहिए। उसमे समाज के प्रत्येक वर्ग की भागीदारी निहित हो, कोई वंचित या छूट गए या खो गए लोग नहीं होने चाहिए।

यदि ऐसा हुआ तभी यह माना जा सकता है कि विकास की दिशा और दशा दोनों सही जा रही है। मानव विकास का तात्पर्य उस विकास से है जो मानव केंद्रित हो। अर्थात् सामाजिक आदतों, मानव स्वास्थ्य, शिक्षा, जैविक आवश्यकताओं की आपूर्ति आदि से संबंधित संतुष्टि और विकास से है।

1.2 सामाजिक विकास

सामाजिक विकास की अवधारण तब अस्तित्व में आई जब तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों द्वारा स्वयं के आर्थिक विकास को लेकर संजीदगी अपनाई गई। विकासशील देशों की समस्याओं के लिए चिंतित बुद्धिजीवी वर्ग और संयुक्त राष्ट्र जैसी एजेंसियों का ऐसा मानना है कि आर्थिक विकास मात्र आर्थिक पक्ष से ही संबंधित नहीं होता है वरन् इसकी संपूर्णता के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पक्षों को भी सम्मिलित करना आवश्यक है। आर्थिक विकास के वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु इन पक्षों की अनदेखी नहीं की जा सकती है। पर्याप्त रूप से आधुनिक न होने के कारण इन विकासशील देशों के विकास में नाना प्रकार के अवरोध उत्पन्न होते रहते हैं। पर्याप्त सामाजिक विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उचित नीतियों और योजनाओं को कार्यान्वित किया जाए। सामाजिक विकास की संकल्पना में आर्थिक विकास के तत्व भी सम्मिलित हैं। सामाजिक विकास में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पक्षों से उन्मुखी विकास को महत्व दिया जाता है। यदि इसे और भी स्पष्ट किया जाए तो सामाजिक विकास में नियोजन केवल सामाजिक सेवाओं के नियोजन तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह आर्थिक विकास के नियोजन से भी संबंधित है। सामाजिक और कल्याणकारी क्षेत्रों के इतर भी अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां सामाजिक विकास की प्रासंगिकता है, यथा– औद्योगिक अवस्थिति और पर्यावरण प्रदूषण से जुड़ी नीतियाँ, जनसंख्या, आय वृद्धि, नगरीकरण, भूमि सुधार से संबंधित नीतियाँ, आय वृद्धि, आय वितरण, प्रशासन द्वारा नियोजित कार्यक्रम और नीतियाँ तथा उनमें जनता की हिस्सेदारी आदि।

यह एक समग्र प्रक्रिया है जो अपने अंदर एक निश्चित समाज की संपूर्ण संरचनाओं (यथा–आयु, लिंग, संपत्ति) तथा संस्थाओं (यथा– जाति, वर्ग, परिवार, समुदाय, धर्म, शिक्षा आदि) को समाहित किए हुए है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है, एक आदिम जनजातीय समाज की संरचनाएं और उनसे संबंधित संस्कृति, परम्पराएँ, रीति-रिवाज एक आधुनिक समाज से सर्वथा भिन्न होंगे। मुख्यतः जनजातीय समाज कुल, परिवार और रक्त संबंधों पर आधारित होता है, जबकि आधुनिक समाजों का गठन कहीं अधिक उलझा,जटिल और विस्तृत है। तत्कालीन आधुनिक और उत्तर-आधुनिक समाजों में विकास को शिक्षा के प्रसार से उत्पन्न जागरूकता और धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र के शिथिल पड़ते बंधनों, महिलाओं,अल्पसंख्यकों और विभिन्न अन्य हाशिए के समूहों की स्थिति में आए बदलाव और सामाजिक स्तरीकरण में उनकी उत्तरोत्तर प्रगति और इसके अतिरिक्त समाज में निर्माणाधीन नवीन संरचनाओं व संस्थाओं के रूप में परिलक्षित किया जा सकता है।

सामाजिक और आर्थिक विकास दोनों एक-दूसरे की पूरक प्रक्रियाएँ हैं। इनमें से एक की प्रगति दूसरे को भी प्रभावित करती है और उसमें भी उसी दिशा और अनुपात में परिवर्तन होता है। सामाजिक क्षेत्र में क्रियाशील उन परिवर्तनों को सामाजिक विकास की संज्ञा दी जा सकती है, जो आर्थिक विकास के लिए अनुकूल और सहायक वातावरण का सृजन करते हैं। **जे.ए. पोनसन** के अनुसार सामाजिक क्षेत्रों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

- सांस्कृतिक और मानसिक पृष्ठभूमि, जिसके अंतर्गत व्यक्ति कार्य करते हैं तथा जो आर्थिक विकास से संबंधित गतिविधियों में भागीदारी हेतु उनकी इच्छा-अनिच्छा और कुशलता-अकुशलता का मूल्यांकन और निर्धारण करती है।
- समाज के नियम व्यक्ति को इतना समर्थ बनाते हैं कि वे अवसर आने पर वित्तीय तौर पर उनका सामना कर सकें।
- संस्थाएँ और सामाजिक संरचनाएँ, सामाजिक संगठनों और समूहों की सहायता से व्यक्ति का सामंजस्य सामूहिक के साथ-साथ व्यक्तिगत पक्षों में भी हो जाता है।
- समाज की कल्याणकारी सेवाएँ, जिनका नियोजन लोगों की सहायता के उद्देश्य से किया जाता है। परंतु यह क्षमता, ज्ञान अथवा धन के अभाव के कारण उपयुक्त आवश्यकताओं की आपूर्ति कर सकने में असमर्थ है।

1.3 सामाजिक विकास के प्रमुख निर्धारक

यद्यपि सामाजिक विकास को किसी भी एक ढाँचे में बाँधकर रख पाना अत्यंत मुश्किल है, तथापि यहाँ सामाजिक विकास के कुछ प्रमुख निर्धारकों का उल्लेख किया जा रहा है–

1. **परिवार-** समस्त मानव समूहों में परिवार को एक महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह के रूप में माना जाता है। इसके सदस्य आपस में रक्त संबंध अथवा विवाह संबंध द्वारा जुड़े होते हैं और इनमें एक भावनात्मक बाध्यता पाई जाती है। जन्म के पश्चात शिशु सवर्प्रथम अपनी माँ या परिवार के सदस्यों के संपर्क में आता है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है और यहीं वह सामाजिक जीवन से संबंधित मौलिक बातों के बारे में संज्ञान प्राप्त करता है। अतः सामाजिक विकास में पारिवारिक संदर्भ की प्रमुख भूमिका होती है|
2. **पालन शैली-** जब शिशु का जन्म होता है तो सबसे पहले उसका तादात्म्य माता-पिता के साथ स्थापित होता है, उसके बाद वह परिवार के अन्य सदस्यों के साथ संपर्क स्थापित करता है। शिशु के सामाजिक जीवन का निर्माण उसके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा किया जाता है। वर्तमान संदर्भ में विभिन्न परिवारों एवं संस्कृतियों के मध्य शिशु की पालन शैली में

पर्याप्त पाया पाया जाता है, यथा– पश्चिमी संस्कृति में बच्चों में स्वायत्तता, स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति विकास के बीजारोपण को प्राथमिकता दी जाती है। दूसरी ओर, भारतीय समाज में आज्ञापालन, सेवा, आदर एवं परोपकार या परिवार अथवा समाज के लिए त्याग की भावना के सृजन पर ज़ोर दिया जाता है। इस संबंध में प्रत्येक माता-पिता अनुशासन लागू करने के ढंग से एक-दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। इसके अलावा प्रोत्साहन एवं दंड के लिए उचित व्यवहार के चुनाव में भी अपनी शिक्षण शैली तथा बच्चों के प्रति स्नेह प्रदर्शन इत्यादि में भी अंतर पाया जाता है।

3. **सहोदर संबंध-** परिवार में बालकों के भाई-बहन अथवा सहोदर आदि भी उसके विकास पर प्रभाव डालते हैं। माता-पिता की अपेक्षा बच्चे अपने भाई अथवा बहन के साथ ज़्यादा सहज महसूस करते हैं और वे उनकी समस्याओं से जुड़े सुझावों को सरलता से प्रस्तुत कर पाते हैं। उनमें से अग्रज सहोदर की भूमिका बालक की देखभाल में ज़्यादा महत्वपूर्ण होती है। माता-पिता की ओर से विशिष्ट ध्यान पहले बालक को दिया जाता है तथा उस बालक से माता-पिता की उम्मीदें भी अधिक होती हैं। बड़े सहोदर से यह आशा की जाती है कि वह अपने से छोटे सहोदर के साथ संयमित व्यवहार तथा जिम्मेदाराना संवाद बनाएँ। प्रायः यह देखा गया है कि जन्म क्रम में पहले और बादs वाले बालकों की विशेषताएँ अलग-अलग होती हैं और बड़े सहोदर अपेक्षाकृत ज्यादा परिपक्व, संयमी, व्यावहारिक तथा पारिवारिक व सामाजिक मानकों का पालन करने वाले होते हैं।

4. **पारिवारिक संरचना और आकार-** परिवार में माता-पिता के अलावा अन्य सदस्यों (यथा दादा-दादी या अन्य लोग, बड़े भाई-बहनों) के साथ शिशु का संबंध कैसा है, यह भी उसके सामाजिक अथवा सांवेगिक विकास पर प्रभाव डालता है। अतः परिवार की संरचना शिशु के सामाजिक विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है, यथा- शिशु एकल परिवार का सदस्य है अथवा संयुक्त परिवार का अथवा विस्तृत परिवार का। जिन शिशुओं को परिवार में स्वीकृति मिलती है, वे बाहरी परिवेश से भी स्वीकृति की ही उम्मीद रखते हैं, परंतु परिवार से बाहर उम्मीद के अनुरूप व्यवहार न मिलने पर बालक निराश होता है, कभी-कभी क्रोधित भी हो उठता है। इसके विपरीत जो बालक परिवार और बाहर दोनों ओर अस्वीकृति पाते हैं, प्रायः अंतर्मुखी प्रवृत्ति के होते हैं। अर्थात यदि बालक को माता-पिता अथवा परिवार के अन्य सदस्यों का प्रोत्साहन प्राप्त होता है तो उसमें बहिर्मुखता का विकास होता है। इस प्रकार वह बालक कई सामाजिक व्यवहारों को अनुग्रहित करने में सक्षम हो पाता है।

5. **मित्र-मंडली**- बालक जब परिवार के वातावरण से बाहर निकलता है तो वह कुछ बाहरी बालकों के साथ संबंध स्थापित करता है। यह मित्रों का समूह उसके सामाजिक विकास में उल्लेखनीय योगदान देते हैं। बालक अपने ही उम्र के बालकों के साथ अंतःक्रिया करके अपनी योग्यताओं

6. अथवा निर्योग्यताओं के बारे में सूचना एवं प्रतिपूर्ति प्राप्त करता है। वे एक मानक के समान कार्य करते हैं और इसके आधार पर वे बालक आपसी क्रियाकलापों की तुलना करते हैं। बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वह मित्र-मंडली के साथ अधिक-से-अधिक समय व्यतीत करना पसंद करने लगता है। अंतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विकास में मित्र-मंडली की भूमिका महत्वपूर्ण है।
7. **खेल की भूमिका-** निःसंदेह बालक मित्र-मंडली के साथ संबंध स्थापित करने के साथ-साथ खेल-कूद जैसी क्रियाओं में भी संलिप्त होता है। खेल या क्रीड़ा एक आनंददायक कार्य है, जिसमें बालक का जुड़ाव स्वयं के लिए होता है, जो बालक के बहुमुखी विकास के लिए लाभदायक होता है। इसके अलावा खेल, बालक का मित्रों के साथ संपर्क, तनाव की कमी, संज्ञानात्मक विकास तथा अन्वेषण की प्रवृत्ति को प्रखर करने में सहायता करता है। यह बच्चों की एक-दूसरे के प्रति तादात्मय और सीखने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि करता है। खेल बालक में अतिरिक्त शारीरिक ऊर्जा का संचार करता है तथा उसे तनाव से भी मुक्त करता है।
8. **जनसंचार माध्यम-** पिछले कुछ वर्षों में, ख़ासकर 80 के दशक के बाद से जनसंचार माध्यमों का विस्तार(विशेषकर टेलीविजन का प्रचलन) व्यापक स्तर पर हुआ है। स्वस्थ मनोरंजन, शैक्षणिक कार्यक्रमों के प्रोत्साहन, विविध सूचनाओं को उपलब्ध कराने तथा समाजोपयोगी व्यवहार के लिए प्रतिरूप उपलब्ध कराने में टेलीविजन की भूमिका महत्वपूर्ण है। वहीं इसके विपरीत बालकों में पढ़ाई के प्रति निष्क्रियता, अरुचि, अवज्ञा एवं स्वछन्दता के साथ-साथ हिंसा तथा आक्रामक व्यवहारों के संवर्धन में भी टेलीविजन की भूमिका अहम होती है। इस संबंध में माता-पिता या पारिवारिक सदस्यों की यह जिम्मेदारी है कि बालकों को अच्छे कार्यक्रमों को देखने के लिए प्रोत्साहित करें।

1.4 सामाजिक विकास के संकेतक

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि सामाजिक विकास के अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पक्ष सम्मिलित होते हैं। सामाजिक विकास को व्याख्यायित करने में सहायक विभिन्न संकेतक निम्न विश्लेषित किए जा रहे हैं–

विकास के सामाजिक संकेतक

1. आज समाज परंपरागत के स्थान पर आधुनिक हो चुका है।
2. यदि वर्तमान समाज की वास्तविकता को खंगाला जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह समाज लोकतांत्रिक है न कि सत्तावदी।
3. समाज में किसी प्रकार का धर्म आधारित संस्तरणात्मक विभेदीकरण नहीं पाया जाता है।

4. परिवार द्वारा वहाँ की जाने वाले विभिन्न दायित्वों को निभाने के लिए कई सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों का विकास हो गया है, यथा– शिशु सदन, वस्तुओं की होम डिलिवरी, वृद्धाश्रम, अनाथालय, बीमा कंपनियाँ आदि।
5. समाज में व्यावसायिक और सामाजिक गतिशीलता ज़ोरों पर है। परंपरागत जाति व्यवस्था में यह प्रतिबंधित थी।
6. समाज नगरीकृत है और सामान्य तौर पर लोगों की जीवन शैली नगरीय है। प्रायः सभी विकासशील देशों में गाँव से नगर की ओर प्रवसन तेज़ी से हो रहा है।
7. स्वास्थ्य सुविधाओं के क्षेत्र में ऊर्ध्वाधर परिवर्तन आया है।
8. मृत्यु दर में कमी आयी है और इससे शिशु और मातृ मृत्यु दर में भी कमी दर्ज की गई है।
9. जनसंख्या वृद्धि में आंशिक ही सही पर कमी अवश्य आई है।
10. स्त्री और पुरुष साक्षारता दर में वृद्धि हुई है।

विकास के सांस्कृतिक संकेतक

1. विकसित समाजों में व्यक्ति का मुख्य लक्ष्य स्वयं की उपलब्धियों में उत्तरोत्तर वृद्धि करना होता है और वे सामान्यतः व्यक्तवादी, भौतिकवादी और लाभोन्मुखी प्रकृति के होते हैं।
2. सामाजिक विकास के साथ साथ राष्ट्रवाद और बहुलवाद भी मज़बूत होता है।
3. इसी के साथ मानवाधिकार से संबंधित एजेंसियों और संस्थाओं में भी संवर्धन होता है।
4. प्रथाएँ और परंपराएँ को कम महत्व दिया जाने लगता है।
5. धार्मिक विश्वास तो जीवित रहते हैं, परंतु उनसे संबंधित क्रियाकलापों और अनुष्ठानों का ह्रास होने लगता है।
6. लोगों के व्यवहार का निर्धारण परिस्थिति की ज़रूरतों द्वारा होता है। जातिवाद, क्षेत्रवाद, परिवारवाद, प्रजातिवाद, रूढ़िवाद, परंपरावाद आदि का प्रभाव अत्यंत कम हो जाता है।
7. लोग विवेकी और तर्कशील हो जाते हैं।
8. विकसित समाजों में व्यक्ति का अभिमुखन व्यक्ति व परिवार केंद्रित होता है न कि समुदाय अथवा समाज केंद्रित।

विकास के राजनीतिक संकेतक

1. राष्ट्र और राष्ट्रीयता का विकास होता है।
2. प्रायः विकसित और विकासशील समाजों में राजनीतिक व्यवस्था का सर्वाधिक स्वीकृत स्वरूप लोकतांत्रिक होता है।

ज्ञान शांति मैत्री

3. राज्य धर्म निरपेक्ष होता है और वह धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव की भावना का विरोध करता है।
4. नागरिक समाज और मानवाधिकार के प्रति चेतना समाज के विकास के साथ-साथ संवर्धित होती है।
5. प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त होती है।
6. प्रत्येक नागरिक के साथ समतापूर्ण व्यवहार करने का आश्वासन देता है।

1.5 मानव विकास

मानव विकास की अवधारणा की शुरुआत एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल आदि समाजवैज्ञानिकों के लेखन में देखने को मिलती है और समय के साथ-साथ आय वृद्धि पर अधिक फोकस करने के कारण विकास का मानवीय दृष्टिकोण धीरे-धीरे गौण होता चला गया। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रस्तुत की गई मानव विकास रिपोर्ट- 1990 के तहत इस संकल्पना को नवीन तरीके से प्रस्तुत किया गया है। यह माना गया कि विकास हेतु यह आवश्यक नहीं कि वह आर्थिक संवृद्धि, यथार्थपरक व धरातलीय ही हो। मानव विकास का संप्रत्यय संपूर्ण मानव कल्याण से जुड़ा है। यह विशेषकर विकास के मानवीय पक्ष से संबंधित है। संयुक्त राष्ट्र विकास प्रतिवेदन 1990 के अनुसार श्रीलंका, थाईलैंड आदि देशों का मानव विकास पैमाने पर प्रदर्शन उनके आय के स्तर की अपेक्षा में अधिक उत्कृष्ट है, इसके विपरीत सऊदी अरब, ओमान, अल्जीरिया आदि देशों में आय स्तर से अपेक्षाकृत नीचे मानव विकास पैमाना है और भारत, पाकिस्तान, चीन लगभग समान सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) पर काबिज हैं। चीन का मानव विकास स्तर अन्य दो देशों भारत और पाकिस्तान की तुलना में कहीं बेहतर है।

महबूब उल हक के अनुसार, *"आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास की विचारधारा में परिभाषात्मक अंतर यह है कि जहाँ आर्थिक संवृद्धि में केवल आय (एक विकल्प) पर ध्यान आकृष्ट किया जाता है, परंतु मानव विकास में सभी मानवीय विकास के विकल्प को समाहित किया जाता है।"*

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की 15वीं मानव विकास रिपोर्ट, जो 15 जुलाई, 2014 को प्रकाशिक की गई, में यह प्रस्तुत किया गया है कि मानव विकास से आशय जीवन प्रत्याशा, संतोषजनक साक्षरता और प्रतिव्यक्ति आय के उचित अनुपात से है। इस रिपोर्ट में विभिन्न राज्यों को मानव विकास के आधार पर रैंक दिया गया है–

राज्य	रैंक
केरल	1
पंजाब	2

तमिलनाडु	3
महाराष्ट्र	4
हरियाणा	5
गुजरात	6
कर्नाटक	7
पश्चिम बंगाल	8
राजस्थान	9
आंध्रप्रदेश	10
उड़ीसा	11
मध्य प्रदेश	12
उत्तर प्रदेश	13
असम	14
बिहार	15

ज्ञान शांति मैत्री

1.6 मानव विकास के आयाम

मानव विकास के आयामों को निम्न पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **शारीरिक विकास-** जन्म से पूर्व ही माता के गर्भ में शिशु का शारीरिक विकास प्रारंभ हो जाता है, यह एक स्वाभाविक, प्राकृतिक और निरंतर गतिशील प्रक्रिया है जिस पर वातावरण और वंशानुक्रम आदि का प्रभाव पड़ता है। शारीरिक विकास की मुख्य रूप से तीन अवस्थाओं को यहाँ उल्लेखित किया जा सकता है–
    - शैशवावास्था
    - बाल्यावस्था

- किशोरावस्था

2. **सामाजिक/सांवेगिक विकास-**संवेग अर्थात भावनाएँ, यथा– प्रेम, ईर्ष्या, क्रोध, चिंता आदि, परिस्थितियों की एक जटिल व्यवस्था है, जो कभी व्यक्ति के कार्य में अवरोध उत्पन्न करती हैं तो कभी उसके कार्य में बेहतर प्रदर्शन हेतु प्रेरणास्पद भूमिका में होती हैं। संवेग के कारण व्यक्ति क्रियाएँ संपन्न करता है और ये क्रियाएँ ही धीरे-धीरे उसकी आदतों में शुमार हो जाती हैं। यहाँ संवेग की कुछ विशेषताओं को प्रस्तुत किया जा रहा है–
   - बालकों में संवेग की उपस्थिति अल्पकालिक होती है।
   - संवेग जल्दी-जल्दी पैदा होते हैं।
   - बालकों में संवेग प्रायः घातक नहीं होते, परंतु किशोरावस्था में हानिकारक हो सकते हैं।

3. **नैतिक विकास-** परिवार, समाज, समुदाय आदि द्वारा बालक में नैतिक व्यवहारों का सृजन किया जाता है, यथा– *बड़ों का आदर करो, मेहमान का स्वागत करो, अतिथि देवो भवः, भगवान की प्रार्थना करो, जानवरों पर दया करो, विनम्रता से बात करो* आदि। नैतिक विकास के आधार पर बालकों को सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहारों के प्रति जागरूक करना मूल प्रयोजन होता है।
4. **संज्ञानात्मक विकास-** संज्ञान का तात्पर्य है जानना, समझना, देखना। अर्थात संज्ञानात्मक विकास से अभिप्राय परिपक्वता और पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करने के लिए ज्ञान में संवर्धन व समयानुसार समझने की क्षमता है। संज्ञान में मानसिक प्रतिमानों की संरचना को शामिल करने का कौशल होता है और इसमें विचार, भाषा, तर्क, स्मृति की भूमिका अहम होती है। इसी के आधार पर व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण के बारे में समझ विकसित कर पाता है।
5. **भाषिक विकास-** भाषा व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया से ही सीखता है और यह समाजीकरण परिवार व समाज से होता है। कुछ परिवार, जो व्यक्ति केंद्रित होते हैं, वहाँ प्रायः संप्रेषण सीमित होता है और बालकों की बातों पर कम ध्यान दिया जाता है उन बालकों का भाषिक विकास अपेक्षाकृत कम हो पाता है, जबकि जिन परिवारों में बालकों की बातों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है और संप्रेषण मुक्त रूप से होता है वहाँ बालकों में भाषिक विकास सहजता से होता है।

1.7 मानव विकास के संकेतक

जीवन की गुणवत्ता और मानव के अभावबोध को तुलनात्मक रूप से मापना सरल नहीं है, परंतु संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा निर्मित मानवविकास सूचकांक का प्रयोग इसके लिए किया जाता है। मानव विकास के मापन हेतु आवश्यक प्रमुख संकेतक निम्न हैं–

1. **जीवन प्रत्याशा-** एक निश्चित की गई उम्र के पश्चात जीवन में बचे शेष वर्षों की औसत संख्या ही जीवन प्रत्याशा है। अर्थात जीवन प्रत्याशा किसी व्यक्ति विशेष के औसत जीवनकाल का अनुमान है। उच्च शिशु मृत्यु दर से संबंधित देशों में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा जीवन के पहले कुछ वर्षों में होने वाली उच्च मृत्यु की दर के प्रति अति संवेदनशील होती है।
2. **साक्षरता दर-** किसी देश अथवा राज्य के कुल लोगों की जनसंख्या व पढ़े लिखे लोगों के अनुपात को साक्षरता दर कहा जाता है। समान्यतः इसे प्रतिशत में प्रदर्शित किया जाता है परंतु कभी-कभी साक्षरता दर को प्रति-कोटि (हर हजार पर) भी प्रदर्शित किया जाता है।
3. **जन्म दर-** एक कैलेंडर वर्ष में प्रति सहस्र जनसंख्या में घटित होने वाली लेखबद्ध जीवित संख्या ही जन्म दर (CBR) है। एक देश की वास्तविक स्वास्थ्य दशा की जानकारी के लिए तथा उसके विकास अथवा अवनति को जानने के लिए यह आवश्यक होता है।
4. **मृत्यु दर-** जन्म दर के विपरीत एक कैलेंडर वर्ष में प्रति सहस्र जनसंख्या में घटित होनेवाली लेखबद्ध मृत संख्या ही मृत्यु दर (CDR) है।
5. **शिशु मृत्यु दर-** शिशु मृत्यु दर (IMR) प्रति सहस्रजीवित जन्मे शिशुओं में से एक वर्ष या इससे कम उम्र में मृत गये शिशुओं की संख्या है।

ज्ञान शांति मैत्री

1.8 सारांश

इस इकाई में सामाजिक व मानव विकास के बारे में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक विकास के निर्धारक व संकेतकों पर प्रकाश डाला गया है और साथ-ही-साथ मानव विकास के विभिन्न आयामों व संकेतकों को भी प्रस्तुत किया गया है।

1.9 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: सामाजिक विकास क्या है? स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 2: सामाजिक विकास के प्रमुख निर्धारकों को बताइए।

बोध प्रश्न 3: मानव विकास के बारे में विवरण प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 4: मानव विकास के आयामों पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 5: टिप्पणी कीजिए-

1. सामाजिक विकास के संकेतक
2. मानव विकास के संकेतक

1.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

मिश्र, म.क. (2009). *भारत का विकास* (आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक). जयपुर: मार्क पब्लिशर्स

मिश्र, के.के. (2007). *विकास का समाजशास्त्र*. फैजाबाद: भवदीय प्रकाशन

सिंह, श. (2010). *विकास का समाजशास्त्र*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

नाटाणी, पी.एन. (2011). *भारत में सामाजिक विकास*. जयपुर:आदि पब्लिकेशन्स

प्रसाद, अ. (1997). *सामाजिक एवं आर्थिक विकास*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

मिश्र, एस.के. एवं पुरी, वी.के. (2012).*भारतीय अर्थव्यवस्था*. मुंबई: हिमालया पब्लिशिंग हाऊस

यादव, र.ग. (2014). *भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 2
सतत विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 सतत विकास
2.3 सतत विकास की प्रमुख विशेषताएँ
2.4 सतत विकास के तत्व
2.5 सतत विकास की चुनौतियाँ
2.6 सतत विकास हेतु विकसित और विकासशील देशों के लिए आवश्यक सुझाव
2.7 सारांश
2.8 बोध प्रश्न
2.9 संदर्भ उपं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- सतत विकास की अवधारणा और विशेषताओं की रेखांकित कर सकेंगे।
- सतत विकास के तत्व और चुनौतियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सतत विकास हेतु विकसित और विकासशील देशों के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

70 के दशक के अंत तक यह महसूस किया जाने लगा कि विकास जिस अप्रतिमानित तीव्रता से लागू किया जा रहा है, वह मानव के लिए घातक सिद्ध जो सकता है। इस अवधारणा की उत्पत्ति के लिए मूल चिंता का विषय यह था कि यह विकास मानव के लाभ से अधिक उसकी हानि के लिए उत्तरदाई प्रतीत होने लगा था। प्राकृतिक संसाधनों का जिस तेज़ी से दोहन किया जा रहा है यह मानव के लिए प्रमुख स्रोत की अनुपलब्धता का कारण हो सकता है। इसके अलावा इस असंतुलित विकास के परिणामस्वरूप ही जल और वायु प्रदूषण, पर्यावरणीय प्रदूषण, पारिस्थितिकीय असंतुलन आदि प्रकार की चिंताजनक स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं के प्रत्युत्तर के रूप में सतत विकास अथवा संपोषिया विकास

अथवा धारणीय विकास की अवधारणा का अभ्युदय हुआ है। यह विकास की वह अवधारणा है, जिसमें विकास की नीतियां क्रियान्वित करते समय इस बात का ध्यान आकृष्ट किया जाता है कि मानव की आवश्यकताओं की आपूर्ति की जा सके और यह आपूर्ति दीर्घकालिक समय के लिए हो। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा को विशिष्ट महत्व दिया जाता है।

2.2 सतत विकास

आर्थिक संवृद्धि की एक सीमा है और यह बात तब स्पष्ट हुई जब पर्यावरणीय अपकर्ष व असंतुलन इसके फलस्वरूप परिलक्षित होने लगा। इटली के पूँजीपतियों, नौकरशाहों व व्यापारिक सलाहकारों द्वारा गठित 'क्लब ऑफ रोम' ने 1970 में 'संवृद्धि की सीमाएं' एक नामक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के परिणामस्वरूप ही हरित क्रांति का अस्तित्व सामने उभर कर आया। लोगों का ध्यान पर्यावरणीय समस्याओं और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के घातक परिणामों की ओर आकृष्ट हुआ। इस रिपोर्ट के माध्यम से चेताया गया था कि प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण, प्रदूषण, खाद्यान्न उत्पादन, जनसंख्या वृद्धि और औद्योगीकरण की वर्तमान दर टिकाऊ और दीर्घकालिक नहीं है। गिडेंस द्वारा लिखित पुस्तक *'सोशिओलॉजी'* में 'क्लब ऑफ रोम' की रिपोर्ट में प्रस्तुत आलोचना का उल्लेख किया गया है। यह माँग व आपूर्ति, उपलब्ध संसाधनों के बीच संतुलन बनाने वाली बाजार शक्तियों की भूमिका तथा तकनीकी विकास से संबंधित वातावरणीय चुनौतियों का सामना करने की मानवीय क्षमता की उपेक्षा करती है।

सतत विकास की अवधारणा का सूत्रपात 1987 में ब्रंटलैंड रिपोर्ट 'आवर कॉमन फ्यूचर' के प्रकाशन से हुआ है। इस आयोग के अध्यक्ष ब्रटलैंड थे। इस रिपोर्ट के अनुसार प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और इसके संचयन अथवा बचाव के लिए यह आवश्यक है कि भावी पीढ़ी को इन्हें ध्यान में रखते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। इसमें सतत विकास को परिभाषित करते हुए कहा गया है, *"सतत विकास का अभिप्राय वर्तमान में लोगों की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को इस प्रकार से पूरा करना है कि अगली पीढ़ी को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की सामर्थ्य पर कोई आँच न आए।"* इस रिपोर्ट ने सरकार, गैर-सरकारी संगठनों और पर्यावरणवादियों का ध्यान इस ओर खींचा। तब से लेकर आज तक संयुक्त राष्ट्र सतत विकास से संबंधित सम्मेलन करता रहा है। सतत विकास की अवधारणा का उद्देश्य भौतिक , पर्यावरणीय, मानवीय आदि संपत्ति को समय के साथ-साथ बनाए रखते हुए, आर्थिक लाभ को प्राप्त करना और गरीब व हाशिए के समूहों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना है।

यह एक गतिमान अवधारणा है, जिसके अंतर्गत कई आयाम हैं तथा इसके स्पष्टीकरण नाना प्रकार से किए गए हैं।

- **रिपिटो-** *"सतत विकास से आशय विकास की बृहत नीति से है, ताकि सभी निधियाँ, प्राकृतिक संसाधन, मानवीय संसाधन और वित्तीय व भौतिक संसाधन अधिक समय तक धन और एश्वर्य को संवर्धित करते हुए मानव कल्याण में योगदान दे सकें।"*
- **विनपेनी-** *"सतत विकास का अभिप्राय पैतृक संपत्ति, जिसमें पर्यावरण से प्राप्त संसाधन भी शामिल हैं, उसे दीर्घकालिक अवधि के लिए संरक्षित रखने से है।"*
- **आदिदेशिया-***"सतत विकास वह विकास है, जिसके अंतर्गत सभी, खासकर बड़ी मात्रा में गरीबों का सेवायोजन, खाद्य ऊर्जा, पानी और आवास जैसी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा कृषि, शक्ति, निर्माण एवं सेवाओं में वृद्धि की जा सके, ताकि इन आवश्यकताओं की आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके। इस अर्थ में सतत विकास के सिद्धांत और निर्णय लेने दोनों में पर्यावरण और अर्थशास्त्र को अंतर्संबंधित किया जा सके।"*
- 1998 के इकोनोमिक सर्वे ऑफ इंडिया के अनुसार, सतत विकास अंतर्पिढ़ीगत समता पर ध्यान देते हुए पर्यावरणीय ज़िम्मेदारी की भावना के साथ विकास को ऊर्ध्वाधर गति देने का प्रयत्न है।
- **ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट (1994)-** *"सतत विकास का सार है कि प्रत्येक व्यक्ति की वर्तमान समय में तथा भविष्य में विकास संबंधी अवसरों तक पहुँच हो।"*
- **विश्व पर्यावरण और विकास आयोग-** *"सतत विकास परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, प्रौद्योगिकी का विकास तथा संस्थागत परिवर्तनों की दिशा के मध्य सामंजस्य हो, जिससे मानवीय आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के पूर्ति की वर्तमान और भावी क्षमताएँ संवर्धित हों।"*
- **डाली और गुडलैंड-** *"पुनः उत्पादन करने वाली और आत्मसात करने वाली क्षमताओं के अलावा खनिज पदार्थ व ऊर्जा की सम्पूर्ण व्यवस्था में संवृद्धि के बिना विकास ही सतत विकास है।"*
- **गुडलैंड और लेडाक** के अनुसार सतत विकास है–

i. प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग कुछ इस तरह से किया जाना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी तक वे उपलब्ध रह सकें तथा उनके उपयोग में कमी न आए।

ii. खनिज संसाधनों का उपयोग कुछ इस तरह से किया जाना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी तक ये अनुपलब्ध न हो जाएँ।

iii. नवीकरण न होने वाले ऊर्जा संसाधनों का क्षरण कम मात्रा में किया जाना चाहिए, ताकि भावी पीढ़ी तक इनके उपयोग को संरक्षित किया जा सके।

सतत विकास से संबंधित उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि यह संसाधनों के उचित उपयोग और वास्तविक आवश्यकताओं की आपूर्ति से संबंधित विकास की संकल्पना है। विश्व के सभी वंचित लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जाए और सभी को बेहतर जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान किया जाए। यदि विश्व में गरीबी और असमानता विद्यमान रहेगी तो पारिस्थितिकीय और अन्य प्रकार के खतरे जीवंत बने रहेंगे। सतत विकास की संकल्पना में मनोवृत्ति जिस प्रकार के विचार का सृजन करेगी, वे होंगे–

1. पृथ्वी पर संसाधन सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं।
2. जीवन की गरिमा मात्र भौतिक संपत्ति पर ही आश्रित नहीं है।
3. संसाधनों के दोबारा उपयोग और उचित उपयोग से संसाधनों के समाप्ति के संकट से निपटा जा सकता है।
4. अनुपयोगी हो चुकी वस्तुओं को पुनः उपयोगी बनाकर उपयोग में लाना चाहिए।
5. मनुष्य, प्रकृति का अंग है अतः हमें उसके नियमों का पालन करना चाहिए।
6. प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध स्थापित करना चाहिए।
7. व्यक्तिगत स्तर पर जागरूक होकर पर्यावरणीय समस्याओं का सामना करना चाहिए और उनके समाधान की तलाश करनी चाहिए।
8. परियोजनाओं और कार्यक्रमों की लागत में वस्तुओं, ऊर्जा और श्रम के अलावा उसमें स्वास्थ्य और पर्यावरण को होने वाली क्षति की लागत को भी शामिल किया जाना चाहिए।

2.3 सतत विकास की प्रमुख विशेषताएँ

सतत विकास की संकल्पना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. सतत विकास एक प्रक्रिया है, जिसमें पर्यावरणीय, सामाजिक व आर्थिक संसाधनों के दोहन को इस तरह से लागू करने पर जोर दिया जाता है कि संसाधन पूर्ण रूप से नष्ट न हों। भविष्य में संसाधनों के पुनः उपयोग को महत्व दिया जाता है।
2. सामाजिक लक्ष्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखना चाहता है। जीवन की गुणवत्ता के मुख्य पहलू हैं- शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य व पर्यावरणीय संरक्षण।
3. सतत विकास का प्रयोजन वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए औसत जीवन गुणवत्ता को बनाए रखना होता है।
4. सतत विकास में आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक समता व पर्यावरणीय गुणवत्ता को भी महत्व दिया जाता है।

5. इस अवधारणा में समता प्रमुख होती है। अर्थात् धनी एवं गरीब के बीच, पीढ़ियों के बीच और राष्ट्रों के बीच विकास की लागत और लाभों के उचित वितरण को सतत विकास में प्रमुखता दी जाती है।
6. इसमें सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय उद्देश्यों के बीच संबंधों की स्थापना करने का प्रयत्न किया जाता है।

2.4 सतत विकास के तत्व

सतत विकास में सभी की जीवन गुणवत्ता में सुधार को प्रायोजित करते हुए समवेशिता और समता को महत्व दिया जाता है और साथ-ही-साथ यह पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं को सुनिश्चित करने से संबंधित है। इस प्रकार विकास के तत्व निम्न हैं–

1. **समावेशिता-** विकास इस प्रकार का होना चाहिए, जिसमें मानव और पर्यावरणीय व्यवस्था के साथ वर्तमान और भविष्य के लिए उपलब्ध संसाधनों पर भी ध्यान दिया जाता हो। आर्थिक संवृद्धि, जनसंख्या परिवर्तन, प्रौद्योगिकी परिवर्तन, व्यक्तियों की प्रवृत्ति एवं व्यवहारों को भी प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के रूप में परिलक्षित किया जाना चाहिए।
2. **संबंध-** सतत विकास में आवश्यक है कि आर्थिक उद्देश्यो के साथ-साथ सामाजिक व पर्यावरणीय उद्देश्यो की पूर्ति पर ध्यान दिया जाए।
3. **समता-** सतत विकास के लिए आवश्यक है कि पीढ़ी के अंतर्गत तथा पीढ़ियों के बीच संसाधनों व संपत्ति संबंधी अधिकारों का बटवारा उचित तरीके से हो, ताकि समता पर बल दिया जा सके।
4. **बुद्धिमत्ता-** इसमें विवेकशीलता का परिचय देते हुए संसाधनों के उचित प्रयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए और साथ ही संसाधनों के पुनः उपयोग की सराहना की जानी चाहिए।
5. **सुरक्षा-** यह व्यक्ति केंद्रित होता है और भावी पीढ़ी के लिए संसाधनों की सुरक्षा करना इसका प्रमुख प्रयोजन है।
6. **उपभोकतावाद की संस्कृति का विरोध-** वर्तमान पीढ़ी को सतत विकास के आलोक में संसाधनों के दोहन का विरोध किया जाना चाहिए और संयम और नियम से आवश्यकतानुसार संसाधनों के उपयोग को महत्व देना चाहिए।

2.5 सतत विकास की चुनौतियाँ

सतत विकास की संकल्पना से यह बात तो पूर्णरूपेण सिद्ध होती है कि यह पर्यावरण के क्षरण के विरोध में है और संसाधनों के संरक्षण का पक्षधर है। पर्यावरण को संरक्षित तभी रखा जा सकता है जब लोग बड़ी मात्रा में इसके लाभ और हानि के प्रति जागरूक हों और उनकी मनोवृत्ति इसके संवर्धन के प्रति गंभीर हो।

इसके लिए आवश्यक है कि लोगों की अंतर्दृष्टि में परिवर्तन हो। इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारक निम्न होंगे–

- साक्षारता
- बाजार शक्तियाँ
- प्रौद्योगिकी
- संस्थागत परिवर्तन

पर्यावरण और विकास के मध्य अत्यंत गहरा संबंध है। संसाधनों के लगातार दोहन से पर्यावरणीय क्षरण होने लगता है और इससे संसाधनों में कमी भी आ जाती है, जिससे विकास बाधित होने लगता है। इन कारणों से मानव के अस्तित्व पर भी खतरा मंडराने लगता है। इसके समायोजन के लिए सतत विकास एक सटीक उपाय है।

मानव संसाधन विकास को विकास की नीतियों और गतिविधियों के नियोजन में सावधानी बरतनी चाहिए और प्रमुख आयामों में आर्थिक और परिस्थितिशास्त्रीय विकास के समन्वय को सम्मिलित करने की आवश्यकता है।

सतत विकास के लिए चुनौती के रूप में जनसंख्या वृद्धि भी खड़ी है। जनसंख्या जितनी ही अधिक होगी, भौतिक वस्तुओं और अन्य संसाधनों का उपयोग भी उतनी ही अधिक मात्रा में होगा, इससे संसाधन की अनुपलब्धता का खतरा है। सतत विकास तभी संभव है जब जनसंख्या और परिस्थितिकीय तंत्र की उत्पादक क्षमता में सामंजस्य स्थापित हो।

वर्तमान और भविष्य में आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि संसाधनों को संरक्षित किया जाए। उन संसाधनों का उपयोग किया जाना चाहिए, जिसे नवीकरण किया जा सके, यथा– सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि। अपशिष्ट वस्तुओं को पुनः उपयोग हेतु बनाकर इस्तेमाल किया जाना चाहिए, यथा– जैविक अवशिष्ट से बायोगैस आदि।

2.6 सतत विकास हेतु विकसित और विकासशील देशों के लिए आवश्यक तत्व

सतत विकास हेतु विकसित समाजों के लिए सुझाव निम्न हैं–

1. जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाई जाए।
2. संसाधनों के दोहन को नियंत्रित किया जाए।
3. आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
4. नवीकरण और संरक्षण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
5. हथियारों के विक्रय को कम किया जाना चाहिए।
6. शांति और संयम को महत्व देना चाहिए।

7. सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों को लागू किया जाना चाहिए।
8. वैश्विक स्तर पर सहयोग की भावना को विकसित किया जाए।

सतत विकास हेतु विकासशील समाजों के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं–

1. जनसंख्या वृद्धि दर को नियंत्रित रखना।
2. संसाधनों का उपयोग देश की आवश्यकताओं की पूर्ति में किया जाना चाहिए।
3. संपोषीय कृषि व्यवस्था का प्रयोग करना।
4. पाश्चात्य कृषि और प्रौद्योगिकी व्यवस्था को धारण करने में संयम रखा जाना चाहिए।
5. अधिकतम आत्मनिर्भरता को प्राप्त किया जाय।
6. पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य रखा जाना चाहिए।

2.7 सारांश

सतत विकास, विकास का वह स्वरूप है जो पर्यावरण को बिना किसी नुकसान पहुँचाता हो और न ही नवीन पर्यावरणात्मक बोझ आरोपित करता है। इसे पारिस्थितिकीय विकास के नाम से भी जाना जाता है। सतत विकास के पीछे स्पष्ट तौर पर यह मत है कि एक देश का संसाधन आधार तथा उसके जल, वायु और भूमि के स्रोत उस देश की सभी पीढ़ियों (वर्तमान और अगली) की संयुक्त संपत्ति है। अल्पकालिक लाभों के लिए इसका अप्रतिमानित दोहन अथवा विनाश करने का सीधा अर्थ यह है कि इस लाभ के प्राप्ति के मूल्य के रूप में अगली पीढ़ी अपने संसाधनों की वंचना से चुकाएगी। यह स्पष्ट तौर पर उनके हितों का हनन है जो कि अनुचित है। अतः अगली पीढ़ी के लिए उचित मात्रा में संसाधनों की उपलब्धता के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि सतत विकास कि संकल्पना को सरोकार किया जाए और संसाधनों का उचित उपयोग ही किया जाए एवं साथ-ही-साथ उनके नवीकरणीय उत्पादों व दोबारा उपयोग पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

2.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: सतत विकास क्या है? स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 2: सतत विकास की विशेषताओं को बताइए।

बोध प्रश्न 3: सतत विकास की चुनौतियों पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 4: सतत विकास के तत्वों की विवेचना कीजिए।

बोध प्रश्न 5: सतत विकास से संबंधित सुझावों को प्रस्तुत कीजिए।

2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

इलिएट, जे.ए. (2010). *एन इंट्रोडक्शन टू सस्टेनेबल डेवेलपमेंट.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

जैन, पी.के. (2009). *खनिज सम्पदा और सतत विकास.* नई दिल्ली: साइंटिफिक पब्लिशर्स

यादव, र.ग. (2014). *भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास.* नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड

मिश्र, के.के. (2007). *विकास का समाजशास्त्र.* फैज़ाबाद: भवदीय प्रकाशन

सिंह, श. (2010). *विकास का समाजशास्त्र.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

मिश्र, एस.के. एवं पुरी, वी.के. (2012).*भारतीय अर्थव्यवस्था.* मुंबई: हिमालया पब्लिशिंग हाऊस

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3
विकास और प्रगति: आर्थिक और सामाजिक आयाम

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 विकास की संकल्पना और अर्थ
3.3 विकास के प्रकार
3.4 विकास के स्तर
3.5 विकास के मॉडल
3.6 प्रगति की संकल्पना और अर्थ
3.7 प्रगति की विशेषताएँ
3.8 प्रगति के प्रकार
3.9 विकास और प्रगति में अंतर
3.10 सारांश
3.11 बोध प्रश्न
3.12 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- विकास और उसके विभिन्न प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विकास के स्तर और मॉडलों का विश्लेषण कर पाने में समक्ष होंगे।
- प्रगति और उसकी विशेषताओं के बारे में समझ विकसित कर पाने में सक्षम होंगे।
- प्रगति के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- विकास और प्रगति में अंतर को विश्लेषित कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

समाज निरंतर परिवर्तित होता रहता है और यह प्रक्रिया सदैव क्रियाशील रहने वाली है। सभी समाजों में हमेशा से किसी-न-किसी रूप में बदलाव होते रहे हैं, कोई समाज अपनी स्थिति में दृढ़ नहीं रहा है। यदि ये परिवर्तन सकारात्मक हुए तो वे समाज के लिए कल्याणकारी होंगे और इसके विपरीत यदि परिवर्तन नकारात्मक हुए तो वे समाज को विघटित करने में योगदान देंगे। जब परिवर्तन वांछित दिशा में हो तो उसे

कल्याणकारी परिवर्तन के रूप में माना जाता है और यही कल्याणकारी परिवर्तन ही प्रगति कहा जाता है। विकास को प्रगति का एक विशिष्ट स्वरूप माना जा सकता है, जो एक योजनाबद्ध तरीके से अथवा किसी पूर्वनिर्धारित प्रारूप के तहत होता है।

3.2 विकास की संकल्पना और अर्थ

वस्तुतः विकास शब्द जितना आकर्षक प्रतीत होता है, यह उतना ही जटिल भी होता है। विकास स्वयं में विभिन्न संरचना और आयामों के गतिशील पक्ष को समेटे हुए है। इस अवधारणा का काल भी कुछ खास पुराना नहीं है। पश्चिमी यूरोप में औद्योगिक क्रांति और ज्ञानोदय (रेनेसा) के बाद क्रियाशील हुआ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन विकासशील देशों में प्रगति के स्तर को मापने के लिए, विकास और आधुनिकीकरण का मानक बन गया। यह एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के अविकसित देशों की पश्चिम के विकसित देशों के साथ तुलना का प्रतिनिधित्व करता है। विकास की अवधारणा का सूत्रपात पश्चिमी पूँजीवाद के अभ्युदय के साथ ही आरंभ हुआ है और विकास की धारणाओं को मानने वाले विद्वानों द्वारा समाज को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है –

- **विकसित समाज-** यह वह समाज होता है जो अपने नागरिकों को उनके जीवन की सभी आवश्यकताओं को सरलता से उपलब्ध करा देता है। यह समाज विकास के अंतिम चरण में होता है। यथा – फ्रांस, जापान, अमेरिका इत्यादि।
- **विकासशील समाज-** यह वह समाज होता है जहाँ विकास वह अपनी दिशा में अग्रसर हो रहा होता है। यथा– भारत, चीन, पाकिस्तान इत्यादि।
- **अविकसित समाज-** यह वह समाज होता है जहाँ विकास की संभावनाएँ नहीं होती हैं अथवा वह समाज विकास की दिशा में अत्यंत पिछड़ा होता है। यथा– दक्षिणी-उत्तरी ध्रुव, सहारा का मरुस्थल इत्यादि।

विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसका प्रत्यक्ष संबंध आर्थिक पक्ष से होता है। इस संबंध में विद्वानों का मानना है कि समाज के विभिन्न प्रकार के उद्देश्य होते हैं, जो उसकी संरचना व प्रकार्यों में ऊर्ध्वाधर परिवर्तन और स्थायित्व से संबंधित होते हैं, उन उद्देश्यों को प्राप्त तभी किया जा सकता है जब समाज में

विकास का आयाम आर्थिक होगा। अर्थात सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक विकास ही एकमात्र उपाय है। विकास की प्रक्रिया से वे तत्व उभरकर सामने लाए जाते हैं, जिसकी समाज को आवश्यकता है। इसमें समाज को परिवर्तित तो किया ही जाता है और इसके साथ-ही-साथ यह परिवर्तन किसी निश्चित दिशा को इंगित करता है। हालांकि इस दिशा को पूर्व ही निश्चित नहीं किया जाता है, तथापि यह एक ही दिशा से संबंधित होता है।

विकास एक अवधारणात्मक पद है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात समूचे विश्व में विकास एक महत्वपूर्ण शब्द के रूप में उभरा है तथा समकालीन आर्थिक जगत में विकास एक नए विमर्श के रूप में अवस्थित है। विकास शब्द की उत्पत्ति 1745-55 ई. में माना जाता है। विकास शब्द अँग्रेज़ी के 'Development' का हिंदी रूपांतरण है और यह शब्द फ्रेंच भाषा के 'Developer' से लिया गया है। इसका आशय लपेटने अथवा बाँधने के विपरीत अर्थ से लगाया जाता है। 18वीं शताब्दी में पुनः इस शब्द में विस्तार हुआ, इसमें विकास (Developing) का आशय मानवीय मन के अवयवों के संदर्भ में लगाया जाने लगा। 18वीं शताब्दी के मध्य में इसे जीव विज्ञान में 'Evolution' के समीपवर्ती का शब्द माना जाने लगा। 19वीं शताब्दी में इसका प्रयोग राष्ट्रों के विकास के संदर्भ में किया जाने लगा। 1878 में इसका इस्तेमाल कारखानों (Industry) के संदर्भ में होने लगा। 1945 ई. के पश्चात इस शब्द में कई अन्य पक्ष जुड़ गए और एक नए शब्द 'Underdevelopment' की अभिव्यक्ति हुई, जिसका अभिप्राय 'प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग न होना' से लगाया गया। बाद में इसका प्रयोग विकास की स्थिति को प्रदर्शित करने के लिए किया जाने लगा। विकास शब्द अपनी जटिलता की ओर अग्रसर हो रहा था। विभिन्न अर्थशास्त्री यह मानने लगे कि विकासशील एक थोपी गई अवधारणा हो सकती है, जबकि जिस पर यह थोपी जा रही है वह अपने अनुसार उस समय में विकसित होते हैं। आधुनिक विकास की अवधारणा में विकासशील राष्ट्रों को अनुदान दिए जाने की प्रक्रिया में उनकी अस्मिता का खारिजपन निहित है और उन्हें पूरे विश्व के बाजार पर निर्भर करना है।

पानसियान के अनुसार, *"विकास संकुचित अर्थ में परिवर्तन है, यह वृद्धि से संबंधित है जो पहले से ही किसी वस्तु में छिपे तौर पर उपलब्ध है।"*

बोटोमोर का मानना है कि विगत कुछ समय से मोटे तौर पर दो रूपों में विकास की संकल्पना का इस्तेमाल किया जा रहा है, पहला, इसका उपयोग औद्योगिक समाजों और ग्रामीण समाजों, कृषि समाजों व आर्थिक रूप से पिछड़े एवं निर्धन समाजों में विभेद करने के लिए किया जा रहा है और दूसरा, आधुनिकीकरण अथवा औद्योगीकरण की प्रक्रिया को विश्लेषित करने में किया जा रहा है।

हॉबहाउस द्वारा अपनी प्रसिद्ध कृति *'सोशल डेवलपमेंट'* में विकास के मुख्य रूप से चार आयामों का वर्णन किया गया है–

1. मात्रा में बढ़ोतरी
2. कार्यक्षमता में बढ़ोतरी
3. आपसी सहयोग
4. मानव की स्वतंत्रता

प्रो॰ इरमा एडेल्म्रेन के अनुसार, *"आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक ऐसी आय व्यवस्था, जिसमें प्रति व्यक्ति आय वृद्धि की दर नीची या ऋणात्मक हो ऐसी अर्थव्यवस्था में बदल जाती*

है, जिसमें प्रति व्यक्ति आय में ऊँची दर से वृद्धि होना एक स्थायी और दीर्घकालीन विशेषता बन जाती है।"

रोस्टोव के अनुसार, *"आर्थिक विकास एक ओर पूँजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के बीच और दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि की दर के बीच ऐसा संबंध है, जिससे प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि होती है।"*

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिवेदन के अनुसार, *"विकास मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी संबंधित होना चाहिए। अतः विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल हैं।"*

3.3 विकास के प्रकार

विकास के कुछ प्रमुख प्रकारों को यहाँ उल्लेखित किया जा रहा है–

1. **आर्थिक विकास-** आर्थिक विकास से आशय नवीन आर्थिक व्यवस्था की निर्मिति से है, जिसमें उत्पादन अधिक मात्रा में संभव हो और आय में वृद्धि हो। देशों, क्षेत्रों या व्यक्तियों की आर्थिक समृद्धि की बढ़ोतरी को आर्थिक विकास की संज्ञा दी जाती है। नीति-निर्माण के पक्ष से आर्थिक विकास उन सभी प्रयासों को कहा जाता है, जिसका उद्देश्य जन-समुदाय की आर्थिक स्थिति व जीवन-स्तर में सुधार लाना होता है। इसके अंतर्गत उस औपचारिक संरचना का निर्माण किया जाता है जो अपने दृष्टिकोण से विवेकी हो। आर्थिक विकास में नैतिकता के भाव भी पाए जाते हैं और इसके कारण ही सामाजिक कल्याण का प्रयोजन पूर्ण हो पता है।
2. **सामाजिक विकास-** सामाजिक विकास वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक मूल्यों, परंपराओं, नियमों से संबंधित तत्वों को समाज में पुष्ट किया जाता है। सामाजिक विकास के अंतर्गत समाज से संबंधित सभी पहलुओं को शामिल किया जाता है, यथा– शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य और अन्य प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए सामाजिक विकास कार्यक्रमों का नियोजन।
3. **राजनैतिक विकास-** राजनैतिक विकास की सबसे अधिक आवश्यकता राष्ट्र के कल्याण हेतु होती है। खासकर उन राष्ट्रों के लिए, जो द्वितीय विषययुद्ध के पश्चात स्वतंत्र हुए हैं और राजनैतिक विकास हेतु जूझ रहे हैं। सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक है कि राजनैतिक स्थिरता बनी रही और यह स्थिरता राजनैतिक विकास से ही स्थापित की जा सकती है।

3.4 विकास के स्तर

विकास एक प्रकार का परिवर्तन है, जिसका सीधा संबंध आर्थिक पहलुओं से है। इस आधार पर समाज को मोटे तौर पर चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **खानाबदोशी अथवा घुमंतू जीवन-** इस स्तर पर मनुष्य शिकार और खाद्य पदार्थ की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान विचरित करता था। इसे फ़िरंदी, शिकारी स्तर भी कहा जाता है। यह आर्थिक जीवन के विकास का पहला स्तर माना जाता है। शिकार करने के कारण मनुष्यों को कई खतरों से भी गुजरना पड़ता था, जिसके कारण वे प्रायः झुंड में रहना पसंद करते थे। इसी कारण सामाजिक जीवन और संपर्क की प्रधानता थी।
2. **पशुचारी जीवन-** शिकारी जीवन बिताने के बाद का अगला स्तर, जिसमें मनुष्य पशुओं को पालना आरंभ कर दिया। घोड़े, गाय, भेड़, बकरियाँ आदि को पालने में अधिक मात्रा में रुचि थी और इसके पीछे स्पष्ट कारण यह था कि ये जानवर दूध, मांस, खाल आदि के उत्पादन में काम लिए जाते थे। कृषि अस्थायी तौर पर की जाती थी
3. **कृषक जीवन-**इस स्तर पर कृषि स्थायी तौर पर की जाने लगी और अनेक प्रकार की फसलों व उनके लिए उपयुक्त समय के बारे में संज्ञान हो चुका था। कृषि कार्य में संलिप्त व्यक्तियों ने अपने रहने के लिए स्थायी वस्तियों का निर्माण कर लिया। लोगों में वस्तुओं के विनिमय की प्रथा प्रचलित थी। इस काल में सामाजिक संपत्ति का विकास हुआ और इस पर अधिकार संपूर्ण समाज का होता था। धीरे-धीरे कुटीर उद्योगों का विकास होना आरंभ हुआ और कुम्हार, लोहार, बढ़ई आदि ने छोटी-मोटी वस्तुओं का निर्माण करना आरंभ कर दिया। इन वस्तुओं से उन्होंने अपने जीवन-यापन के मार्ग को प्रशस्त किया। श्रम विभाजन की व्यवस्था इसी स्तर में अस्तित्व में आई थी।
4. **औद्योगिक जीवन-** प्रौद्योगिकी और विज्ञान में विकास और मशीनी क्रांति के कारण इस स्तर का जन्म हुआ। इस स्तर को आर्थिक विकास के चरमोत्कर्ष की दशा माना जाता है। यातायात के संसाधनों में बड़े पैमाने पर वृद्धि हुई है और इसके कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई है। भौतिक और विलासितापूर्ण जीवन में बढ़ोत्तरी हुई है। वैयक्तिक संपत्ति के महत्व में वृद्धि हुई है। बड़े पैमाने पर कल-कारखानों का विस्तार हुआ है।

3.5 विकास के मॉडल

यदि समाज का लक्ष्य विकास करना है तो निःसन्देह वह इसके लिए विकास के किसी मॉडल को प्रयोग में लाएगा। यहाँ विकास के प्रमुख तीन मॉडलों की चर्चा की जा रही है–

1. **पूँजीवादी मॉडल-** पूँजी और उत्पादन के साधनों के वैयक्तिक आधिपत्य की संकल्पना पर पूँजीवादी मॉडल काम करता है। यह बाजार में मूल्य निर्धारण और संसाधन के आबंटन पर राज्य के हस्तक्षेप को शिथिल करता है। आर्थिक गतिविधियाँ बाजार की माँग व आपूर्ति के प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में तय होंगी और यह प्रक्रिया उत्पादन और वितरण में कुशलता के तत्व को समावेशित करेगी। यह अंतर्राष्ट्रीय जगत में वाणिज्य और व्यापार की ओर उन्मुखी

राष्ट्रीय विकास को प्राथमिकता देता है। इस प्रकार के विकास में सकल राष्ट्रीय उत्पादन (GNP) और प्रति व्यक्ति आय का विश्लेषण उच्च विकास के पैमाने के रूप में किया जाता है। यह मॉडल सबसे अधिक पश्चिमी देशों, अमेरिका और जापान आदि विकसित देशों द्वारा अपनाया जाता है।

2. **समाजवादी मॉडल-** यह मॉडल पूँजीवादी मॉडल से इस अर्थ में भिन्न होता है कि इसमें संसाधनों के वितरण पर आर्थिक विकास की अपेक्षा अधिक ध्यान आकृष्ट किया जाता है। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि सामाजिक क्षेत्रों में व्यक्ति के सर्वांगीर्ण विकास को महत्व देता है। यह मॉडल सर्वप्रथम तथाकथित साम्यवादी देशों (जिन्हें दूसरी दुनिया के देश कहा जाता है) ने अपनाया है। इन देशों में से सबसे प्रमुख यू.एस.एस.आर., क्यूबा, वियतनाम और चीन देश हैं।
3. **मिश्रित मॉडल-** इसे तीसरी दुनिया के देशों के विकास मॉडल के रूप में मान्यता मिली हुई है। यह उपरोक्त दोनों मॉडलों, पूँजीवादी और समाजवादी मॉडलों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करता है। उपनिवेश से नए स्वतंत्र हुए देशों द्वारा 50 और 60 के दशकों में इसे अपनाया गया। इसके पीछे स्पष्ट कारण यह था कि नवीन आजाद देशों के पास न तो पर्याप्त संसाधन थे कि वे अपना विकास स्वयं कर सकें और न ही पर्याप्त मात्रा में पूँजी। इसके कारण उन्हें विकसित देशों से सहायता के लिए आश्रित रहना पड़ता था। जनता की अत्यधिक निर्धनता की समस्या के निपटारे के लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता थी, जिसके कारण मिश्रित व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गई। इन्होंने मिश्रित मॉडल के आधार पर सामाजिक नियोजन के साथ-साथ पूँजीवादी विकास की व्यवस्था को अपनाया, जिसने सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के रूप में समन्वित विकास को महत्व प्रदान किया। इस प्रकार के मिश्रित अर्थव्यवस्था से संबंधित मॉडल का अनुसरण भारत द्वारा भी किया गया है।

ज्ञान शांति मैत्री

3.6 प्रगति की संकल्पना और अर्थ

किसी निर्धारित लक्ष्य और आदर्श की ओर उन्मुखी क्रमिक उन्नति, जो कि समाज के लिए कल्याणकारी होती है, को प्रगति कहते हैं। यह समाज विशेष के लिए अलग-अलग हो सकती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी समाज में हो रही प्रगति दूसरे समाज के लिए भी प्रगति ही हो, वह उसके लिए अवनति भी हो सकती है। यह समय के सापेक्ष रहने वाली अवधारणा भी है अर्थात किसी समाज के लिए जो आज प्रगति है, वह कल को उस समाज के लिए अवनति भी हो सकती है। इसके पीछे सीधा तर्क यह है कि जिस प्रकार से हमारे मूल्यों में परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार से हमारी सामाजिक व मनोवैज्ञानिक दशा में भी परिवर्तन होता है, इसी कारण समय के अनुसार प्रगति की संकल्पना में भी परिवर्तन होता जाता है। एक उदाहरण की सहायता से इसे सरलता से समझा जा सकता है, भारतीय वैदिक सभ्यता में उसी समाज को प्रगतिशील की संज्ञा दी जाती थी, जो धार्मिक कर्मकांडों और परंपराओं में गूढ़ तरीके से संलिप्त पाए जाते थे, परंतु आज की धारणा इससे बिल्कुल पृथक अस्तित्व रखती है आज उस समाज को प्रगतिशील की

संज्ञा दी जाती है जो धार्मिक कर्मकांडों से दूर रहे। वही पश्चिमी समाजों में उस व्यक्ति को प्रगतिशील माना जाता है जो शराब का सेवन करता हो, नाचघरों में जाता हो और इसी प्रकार के अन्य कृत्यों में संलग्न हो। वहीं इसके विपरीत भारतीय समाज में शराब आदि के सेवन को अत्यंत निकृष्ट श्रेणी में रखा जाता है। इस प्रकार से देखा जा सकता है कि विभिन्न समाजों में और अलग-अलग समय में लोगों की धारणाओं में पर्याप्त अंतर पाया जाता है और इन्हीं के आधार प्रगति की संकल्पना को भी वैधता दी जाती है।

इसी प्रकार कुछ समय पहले मोटर, वायुयान, रेल और अन्य सुख सुविधाओं के साधनों को भोग विलासिता का सूचक माना जाता था और यह भी कहा जाता था कि जो व्यक्ति इन क्रियाकलापों में संलिप्त हो जाता है वह धर्म आदि के उच्च आदर्शों से विमुख होने लगता है और यही उसके विनाश का कारण बनता है। इसके विपरीत वर्तमान धारणा कुछ और ही कहती है। वर्तमान सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उल्लेखनीय योगदान है। आज उन वस्तुओं को प्रगति के रूप में माना जाता है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के देन हैं।

यहाँ कुछ विद्वानों द्वारा की गई प्रगति की परिभाषाओं का उल्लेख किया जा रहा है –

1. **जिंसबर्ग,** *"प्रगति वह विकास अथवा वृद्धि है जिसका निर्धारण मूल्यों द्वारा किया जाता है।"*
2. **हॉबहाउस,** *"प्रगति से अभिप्राय सामाजिक जीवन में उन गुणों की वृद्धि से है जिन्हें मनुष्य मूल्यों अथवा विचारयुक्त मूल्यों से संबंधित कर सके।"*
3. **आगबर्न और निमकोफ,** *"प्रगति का अर्थ श्रेष्ठतर परिवर्तन से है और इसलिए इसमें मूल्य निर्धारण का समावेश होता है।"*
4. **मैकाइवर और पेज,** *"प्रगति में सामाजिक परिवर्तन की दिशा का संज्ञान नहीं होता वरन किसी अंतिम उद्देश्य की ओर ले जाने वाली दिशा का भी संज्ञान होता है।"*
5. **लम्ले,** *"प्रगति परिवर्तन है, लेकिन यह परिवर्तन किसी एक वांछित दिशा में होने वाला परिवर्तन है, किसी भी दिशा में होने वाला परिवर्तन नहीं।"*

निष्कर्ष के रूप में उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रगति की संकल्पना सामाजिक मूल्यों के सापेक्ष है। दो समाजों में से कौन समाज प्रगति कर रहा है और कौन सा समाज प्रगति नहीं कर रहा है, कौन समाज कितना प्रगति कर रहा है, आदि का निर्धारण उन समाजों के इतिहास एवं समाजों के मनोवैज्ञानिक पहलुओं के अध्ययन के बाद किया जा सकता है।

3.7 प्रगति की विशेषताएँ

प्रगति की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. प्रगति सामाजिक मूल्यों के सापेक्ष होती है। अनेक समाजों में विभिन्न प्रकार के सामाजिक मूल्य होते हैं और इसी कारण प्रत्येक समाज के लिए प्रगति की अवधारणा अलग-अलग होती है।

2. प्रगति की संकल्पना तुलनात्मक आधार पर स्पष्ट होती है। किसी भी एक समाज में हो रहे परिवर्तनों को दूसरे समाज के सापेक्ष रखकर जाना जा सकता है कि किस समाज में प्रगति हो रही है। किसी समाज में भौतिक संस्कृति की प्रधानता होती है तो किसी समाज में अभौतिक संस्कृति की। सभी समाजों के अपने-अपने मापदंड होते हैं और इन्हीं के आधार पर समाज द्वारा प्रगति को परिभाषित किया जाता है।
3. प्रगति एक प्रकार का परिवर्तन है, जिसकी दिशा निश्चित होती है।
4. प्रगति की संकल्पना का सामाजिक मूल्यों पर आधारित होने के कारण, यह केवल मानवीय समाजों तक ही सीमित होती है।
5. प्रगति स्वयं ही नियोजित नहीं हो जाती है, बल्कि इसके लिए समाज द्वारा वांछित दिशा की ओर एक साथ प्रयत्न करना पड़ता है।
6. प्रगति का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से नहीं होता है वरन यह समाज से संबंधित होता है। समाज के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति को प्रगति की संज्ञा दी जा सकती है।
7. **जिंसबर्ग** का मानना है कि प्रगति प्रमुख रूप से दो तत्वों पर आधारित होती है–
    - साध्य की प्रकृति
    - समाज और उस साध्य के मध्य की दूरी

3.8 प्रगति के प्रकार

लेस्ली स्क्लेयर का कथन है, *"प्रगति स्थायी अथवा अस्थायी वह दशा है जहाँ सामाजिक क्रिया कमोबेश रूप में मानवीय समस्याओं के निवारण में समर्थ है।"* किसी पूर्व की दशा अथवा परिस्थिति से असंतोष के कारण ही समाज में परिवर्तन लाया जाता है और यह परिवर्तन वांछित दिशा की ओर नियोजित किए जाने से संबंधित है। समाज में व्याप्त असंतोष अथवा समस्याओं के निपटारे के लिए समाज में प्रगति के बीज को प्रत्यारोपित किया जाता है। प्रगति को मूल रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- **नवीनीकृत प्रगति-** इसमें समाज के लिए नवीन तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो प्रगति के लिए उत्तरदाई हैं। साधारणतः विकसित देशों में प्रगति इन्हीं तत्वों से होता है। इस प्रकार की प्रगति से आशय समाज में उन नवीन प्रक्रियाओं, विचारों व वस्तुओं के प्रतिस्थापन से है, जिसका समाज पर प्रभाव बड़ी मात्रा पर पड़ता हो। सामान्यतः इसकी जानकारी समाज को पहले से नहीं रहती है। इसी कारण कतिपय विद्वानों द्वारा इसे खोज, अन्वेषण व ईजाद आदि नामों से भी संबोधित किया गया है। वर्तमान समय में कुछ परंपरागत देशों द्वारा भी इस ओर कदम बढ़ाने का प्रयास किया जाने लगा है।

- **व्यवहारगत प्रगति-** प्रगति का यह स्वरूप सामान्यतः परंपरागत और स्थिर देशों में पाया जाता है। इसमें उन तत्वों को शामिल किया जाता हैं जिनके बारे में लोगों को जानकारी पहले से ही होती है और जिसका मानव समाज पर प्रभावकारी प्रभाव पड़ रहा हो। व्यवहारगत प्रगति उस प्रगति के स्वरूप को कहते हैं जो वर्तमान प्रक्रियाओं, वस्तुओं व विचारों के कारण नियोजित होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि नवीनीकृत प्रगति से जिन उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती है, उन उद्देश्यों की प्राप्ति इस प्रगति के माध्यम से हो जाती है।

इसके अतिरिक्त वह प्रगति जो सामाजिक व्यवस्था में सुधार करती है, **सुधारात्मक प्रगति** के नाम से जानी जाती है और सामाजिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन लाने के पश्चात जो प्रगति प्राप्त होती है, उसे **क्रांतिकारी प्रगति** की संज्ञा दी जाती है।

3.9 विकास और प्रगति में अंतर

समाज में परिवर्तन से ही विकास और प्रगति की संकल्पना संबंधित है, परंतु इनमें कुछ भेद भी निहित हैं। इनमें अंतर निम्न हैं–

i. विकास कल्याणकारी परिवर्तन है जो आर्थिक विकास और भौतिक समृद्धि से संबंधित है, जबकि प्रगति वांछित दिशा में नियोजित परिवर्तन है और इसमें दिशा का निर्धारण पहले ही किया गया होता है।

ii. विकास का जुड़ाव संस्कृति के भौतिक पक्ष से होता है, जबकि प्रगति का संबंध संस्कृति के भौतिक व अभौतिक पक्ष दोनों से होता है।

iii. विकास में मूल्यों का प्रत्यक्ष संबंध होता है, जबकि प्रगति प्रत्यक्ष रूप से तुल्य निर्णय के समावेश से जुड़ा हुआ है।

iv. विकास वैयक्तिकता और सामूहिकता दोनों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि प्रगति का संबंध केवल सामूहिकता से है।

v. सामान्य तौर पर विकास सरल से जटिल की ओर संचारित होता है, जबकि प्रगति के लिए ऐसा आवश्यक नहीं है कि वह एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक गमन ही करे। प्रगति एक ही अवस्था में भी नियोजित हो सकता है।

vi. विकास अंतिम स्तर की ओर ले जाने का साधन हो सकता है, जबकि प्रगति से संबंधित परिवर्तन में एक अवस्था अपने अंतिम स्तर तक पहुँचती है।

ज्ञान शांति मैत्री

3.10 सारांश

इस इकाई में विकास और प्रगति से संबंधित मुद्दों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत उनकी विशेषताओं और प्रकार का वर्णन किया गया है। विकास और प्रगति में निहित अंतर का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

3.11 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: विकास क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों को बताइए।

बोध प्रश्न 2: विकास के विभिन्न स्तरों और उसके मॉडलों पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 3: प्रगति की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 4: प्रगति की विशेषताओं और उसके प्रकारों को प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 5: विकास और प्रगति में निहित अंतर को स्पष्ट कीजिए।

3.12 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

जिंसबर्ग, एम. (1972). *द आइडिया ऑफ प्रोग्रेस: ए रिवेल्यूशन*. यूनाइटेड स्टेट्स: प्रेगर

बोटोमोर, टी.बी. (1986). *सोशिओलाजी: ए गाइड टू प्रोब्लम्स एंड लिटरेचर*. मुंबई: ब्लेकी एंड संस इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

मैकाइवर, आर.एम. एवं पेज, सी.एच. (1949). *सोसाइटी: एन इंट्रोडक्टरी एनालिसिस*. न्यूयॉर्क: रेनहार्ट पब्लिशर्स

मेकमाइकल,पी. (1996). *डेवेलपमेंट एंड सोशियल चेंज: ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव*. थाउजेंड ऑक्स: फोरगे प्रेस

दूबे, श. (2001). *विकास का समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: वाणीप्रकाशन.

गोरे, एम.एस. (2003). *सोशियल डेवेलपमेंट: चेलेंजिज़ फेस्ड इन एन अनईक्युल एंड प्लूरल सोसाइटी*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

मिश्र, के.के. (2007). *विकास का समाजशास्त्र*. फैजाबाद: भवदीय प्रकाशन

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 4
विकास का जेंडर परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 सेक्स (लिंग) और जेंडर
4.3 परिवार में जेंडर संबंध
4.4 विकास का महिलाओं पर प्रभाव
4.5 महिला सशक्तिकरण
4.6 विविध क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति
4.7 सारांश
4.8 बोध प्रश्न
4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- सेक्स और जेंडर की संकल्पना और उसके अंतर के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- परिवार में जेंडर की स्थिति व संबंधों का विश्लेषण कर पाने में सक्षम होंगे।
- महिलाओं पर विकास के पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- महिला सशक्तिकरण और उसके लिए किए गए उपायों को रेखांकित कर सकेंगे।
- विविध क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सेक्स और जेंडर की संकल्पना व उनके मध्य के अंतर को सारगर्भित करने का प्रयास किया गया है। परिवार एक सामाजिक संस्था है, जिसका विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान होता है, परिवार में जेंडर की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। विकास का महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का भी वर्णन किया गया है। महिलाओं के विकास में उत्पन्न महिला सशक्तिकरण की अवधारणा और उसके लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयत्नों पर भी विमर्श छेड़ा गया है।

4.2 सेक्स (लिंग) और जेंडर

विकास में संपूर्ण मानव जाति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री। जनसंख्या के आकार का हस्तक्षेप प्रत्यक्ष रूप से विकास पर देखा जा सकता है और इस आकार में महिला व पुरुष दोनों सम्मिलित होते हैं। नारीवादी चिंतन और विद्वानों का सबसे बड़ा योगदान है 'सेक्स' और 'जेंडर' में अंतर स्पष्ट करना। हालांकि इन दोनों शब्दों को एक ही मान लिया जाता है, परंतु इन दोनों शब्दों में पर्याप्त अंतर होता है। सेक्स जैविक पक्ष को इंगित करता है, जो स्त्री और पुरुष में विद्यमान जैविक विभेद को प्रस्तुत करता है। वहीं जेंडर शब्द सामाजिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है, जो स्त्री और पुरुष के मध्य सामाजिक भेदभाव को प्रदर्शित करता है। जेंडर शब्द इस बात को पुष्ट करता है कि जैविक भेद से इतर जितने भी विभेद दिखते हैं, वे प्राकृतिक नहीं हैं, अपितु उन्हें समाज द्वारा बनाया गया है। इस संबंध में एक और मत सामने आता है कि यदि इसे समाज द्वारा रचा गया है तो इसे समाप्त भी अवश्य किया जा सकता है। समाज द्वारा ऐसा करने के लिए पूरी प्रक्रिया चलाई जाती है। अर्थात सामाजीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत जन्म से ही बालक व बालिका को अलग-अलग तरीके से अनुशासित किया जाता है, अलग तरीके से पालन-पोषण किया जाता है, अलग सीख दी जाती है, यहाँ तक कि उनके निषेधों में भी पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है। इस प्रक्रिया को हम सभी समाजों में महसूस कर सकते हैं। लड़कों में पुरुषत्व और महिलाओं में स्त्रीत्व के तत्वों को समावेशित किया जाता है और उन्हें उसी के अनुरूप व्यवहार करने की पर्याप्त शिक्षा दी जाती है। लड़कियों को शर्मीली, दयालु, कोमल, सेवाभाव रखने वाली, साधारण व घरेलू समझा जाता है तथा लड़कों को क्रोधी, मजबूत, ताकतवर, सख्त व वीर समझा जाता है और समाज द्वारा इसी के अनुरूप उन्हें ढाला जाता है। जैविक बनावट और संस्कृति के अंतर्संबंधों को समेटते हुए जेंडर के विमर्श पर विश्लेषित किया जाय तो प्राप्त निष्कर्ष यह है कि महिलाओं की शारीरिक बनावट भी सामाजिक बंधनों और सौंदर्य के मापदंडों द्वारा नियत की गई है। अर्थात् महिलाओं का शारीरिक स्वरूप जितना प्रकृति से निर्धारित हुआ है उतना ही संस्कृति से भी।

सामाजिक आधार पर यदि इसे विश्लेषित किया जाए तो स्पष्ट तौर पर स्त्री की भूमिका शोषित की रही और पुरुष की शोषक की। आरंभिक नारीवादियों के लेखन में इसका उल्लेख मिलता है, यथा- **मारग्रेट फूलर** द्वारा लिखित कृति *"वुमन इन द नाइंटीन्थ सेंचुरी"* (1845) में, **हैरिस्ट टेलर मिल** की कृति *"इन फ्रेनचीसमेन्ट ऑफ वुमेन"* (1851) में, **जॉन स्टुअर्ट मिल** की पुस्तक *"ए सब्जेक्शन ऑफ वुमन"* (1865) में और **फ्रेडरिक ऐंगल्स** द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक *"परिवार निजी संपति और राज्य की उत्पति"*(1884) आदि पुस्तकों में मिलता है। आगे चलकर पर इस विषय पर बहुत लेखन कार्य हुए, जिनमें से प्रमुख **सिमोन द बूवा** की कृति*"द सेकंड सेक्स"*(1949), **बेट्टी फ्रीडेन** द्वारा लिखित *"द फेमिनिन मिस्टिक"* (1963), **एस.एफ़. स्टोन** की कृति *"डायलेक्टिक ऑफ सेक्स"*(1968) और **जूलियट मिशेल** की *"वुमेन स्टेट"* (1971) आदि प्रमुख हैं।

जेंडर एक समय में एक विशेष आयाम पर महिला अथवा पुरुष से संबंधित आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विशिष्टताओं और अवसरों को प्रदर्शित करता है। कई देशों में यह माना जाता है कि लिंग द्वारा ही संस्कृति का निर्धारण होता है, क्योंकि नियम और क़ानूनों का नियोजन महिला और पुरुष को संदर्भित करके किया जाता है। महिलाओं के लिए घरेलू काम और पुरुषों के लिए बाहरी काम। जेंडर व्यक्ति की सामाजिक अस्मिता से जुड़ा हुआ है, परंतु सेक्स मनुष्य के शरीर मात्र से संबंधित होता है। जेंडर एक मानसिक संरचना है, जबकि सेक्स एक जैविक अथवा शारीरिक संरचना है। जेंडर का जुड़ाव सामाजिक पक्ष से है परंतु सेक्स शरीर के रूप और आकार का प्रतिनिधित्व करता है। जेंडर मनोवैज्ञानिक है और इसकी अभिव्यक्ति सामाजिक है, परंतु सेक्स संरचनात्मक प्रारूप को धारण किए हुए है।

मारग्रेट मीड के अनुसार, *"अनेक संस्कृतियों में नारीत्व और पुरुषत्व को विभिन्न ढंग से समझा जाता रहा है। जैसे जन्म से ही महिलाओं और पुरुषों के मध्य कुछ विशेष तरीके से विभेद करने का प्रयास आरंभ कर दिया जाता है और इस अंतर को जीवन भर बनाए रखा जाता है।"*

4.3 परिवार में जेंडर संबंध

परिवार को समाज व व्यक्ति के लिए सृजनात्मकता की पहली सीढ़ी का दर्जा दिया जाता है। परिवार के निर्माण को हम मूल रूप से दो रूपों में वर्गीकृत कर सकते हैं, पहला वह जो रक्त संबंधों पर आधारित होता है और दूसरा वह जो विवाह के संबंध पर आधारित होता है। **मार्था सी. नुसबोम** ने अपनी पुस्तक *"सेक्स एंड सोशल जस्टिस"* में कहा है, *"विवाह स्त्री-पुरुष के मध्य का वह संबंध है, जिसका एक पक्ष उन दोनों को यौन-संबंध से प्राप्त होने वाला वैयक्तिक आनंद है, तो दूसरा पक्ष है, प्रजनन की प्रक्रिया और पारिवारिक संस्था से संबंधित अन्य सामाजिक जिम्मेदारियों का वहन। लेकिन विवाह ऐसी संस्था है जो अन्य संस्थाओं से प्रभावित हो सकती है और प्रभावित कर भी सकती है। अतः विवाह संस्था को यौन-संबंधों तक ही सीमित न करके, उसे न्याय, धर्म, नैतिकता, राजनीति, मानवाधिकार, अर्थशास्त्र आदि विषयों से अंतर्संबंधित करते हुए मानवतावादी दृष्टि देने की आवश्यकता है।"*

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव उतार-चढ़ाव से गुजरती रही है। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक विविध परिवर्तन नियोजित हुए हैं तथा उसी के अनुरूप उनके अधिकारों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति बेहतर थी, परिवार तथा समाज में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त थी, शिक्षा का अधिकार प्राप्त था, संपत्ति में समान अधिकार प्राप्त थे। वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में महिलाओं को गरिमामय स्थान प्राप्त था और उसे देवी, सहधर्मिणी, सहचरी,अर्द्धांगिनी का दर्जा दिया जाता था। किंतु 11 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी के मध्य भारत में महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती गई। यह महिलाओं के सम्मान, अस्मिता, विकास और सशक्तिकरण का अंधकार युग था। मुगल शासन, सामंती व्यवस्था, केंद्रीय सत्ता का नाश, विदेशी आक्रमण और शासकों की विलासितापूर्ण

प्रवृत्ति ने महिलाओं को उपभोग मात्र की वस्तु में परिणित कर दिया था और इसके फलस्वरूप बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा आदि जैसी विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का जन्म हुआ, जिसने महिलाओं की स्थिति को अत्यंत निम्न बना दिया तथा उनके निजी व सामाजिक जीवन को प्रदूषित कर दिया। मध्यकाल में विदेशियों के आगमन ने भी स्त्रियों की स्थिति में अवनति लाने का काम किया। महिलाएँ एक चहारदीवारी में सिमटती चली गईं और एक असहाय, अबला, रमणी और भोग्या बनकर ही रह गईं। इन सामाजिक समस्याओं के प्रत्युत्तर स्वरूप कई समाज सुधार आंदोलन चलाए गए और बाद में सरकार द्वारा भी विभिन्न अधिनियमों को नियोजित करके इसके निवारण हेतु उल्लेखनीय कदम उठाए गए।

इन कुरीतियों ने महिलाओं के जीवन को घर और बाहर दोनों ओर दूभर कर दिया। परिवार ने उनसे उनके सभी अधिकार छीन लिए और उन्हें पारिवारिक श्रमिक के तौर पर पनाह दी। समय परिवर्तित हुआ और समाज व परिवार में उनकी स्थिति में बदलाव हुए परंतु ये बदलाव संतोषजनक नहीं माने जा सकते। विवाह जैसी संस्था का इस्तेमाल महिलाओं पर तानाशाही के लिए नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि महिलाओं से जुड़े कई क़ानूनों और प्रावधानों को निर्मित किया जा चुका है, तथापि उनकी पारिवारिक व सामाजिक स्थिति में कुछ खास परिवर्तन नहीं हुए हैं। इसके पीछे स्पष्ट कारण यह है कि महिलाएं स्वयं से संबंधित उन नियमों से अनभिज्ञ हैं। इनके सही ढंग से क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है कि शिक्षा और सामाजिक-राजनीतिक स्तर से ही इसकी शुरुआत की जाए। जब सामाजिक स्तर पर परिवर्तन होंगे तब परिवार व विवाह जैसी संस्थाओं में भी परिवर्तन संभव हैं। आज भी महिलाओं की सुरक्षा और अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। परंपरागत भारतीय समाज में सदैव से ही महिलाओं की स्थिति पुरुषों के अधीन रही है। महिलाओं की दयनीय स्थिति के कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक सभ्यता, रूढ़िवादिता, रीति-रिवाज आदि को कारण माना जा सकता है।

चूँकि भारत विभिन्न वर्गों, जतियों, धर्मों, समूहों, समुदायों से संबंधित देश है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लोग निवासरत हैं। ऐसे में महिलाओं के लिए विवाह के पश्चात इन सभी मानकों के आचरण, व्यवहार और अनुपालनों में विभेद परिलक्षित किया जा सकता है।

4.4 विकास का महिलाओं पर प्रभाव

तत्कालीन भारत में निर्धनता बहुतायत मात्रा में विद्यमान थी। इसके साथ ही साथ औद्योगिक क्षेत्र भी अपेक्षाकृत छोटा था, जिसके कारण उत्पादन भी न्यून था। पूँजी का अभाव था, जिसके कारण विकसित देशों की सहायता लेना जरूरत भी थी और मजबूरी भी। बहरहाल समस्याओं के निवारण हेतु कुछ कार्यक्रमों का नियोजन किया गया। हालांकि इन कार्यक्रमों की आलोचनाएँ की गई क्योंकि ये रोज़गारपरक नहीं थे। इसके अतिरिक्त गरीबी निवारण कार्यक्रम के बारे में लोगों में जागरूकता का अभाव था। ये कार्यक्रम लिंग से संबंधित भेदभाव से ग्रसित थे। इसमें महिलाओं द्वारा किए जाने वाले उन्हीं कार्यों को शामिल किया गया था, जिनके लिए धन का भुगतान किया जाता है। इस भेदभाव ने लिंग के आधार

पर श्रम विभाजन को जन्म दिया और महिलाओं को परिवार व शिशुओं की देखभाल का काम दिया गया और बाहर के कार्यों (चाहे वह सामाजिक हों, आर्थिक हों अथवा राजनीतिक हों) से वंचित कर दिया गया। पुरुषों और पुत्रों को प्राथमिकता दी जाने लगी और महिलाओं व लड़कियों के विरुद्ध शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य आदि में विभेद किया जाने लगा। परिवार नियोजन कार्यक्रमों ने महिलाओं को प्रजनन के साधन के रूप में माना और उनसे गर्भनिरोध व गर्भनियंत्रण के उपाय करने को कहा।

भारत में नई आर्थिक नीति 1991 में उदारीकरण, निजीकरन और भूमंडलीकरण के सिद्धांतों के साथ नियोजित की गई। विश्व बैन की रिपोर्ट ने उदारीकरण के संदर्भ में लिंग और गरीबी पर महिलाओं की कौशलों और प्रौद्योगिकी आदि में पहुँच बढ़ाने के लिए कुछ उपाय प्रस्तुत किए हैं। परंतु इसके बावजूद रिपोर्ट में घर अथवा बाहर लिंग आधारित श्रम विभाजन अथवा शक्ति संबंधों के बारे में किसी प्रकार की कोई टिप्पणी नहीं की गई है। यह इस तथ्य को तो स्पष्ट करती है कि कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है और इसमें इस बात पर भी बल दिया गया है कि उन्हें बाजार में प्रविष्ट होना चाहिए। बाजार मात्र सिद्धांतः ही लिंग से प्रभावित नहीं है, अपितु यह अल्पसंख्यक, हाशिए के समूह, महिलाओं आदि का शोषण करता है। बाजार लाभ की दिशा में संचरित होता है और इसी कारण, चाहे महिला हो अथवा पुरुष, वह विक्रय की वस्तु के अतिरिक्त कुछ और नहीं रह जाता। महिलाओं को वस्तुएँ और वस्तुओं को लिंग मुलात्मक स्वरूप दे दिया जाता है। वह बाजार के संदर्भ में महिला को व्यक्तिवादी और सफल सारगर्भित करते हैं, परंतु ऐसा वे सही मात्रा में आकर्षण के साथ करते हैं।

4.5 महिला सशक्तिकरण

प्रारंभ में महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करके उन्हें उनकी स्वाभाविक प्रस्थिति से वंचित रखा गया, उनकी प्रतिभा और कौशल को पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक-राजनैतिक जीवन में सदैव सही हतोत्साहित किया गया है। परंतु अब समय परिवर्तित हो रहा है, अब परिस्थितियाँ वैसी नहीं रही जैसी की पहले हुआ करती थीं। महिलाओं ने अपने विरुद्ध हो रहे असमतापूर्ण व्यवहारों के प्रति आवाज बुलंद किया है। विगत कुछ वर्षों में महिलाओं के प्रति लोगों के नज़रिए में परिवर्तन हुए हैं और साथ-ही-साथ सरकार द्वारा भी इसके अभिमुखन में परिवर्तन किए गए हैं। इस प्रकार पुरुषों के साथ समता की तलाश, महिलाओं के लिए एक सार्वभौमिक घटना के रूप में उभरकर अस्तित्व में आई है। उनके द्वारा समतामूलक (स्त्री-पुरुष) समाज की स्थापना के लिए नियोजित क्रांति ने एक नई संकल्पना का सूत्रपात किया- महिला सशक्तिकरण। यह महिला का सशक्तिकरण है जो कि महिलाओं को समाज और परिवार की सभी व्यक्तिगत सीमाओं को लांघकर निर्णय लेने में सहायता करता है। भारतीय संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, यह पुरुषों के ही समान, समाज के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को समानता प्रदान करने के लिए कानूनी बिंदु है। **पंडित जवाहरलाल नेहरू** का मानना है कि लोगों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं का संपूर्ण विकास हो।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ है- हीनता की संरचना, आधिपत्य की संरचना, कानून, संपत्ति, अधिकारों और अन्य सभी संस्थाएं, जो कि पुरुषों के प्रभुत्व को स्थापित करने अथवा उसे संवर्धित करने में सहायक हैं, उन्हें आमूलचूल परिवर्तित किया जाए। इस नई नीति के अंतर्गत सशक्तिकरण की प्रक्रिया में महिलाओं में संगठन के निर्माण और चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया, जिसे और संवर्धित करने के लिए सरकार द्वारा सामाजिक व आर्थिक सेवाएँ मुहैया कराई जाएंगी। महिलाओं के समूह को संगठित करना, जहाँ वे अपनी परिस्थितियों के बारे में विचार-विमर्श कर सकें और संगठित होकर पुरुषों की सत्ता को चुनौती दे सकें और स्वयं के विकास हेतु मार्ग प्रशस्त कर सकें, यही सरकार का सशक्तिकरण को लेकर मुख्य प्रयोजन है। इस प्रयोजन की सफलता हेतु सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम (यथा- महिला विकास कार्यक्रम (1984), चेतना जागरण कार्यक्रम (1986), महिला सामाख्या (1989) आदि)चलाए गए। इन कार्यक्रमों में प्रमुख रूप से निम्न बातों को शामिल किया गया–

- लिंग आधारित संबंधों के दमनात्मक स्वरूप को उजागर करना।
- इस प्रकार के संबंधों को चुनौती देना।
- महिलाओं की हिस्सेदारी से सामाजिक संबंधों में महिलाओं के पक्ष में बदलाव लाना।

विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में कई सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों द्वारा महिला सशक्तिकरण में अनेक उल्लेखनीय प्रयत्न किए गए। कालांतर में महिला सशक्तिकरण के प्रयासों में गति आई और 2001 को **'महिला सशक्तिकरण वर्ष'** के रूप में घोषित किया गया। पहली बार राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति का निर्माण किया गया, ताकि महिलाओं के उत्थान और समुचित विकास के लिए आधारभूत व्यवस्थाओं का निर्धारण किया जा सके। इस नीति के प्रमुख बिंदु निम्न हैं-

- महिलाओं की स्वस्थ्य, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा में हिस्सेदारी की व्यवस्था करना।
- महिलाओं के लिए ऐसे वातावरण को निर्मित करना कि वे स्वयं सामाजिक और आर्थिक नीतियाँ नियोजित कर सकें।
- समाज में समान भागीदारी हेतु महिलाओं को प्रेरित करना।
- मानवाधिकार के इस्तेमाल में उन्हें कौशलपूर्ण व दक्ष बनाना।
- भेदभाव उन्मूलन हेतु सामाजिक प्रक्रिया का विकास करना।
- बालिकाओं और महिलाओं के प्रति अनेक निषेधों के रूप में निहित असमानता की भावना को समाप्त करना।

यदि समकालीन संदर्भ में देखा जाए तो महिला सशक्तिकरण भारत ही नहीं, अपितु, पूरे विश्व के लिए एक ज्वलंत मुद्दा का विषय बना हुआ है। अन्य देशों में इसे क्रियान्वित करना अपेक्षाकृत सरल है। भारत में इसके विरोधाभास अनेक व विविध हैं। संभवतः सरकार, समाज सुधारकों व महिला संगठनों द्वारा इस

क्षेत्र में सराहनीय प्रयास अवश्य किए गए हैं। भारत में घूँघट प्रणाली, सती प्रथा, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या, स्थायी विधवापन आदि कुरीतियों को सरकार द्वारा तो हटाने हेतु प्रशासनीय कार्य किए गए हैं। इसके अतिरिक्त संपत्ति के अधिकार हेतु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956), वैवाहिक अधिकार हेतु हिंदू विवाह अधिनियम (1955), संरक्षण संबंधी अधिकार हेतु हिंदू अवयस्कता और संरक्षण अधिनियम (1956) तथा अविभावक और आश्रित अधिनियम (1990), दहेज प्रतिषेध अधिनियम (1961) इत्यादि प्रकार के अधिनियम सरकार द्वारा पारित किए गए हैं, जो महिलाओं को मुख्य धारा में लाने हेतु कार्यसरित हैं। एक अन्य अधिनियम घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 26 अक्टूबर, 2006 को लागू करके महिलाओं का संरक्षण व शारीरिक-मानसिक क्षति को दुरुस्त करने हेतु प्रयास अग्रसर हैं। ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम चलाए गए, यथा- समेकित बाल विकास सेवा योजना (1975), काम के बदले अनाज योजना (1977), अंत्योदय कार्यक्रम (1978), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1980), ग्रामीण कहसेटरों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (1982), ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (1986),,महिलाओं हेतु प्रशिक्षण और रोज़गार कार्यक्रम (1987), कुटीर ज्योति योजना (1988-89), स्वर्ण जयंती ग्राम रोज़गार योजना (1999), अंत्योदय योजना (2000), प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (2000-01), संपूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना (2001), किशोरी शक्ति योजना (2001), महिला स्वयं सिद्ध योजना (2001), राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना (2005), भारत निर्माण योजना (2005-06) आदि। महिला सशक्तिकरण के उच्च स्तरीय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बचपन से ही प्रत्येक परिवार को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। महिलाओं को मानसिक, शारीरिक व सामाजिक रूप से मज़बूत होने के लिए यह आवश्यक है। इससे बेहतर शिक्षा को बचपन से ही घर पर शुरू किया जा सकता है, महिला के उत्थान के लिए और साथ-ही-साथ देश के समग्र विकास के लिए स्वस्थ्य परिवार की जरूरत है। तत्कालीन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में शिक्षा के उपयोग के माध्यम से समानता को बढ़ावा देने के लिए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' अभियान का आरंभ किया है, जिसका मूल उद्देश्य पितृसत्तात्मक मानसिकता के खिलाफ लड़ना और महिलाओं की पारंपरिक भूमिकाओं को प्रतिबंधित करना, बाल विवाह का निषेध, दहेज और कन्या भ्रूण हत्या (2011 में हुए एक अध्ययन के अनुसार, पिछले तीन दशकों में लगभग 12 लाख कन्या भ्रूण हत्याएँ हुई हैं।) आदि कुप्रथाओं को हतोत्साहित करना है।

देर से ही सही पर 20वीं सदी में इंटरनेट के बढ़ते उपयोग और उसके विविध उपकरणों का उपयोग करके महिलाओं द्वारा स्वयं को सशक्त बनाने में उत्तरोत्तर कदम उठाए गए हैं। महिलाओं ने सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे फेसबुक, ट्वीटर आदि पर ऑनलाइन सक्रियता भी शुरू कर दी है। महिलाओं द्वारा ऑनलाइन सक्रियता के माध्यम से अभियान के आयोजन व उसे आगे बढ़ाने में मदद मिलती है। वे अपनी राय को आसानी से अभिव्यक्त कर सकती हैं और इस प्रकार से वे स्वयं को सशक्त करने में सक्षम हैं। उदाहरण के लिए - 29 मई 2013 को 100 महिला अधिवक्ताओं द्वारा सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट के

माध्यम से ऑनलाइन अभियान चलाया जा चुका है। परंतु शोध से पता चला है कि इंटरनेट का उपयोग महिलाओं में बढ़ते शोषण का कारण भी बनता जा रहा है। वेबसाइटों पर महिलाओं की व्यक्तिगत जानकारी को उपलब्ध करने से भी उनकी सुरक्षा में हानि हो रही है। यदि 2010 के आँकड़ों को देखा जाए तो 73 प्रतिशत कामकाजी महिलाए ऐसी साइटों के माध्यम से साइबर स्टाकिंग, ऑनलाइन अश्लील साहित्य, उत्पीड़न आदि प्रकार के ऑनलाइन दुर्व्यवहार की शिकार हुई हैं। हाल के अध्ययनों से भी पता चलता है कि कार्यस्थल पर पुरुषों की तुलना में महिलाएं ज़्यादातर दुर्व्यवहार का सामना करती हैं।

4.6 विविध क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति

कुछ खास क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति को जानकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में उनकी वास्तविक स्थिति क्या है।

महिलाएँ और शिक्षा

महिलाएं दीर्घकालीन समय से शिक्षा से पृथक रखी गईं और इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी स्थिति अत्यंत निम्न हो गई। 2001 की जनगणना के अनुसार संपूर्ण साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत दर्ज की गई, जिसमें पुरुष साक्षारता दर 75.38 प्रतिशत जबकि महिला साक्षारता दर 54.16 प्रतिशत है। 2004-05 में बालिकाओं के स्कूल में नाम लिखने का प्रतिशत कुल प्रतिशत का प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से 5 तक) 46.7 प्रतिशत, उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6 से 8 तक) 44.4 प्रतिशत, माध्यमिक अथवा उच्च माध्यमिक स्तर (कक्षा 9 से 12 तक) 38.9 प्रतिशत और उच्च शिक्षा स्तर (डिग्री व उससे ऊपर) 38.9 प्रतिशत प्राप्त हुआ है। ये आँकड़ें शिक्षा के क्षेत्र में लैंगिक असमानता को व्यक्त करते हैं।

महिलाएं और स्वास्थ्य

विकासात्मक प्रक्रिया के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि महिला और पुरुष का स्वास्थ्य बेहतर हो। 1998-99 में हुए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (NFHS) के अनुसार 51.8 प्रतिशत महिलाओं में रक्त की कमी है और मातृ मृत्यु दर 540 है। ये आँकड़ें इस ओर इंगित कर रहे हैं कि महिलाओं में पर्याप्त पोषण और स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रायः अभाव पाया जाता है। साथ ही उनके स्वयं के प्रति स्वास्थ्य संबंधी निर्णयों में भागीदारी भी कम ही होती है।

महिलाएं और राजनीति

स्पष्ट तौर पर राजनीति को पुरुषों द्वारा किया जाने वाला कार्य माना जाता है। स्वतंत्र भारत में लगातार मतदान करने के प्रतिशत में महिलाओं की भागीदारी के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। महिला प्रत्याशियों की संख्या में भी इजाफा हुआ है, परंतु यह संख्या अपेक्षाकृत बेहतर नहीं कही जा सकती।

महिलाएं और अर्थव्यवस्था

महिलाओं की आर्थिक स्थिति संपूर्ण विकास में बहुत मायने रखती है। 2001 की जनगणना आँकड़ें के अनुसार कुल 30.5 प्रतिशत कार्य का दल है, जिसमें 47.8 पुरुष कर्मी, जबकि मात्र 14.7 प्रतिशत

महिला कर्मी ही हैं। यह प्रतिशत इस बात को प्रदर्शित करता है कि अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में महिलाओं कि स्थिति अभी कितनी पिछड़ी हुई है।

आपराधिक हिंसा

महिलाओं से संबंधित आपराधिक हिंसा के तौर पर घरेलू हिंसा, दहेज हेतु हिंसा, यौन उत्पीड़न, बलात्कार, अपहरण, छेड़छाड़ आदि को सम्मिलित किया जाता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (NFHS-III) द्वारा 2005-06 के दौर एक साक्षात्कार किया गया, जो 28 राज्यों की 1.25 लाख महिलाओं से संबंधित था। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार 40 प्रतिशत महिलाओं के साथ घर में दुर्व्यवहार, हिंसा आदि, 54 प्रतिशत महिलाएँ और 51 प्रतिशत पुरुष पतियों द्वारा पत्नी को पीटे जाने की बात को पुष्ट करते हैं। इसके पीछे स्पष्ट कारण यह है कि हमारा समाज आज भी पितृसत्तात्मक ही है।

4.7 सारांश

महिलाओं की स्थिति में ऊर्ध्वाधर परिवर्तन लाने हेतु कई प्रयास किए गए हैं, चाहे वे प्रयास सरकारी हों अथवा गैर-सरकारी हों। इसके बावजूद महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन अभी तक नियोजित नहीं हो पाए हैं। हालाँकि स्थिति में थोड़ा-बहुत सुधार अवश्य आया है, परंतु यह सुधार हर जगह नहीं हुए हैं और ना ही हर स्तर पर। किसी तरह के किसी काम से कोई बुराई नहीं है, परंतु इस श्रम विभाजन के कारण बहुत सी लड़कियों की प्रतिभा दबी रह जाती है और धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। वहीं दूसरी ओर बहुत से लड़के मानसिक विकृतियों के शिकार हो जाते हैं। यह सुनने में बहुत ही अव्यवहारिक है, किंतु सामान्यतया छोटे लड़कों को यह कहकर चुप करा दिया हैं कि मर्द रोते नहीं,हम उनसे भावनात्मक बातें नहीं करते, जिससे वे अन्दर ही अंदर घुटते रहते हैं। कुछ लड़कों का स्वभाव भावुक होता है और वे अक्सर अपनी बात कहकर इसलिए नहीं रो पाते कि वे हँसी का पात्र बनेंगे। सार रूप में जेंडर-आधारित भेदभाव न केवल महिलाओं को, अपितु, पुरुषों को भी एक पूर्वनियोजित संरचना में जीवन-बसर करने के लिए विवश कर देता है।

4.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: सेक्स और जेंडर की संकल्पना पर प्रकाश डालिए।

बोध प्रश्न 2: परिवार में जेंडर की भूमिका को प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 3: विकास का महिलाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।

बोध प्रश्न 4: महिला सशक्तिकरण क्या है? स्पष्ट कीजिए।

बोध प्रश्न 5: विभिन्न क्षेत्रों में महिला की स्थिति को बताइए।

4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

डैश, एल.एन. (2015). *हेल्थ, जेंडर एंड डेवेलपमेंट*. नई दिल्ली: रेगल पब्लिकेशन्स

रेगे, श. (2003). *सोशिओलोजी ऑफ जेंडर: द चैलेंजेज़ ऑफ फेमिनिस्ट सोशिओलोजी नॉलेज*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स

मिश्र, र. (2014). *रिथिंकिंग जेंडर*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

मोमसेन, जे. (2009). *जेंडर एंड डेवेलपमेंट*. यूके: रूटलेड

सेठ, म. (2001). *वूमेन एंड डेवेलपमेंट: द इंडियन एक्सपीरिएन्स*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स

शर्मा, र. (2013). *महिला सशक्तिकरण*. नई दिल्ली: नेहा पब्लिशर्स & डिस्ट्रीब्यूटर्स

परमार, श. (2015). *नारीवादी सिद्धान्त और व्यवहार*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड

कुमार, व. (2009). *वैश्वीकरण और महिला सशक्तिकरण*. नई दिल्ली: रेगल पब्लिकेशन्स

शुक्ल, अ. (2008). *आधुनिक नारी और महिला सशक्तिकरण*. कानपुर: अमन प्रकाशन

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 5
जनसंख्या और विकास

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 जनसंख्या वृद्धि और जनित समस्याएँ
5.3 जनसंख्या और विकास में संबंध
5.4 जनसंख्या और पर्यावरण
5.5 जनसंख्या और संसाधन
5.6 सारांश
5.7 बोध प्रश्न
5.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- जनसंख्या वृद्धि और उससे उत्पन्न समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जनसंख्या और विकास के मध्य के संबंधों का विश्लेषण कर पाने में सक्षम होंगे।
- जनसंख्या और पर्यावरण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- जनसंख्या और संसाधनों का वर्णन कर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

5.1 प्रस्तावना

आरंभ से ही मनुष्य और प्रकृति का घनिष्ठ संबंध रहा है। आज के युग में मनुष्य ने अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इतना अधिक विकास किया है कि उसका जीवन सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण हो गया है, परन्तु इसके विपरीत यह भी सत्य है कि उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पेड़ों और जंगलों को नष्ट किया है। लगातार नवीन इमारतें, भवन, सड़कें, कारखाने आदि बनाए जा रहे है और इससे प्रकृति में असंतुलन होने का खतरा बढ़ता ही जा रहा है। आज मनुष्य प्रकृति का स्वामी बनने का प्रयास कर रहा है और आधुनिकता के नाम पर वह प्रकृति का दोहन कर रहा है। विकास और जनसंख्या से संबंधित अनेक विमर्शों को इस इकाई के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

5.2 जनसंख्या वृद्धि और जनित समस्याएँ

जनसंख्या से आशय एक निश्चित क्षेत्र में निवासरत व्यक्तियों की संख्या से है और जब किसी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में आवश्यकता से वृद्धि हो जाए, तो उसे जनसंख्या वृद्धि कहा जाता है। इससे जनसंख्या का आकार ही नहीं, वरन उसकी संरचना में भी परिवर्तन होता है। जनसंख्या वृद्धि से समाज में कई नवीन समस्याओं का जन्म होता है। जनसंख्या में जिस प्रकार से वृद्धि होती है उसी प्रकार संसाधनों में भी कमी आती जाती है। जनसंख्या वृद्धि का आकलन राजनेता, व्यापारी, प्रशासक आदि भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से करते हैं। *'इंटेरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ पापुलेशन'* में विश्व जनसंख्या में दर्ज की गई वृद्धि निम्न तालिका के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही है–

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)
1650	55
1750	73
1800	99
1850	117
1900	161
1950	251
1961	306
1971	370
1979	412
1980	436
1984	480
1994	563

ज्ञान शांति मैत्री

2000 (अनुमानित)	613

19वीं शताब्दी में यूरोपीय औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई है। विगत कुछ वर्षों में तेज हुई औद्योगीकरण, नगरीकरण के कारण यह वृद्धि तीव्रतर हो गई है। वैसे तो जनसंख्या वृद्धि संपूर्ण विश्व के लिए एक समस्या है, परंतु भारत जैसे देश के लिए यह एक भीषण समस्या है। यहाँ जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि पर दबाव इतना बढ़ता चला जा रहा है कि निकट भविष्य में जनसंख्या-संसाधन के संतुलन के बिगड़ जाने की संभावना है। जनगणना 2011 के आधार पर भारत में जनसंख्या की दशकवार वृद्धि इस प्रकार बताई गई है–

वर्ष	**जनसंख्या (करोड़ में)**
1901	23.84
1911	25.209
1921	25.132
1931	27.898
1941	31.816
1951	36.109
1961	43.923
1971	54.816
1981	68.333
1991	84.642
2001	102.874

ज्ञान शांति मैत्री

2011 121.019

एक कहावत है कि किसी भी चीज की अधिकता अच्छी नहीं है। फिर चाहे वह अधिकता किसी देश की जनसंख्या की ही क्यों न हो। भारत जनसंख्या के मामले मे विश्व मे दूसरे स्थान पर अवस्थित है। विश्व में जनसंख्या के मामले मे चीन पहले स्थान पर है, परंतु वह दिन दूर नहीं जब भारत चीन से भी आगे निकल जाएगा, क्योंकि आँकड़ों की मानें तो चीन की एक वर्ष में 1% जनसंख्या वृद्धि दर है, जबकि भारत में जनसंख्या वृद्धि दर 2% है। भारत में जहाँ प्रतिदिन 60 शिशुओं का जन्म होता है, वहीं पूरे विश्व में प्रीतिदिन 150 शिशु ही जन्म लेते हैं। बढ़ती जनसंख्या ने भारत में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है–

1. जनसंख्या के अति वृद्धि से आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जनाधिक्य के कारण जनसंख्या और संसाधनों के बीच असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एशिया व अफ्रीका के विकासशील देश इसके उदाहरण हैं।
2. जनसंख्या वृद्धि के कारण देश में खाद्यान आपूर्ति की समस्या उत्पन्न हो जाती है और संतुलित आहार न उपलब्ध हो पाने के कारण कुछ अन्य समस्याएँ उभरने लगती हैं।
3. कृषि योग्य भूमि को निश्चित सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है। यद्यपि जनसंख्या जिस तीव्रता से बढ़ रही है उसकी तुलना में भूमि के उत्पादन को नहीं बढ़ाया जा सकता है। अर्थात जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि की समस्या उत्पन्न हो रही है।
4. जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य का जीवन स्तर निम्न होता चला जाता है।
5. जनसंख्या वृद्धि और अशिक्षा में अंतर्संबंध साफ तौर पर पता चलता है। दोनों एक-दूसरे को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं।
6. अशिक्षा की तरह ही निर्धनता का संबंध भी जनसंख्या वृद्धि के साथ अंतर्संबंधित है।
7. देश में रोज़गार की समस्या भयावह रूप धारण कर लेती है।
8. यद्यपि यातायात और परिवहन के साधनों में काफ़ी वृद्धि हुई है, तथापि दिनों-दिन बढ़ती भीड़ के कारण यह वृद्धि कम ही महसूस की जा रही है।
9. जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि प्रकार की समस्याएँ पैदा हो रही हैं जो मनुष्य के लिए घातक हैं।
10. मनुष्य द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों का विनाश किया जा रहा है, जिसके कारण जलवायु और दशाएँ प्रभावित हो रही हैं। इसके कारण परिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो रहा है।
11. जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ (रोटी, कपड़ा और मकान) पूरी नहीं हो पा रही हैं, जिसके कारण समाज में विघटन की दशा उत्पन्न हो रही है।

12. खाद्य सामाग्री की कमी, निर्धनता, बेरोज़गारी, जीवन स्तर की निम्नता के कारण जन जीवन के कलयम व सुरक्षा की भावना में निरंतर कमी आ रही है।

5.3 जनसंख्या और विकास में संबंध

जनसंख्या और विकास में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से संबंध सदैव रहता है। यह संबंध कुछ प्रमुख मुद्दों से अंतर्संबंधित होता है–

- जनसंख्या में वृद्धि अथवा कमी किस प्रकार से विकास पर प्रभाव डालती है?
- जनसंख्या के गठन और उसकी संरचना में सामाजिक-आर्थिक विकास कैसे परिवर्तन लाता है?

वस्तुतः जनसंख्या और विकास के अंतर्संबंधों के लिए निर्धनता का क्षेत्र सबसे विवादित रहा है। जहाँ एक ओर विकसित देशों का मानना है कि तीसरी दुनिया के देशों द्वारा पृथ्वी पर जनसंख्या के अतिरिक्त बोझ को उत्पन्न किया जा रहा है, वहीं तीसरी दुनिया के देशों का मत है कि यह एक काल्पनिक तथ्य है जिसका उनके द्वारा अपनी जनसंख्या और संसाधनों के उपभोग से ध्यान भंग करने के उद्देश्य से प्रसार किया जा रहा है। कुछ बुद्धिजीवियों का मत है कि जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोज़गारी आती है, जिससे उनके आय और संसाधनों पर अतिरिक्त भार पड़ता है और बेरोज़गारी के कारण ही देश में निर्धनता फलती-फूलती है। इसके इतर दूसरा मत यह मानता है कि जनसंख्या एक प्रकार से संसाधन है, जिसका उपयोग श्रम प्रधान उत्पादन प्रणाली में उत्पादनकारी के रूप में किया जा सकता है और यह देश के विकास में उल्लेखनीय योगदान प्रस्तुत करेगा। यहाँ जनसंख्या और विकास से संबंधित कुछ दृष्टिकोणों पर सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

माल्थस का मत

टी.आर. माल्थस पहले अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने जनसंख्या की समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन्होंने 18 वीं शताब्दी में यूरोप के अनेक देशों की जनसंख्या वृद्धि का गहन अध्ययन किया और जनसंख्या के कारण, प्रभाव व उसे नियंत्रित करने का उपाय प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी कृति *"एन एस्से ऑन द प्रिंसिपल्स ऑफ पापुलेशन"* (1978) में जनसंख्या सिद्धांत कि ठोस नींव रखी। माल्थस सिद्धांत की प्रमुख तीन मान्यताएँ हैं, जो निम्न हैं–

- मानव के अस्तित्व के लिए भोजन आवश्यक है।
- महिला और पुरुष दोनों में काम की इच्छा स्वाभाविक व अनिवार्य है, जिसके कारण संतानोत्पत्ति भी अनिवार्य हो जाती है।
- कृषि में उत्पादन ह्रास नियम क्रियान्वित होता है।

इस सिद्धांत के प्रमुख अंग निम्न हैं–

- जनसंख्या की शक्ति भूमि की शक्ति की तुलना में अत्यधिक व अनंत है।

- अनियंत्रित इया में वृद्धि ज्यामितीय अनुपात में होती है।
- प्रकृति का नियम मनुष्य के लिए खाद्य सामाग्री को अनिवार्य आवश्यकता बना देता है।
- जीवन निर्वाह में परेशानी के कारण सदैव जनसंख्या वृद्धि पर एक प्रभावपूर्ण नियंत्रण बना रहता है।

इन मूल बिंदुओं के आलोक में यह परिलक्षित होता है कि जनसंख्या 1,2,4,8,16,32,64…के क्रम में बढ़ती है, जबकि खाद्य सामाग्री 1,2,3,4,5,6,7,8…के क्रम में बढ़ती है। माल्थस का मानना था कि प्रत्येक 25 वर्षों के पश्चात जनसंख्या पूर्व की दोगुनी हो जाती है। इस प्रकार यह पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि कि उच्च दर के कारण निर्धनता और दु:ख परिणाम के रूप में प्राप्त होते हैं। माल्थस ने इसके निवारण के लिए दो प्रकार के निरोध बताए हैं- सकारात्मक और नकारात्मक निरोध। सकारात्मक निरोध में प्राकृतिक प्रकोप (अकाल, महामारी, बाढ़, भूकंप आदि) से जनसंख्या कम हो जाती है। नकारात्मक निरोध एक प्रकार का उपाय है, जिसे माल्थस ने प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार जनसंख्या नियंत्रण के लिए निर्धन व्यक्तियों द्वारा प्रजनन को बलपूर्वक रोकना, देर से विवाह करना, दुराचार को रोकना आदि उपाय हो सकते हैं। वे निर्धनों के लिए ख़ैरात आदि के सख्त विरोधी थे।

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

मार्क्स और एंजेल्स का मत माल्थस के सिद्धांत का समालोचनात्मक माना जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण निर्धनता को माना जाता है, जनसंख्या और निर्धनता दोनों उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम हैं। जब उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन होता ही तो इससे जनसंख्या वृद्धि में भी परिवर्तन आता है। मार्क्स का मानना है कि ग्रामीण इंग्लैंड और अति जनसंख्या में अंतर का कारण श्रमिकों के श्रम का वस्तु की तरह उपयोग करना था। इस तरह धीरे-धीरे वे श्रमिक, भूमिहीन श्रमिक बन गए जो किराए पर श्रम को बेचने हेतु विवश हो गए। दूसरी ओर विनिर्माण उद्यमों के विकास से छोटे कारखानों के स्थान पर बड़े कारखानों के लिए आधारशिला तैयार की, जिनमें कुछ काम मशीनों से होने के कारण धीरे-धीरे श्रमिक कम होते चले गए। मार्क्स का मानना है कि मज़दूरी की माँग के असफल होने के कारण निर्धनता आती है न कि मज़दूरों की आपूर्ति में वृद्धि के कारण। यहाँ मज़दूर वर्ग अधिक से अधिक श्रमिक जमा करने के लिए प्रजनन करेगा।

नवमाल्थसवादी दृष्टिकोण

19 वीं और 20 वीं शताब्दी में माल्थस द्वारा प्रेरित विद्वानों द्वारा नवमाल्थसवादी विचारधारा को प्रस्तुत किया गया। यह कुछ मामलों में माल्थस के सिद्धांत से पृथक था। यह शब्द डॉ. सेम्यूल वेन हॉटन द्वारा बनाया गया था। नवमाल्थसवादी दृष्टिकोण तीसरी दुनिया के देशों के लिए जनसंख्या नियंत्रण नीतियों व कार्यक्रमों को प्राथमिकता देता है। यह दृष्टिकोण आवश्यक रूप से उच्च जन्म दर वाले देशों को अपनी

निर्धनता और अविकास के लिए ज़िम्मेदार मानते हैं। नव माल्थसवादियों द्वारा जन्म नियंत्रण के कृत्रिम साधनों के प्रयोग के बारे में निम्नांकित तर्क दिए हैं–

i. उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप ही जनसंख्या का आकार होना चाहिए, जिससे कि लोगों का जीवन-यापन उचित तरीके से हो सके। इसलिए जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित रखना आवश्यक हो जाता है।

ii. लोगों के स्वस्थ और रोगमुक्त होने के लिए यह आत्यंत आवश्यक है कि जनसंख्या की वृद्धि दर नियंत्रित रखा जाय।

iii. विवाह का उद्देश्य मात्र संतानोत्पत्ति ही नहीं होता है वरन इसे सामाजिक दायित्वों व कर्तव्यों से परिभाषित संबंधों के रूप में भी माना जाना चाहिए।

iv. सामान्यता जन्म नियंत्रण को अनैतिक माना जाता है, परंतु यह सही नहीं है।

v. जन्म नियंत्रण किसी देश, समाज अथवा परिवार के सामाजिक-आर्थिक आयामों पर ही प्रभाव नहीं डालता है, अपितु, यह अंतरराष्ट्रीय पक्षों को भी प्रभावित करता है।

5.4 जनसंख्या और पर्यावरण

मनुष्य पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण अंग है। वर्तमान संदर्भ में मनुष्य अपनी विवेकशीलता से पर्यावरण को न केवल प्रभावित किया है, अपितु, उसे नियंत्रित करने की क्षमता भी रखता है। 20वीं शताब्दी में मनुष्य ने सामाजिक, आर्थिक व भौतिक जीवन के क्षेत्र में अप्रत्याशित उन्नति की है। मनुष्य द्वारा अपने कल्याणार्थ, पर्यावरण में छेड़छाड़ करना आरंभ किया गया। कुछ क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, यथा- जनसंख्या में वृद्धि हुई, औद्योगीकरण व नगरीकरण आदि के रूप में सुख-सुविधाओं का संचार हुआ, सिंचाई हेतु बाँध बनाए गए आदि। मनुष्य को इन परिवर्तनों के बदले भारी मूल्य चुकाना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि जनसंख्या वृद्धि, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, सामाजिक प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों के दुरुपयोग की समस्या, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ आदि प्रकार की चुनौतियाँ मनुष्य के सामने खड़ी हो गई हैं।

5.5 जनसंख्या और संसाधन

मनुष्य के अनेक उद्देश्यों, आवश्यकताओं की पूर्ति व समस्याओं के समाधान अथवा उसमें योगदान करने वाले स्रोत को ही संसाधन कहा जाता है। हालांकि मनुष्य का ज्ञान ही सबसे उत्तम संसाधन है, क्योंकि उसके ज्ञान, सामाजिक-सांस्कृतिक व राजनैतिक संगठन के कारण ही प्राकृतिक तत्व संसाधन के रूप में पर्णित होते हैं।

प्रो.कार्बर के अनुसार, *"समृद्ध पर्यावरण के मध्य भी समुदाय और राष्ट्र निर्धन रहे हैं। पर्याप्त व उत्तम प्रकार के संसाधन होने के बावजूद मानवीय संसाधन की कमी के कारण ही राष्ट्र विनाश की ओर अग्रसरित हो गए।"*

प्रो. ए. मुखर्जी का कथन है, *"किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहाँ के मानवीय संसाधन राष्ट्र की सबसे बड़ी पूँजी होती है, किंतु उन संसाधनों के समुचित प्रयोग न होने, नवीन रोजगार अवसरों की अनुपलब्धता आदि से राष्ट्र की जनसंख्या भार स्वरूप बन जाती है। राष्ट्र के लिए अपनाई गई नीति में मानव शक्ति का आयोजन एक मूल तत्व होता है।"*

किसी राष्ट्र अथवा क्षेत्र की जनसंख्या और संसाधनों के मध्य घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। 20वीं शताब्दी के दौरान विश्व के विस्तृत क्षेत्र में खाद्यान आपूर्ति की समस्या उत्पन्न हो गई। विश्व के जनसंख्या वितरण व संसाधन की उपलब्धता में उत्पन्न असंतुलन के कारण आर्थिक विकास प्रभावित होता है। अतएव वर्तमान संदर्भ में जनसंख्या और संसाधनों के अंतर्संबंध व उसके संतुलन को विश्लेषित करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

5.6 सारांश

इस इकाई में जनसंख्या वृद्धि और समाज को उससे होने वाली समस्याओं पर वर्णन प्रस्तुत किया गया। जनसंख्या से संबंधित कुछ दृष्टिकोणों को भी प्रस्तुत किया गया जो जनसंख्या की वृद्धि और उसके नियंत्रण पर अपने मत को प्रस्तुत करते हैं। जनसंख्या का पर्यावरण और संसाधन के साथ अंतर्संबंध को भी विश्लेषित करने का प्रयास इस इकाई के मध्य से किया गया है।

5.7 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 1: जनसंख्या वृद्धि और उससे उत्पन्न समस्याओं को बताइए।

बोध प्रश्न 2: जनसंख्या और विकास से संबंधित कुछ विद्वानों के परिप्रेक्ष्यों को प्रस्तुत कीजिए।

बोध प्रश्न 3: जनसंख्या और संसाधनों के मध्य के अंतर्संबंध पर प्रकाश डालिए।

5.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

भट्ट, के.एन. (2008). *पोपुलेशन, इनवायरमेंट एंड हेल्थ*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

पाण्डेय, अ. (2012). *भारत का जनसंख्या भूगोल*. नई दिल्ली: डिस्कवरी पब्लिशर हाउस

सिंह, स.न. (2009). *जनसंख्या और अधिवास भूगोल*. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स

कुमारी, पी. (2008). *जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन

त्रिपाठी, आर.डी. (1999). *जनांकिकी एवं जनसंख्या अध्ययन*. गोरखपुर: वसुंधरा प्रकाशन

व्यास, ह. (2004). *जनसंख्या, प्रदूषण और पर्यावरण*. कानपुर: भारतीय साहित्य संग्रह

खंड - 3

विकास: मानव अधिकार परिप्रेक्ष्य

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 1 संविधान के सामाजिक आदर्श

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देशिका
1.3 मौलिक अधिकार
1.4 राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांत
1.5 वंचितों के अधिकार और संविधान
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 बोध प्रश्न
1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) संविधान द्वारा प्राप्त मौलिक अधिकारों को समझ सकेंगे।

2) वंचितों के उत्थान के लिए क़ानूनी प्रावधानों से अवगत होंगे।

3) संविधान से संबंधित प्रमुख शब्दावली को परिभाषित कर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

1.1 प्रस्तावना

किसी भी देश का संविधान उस देश की राजनीतिक व्यवस्था की बुनियादी ढाँचा तैयार करता है, जिसके अंतर्गत उस देश की जनता शासित होती है। भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान की रचना ने भारतीय लोकतंत्र के महत्व को बढ़ा दिया, क्योंकि भारतीय संविधान बहुत ही बृहद और विस्तृत है। भारतीय संविधान, संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, 1949 को अंगीकार किया गया था और 26 जनवरी, 1950 से पूर्ण रूप से लागू हो गया। भारतीय संविधान में 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थी। इसमें अब 465 अनुच्छेद, तथा 12 अनुसूचियाँ हैं और ये 22 भागों में विभाजित है। चुँकी हमारे संविधान में संशोधन की आज़ादी है, जिसकी वजह से समय-समय पर संशोधन भी हुए हैं। भारतीय संविधान की रचना करते समय भारत के सभी वर्गों और समुदायों के लिए समान अधिकार दिया गया है। विशेष कर

भारत के पिछड़े वर्गों, समुदायों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातिययों, बच्चों और महिलाओं आदि के उत्थान के लिए विशेष क़ानूनी प्रावधान किए गए हैं।

1.2 उद्दशिका

किसी संविधान की उद्देशिका से यह आशा की जाती है कि जिन आधारभूत मूल्यों एवं दर्शन पर आधारित हो तथा जिन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करने के लिए संविधान निर्माताओं ने राज्य व्यवस्था को निर्देश दिया हो, उनका उसमें समावेश हो। भारतीय संविधान में देश के दार्शनिक एवं सामाजिक लक्ष्य निहित है। किसी भी लिखित संविधान में उद्देशिका उस संविधान का एक परिचय होता है, जिसके आधार पर हम मूलभूत मूल्यों को समझ सकते हैं।

भारतीय संविधान की उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए और उसके सभी नागरिकों को; सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय;

विचारों, अभिव्यक्ति, मान्यता, विश्वास और धर्म और उपासना की स्वतंत्रता;

प्रतिष्ठा और अवसर की समता;

प्राप्त कराने के लिए और उन सभी में व्यक्ति की मर्यादा/गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए;

दृढ़संकल्प होकर अपनी संविधान सभा में आज नवंबर, 1949 के इस छब्बीसवें दिन को हम अपने लिए इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं।

उपर्युक्त उद्देशिका को पढ़ने के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लक्ष्यों का पता चलता है। इसमें न्याय की परिभाषा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के रूप में की गई है। स्वतंत्रता में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सम्मिलित है और समानता का अर्थ है प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता। उद्देशिका का अंतिम लक्ष्य है व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करना। इस प्रकार, उद्देशिका यह घोषणा करने का काम करती है कि "भारत के लोग" संविधान के मूल स्रोत है। प्रत्येक भारतीय लोगों के लिए यह एक शपथ पत्र भी है।

1.3 मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकार अंकित हैं। हम कह सकते हैं कि मानव अधिकारों को सुरक्षित करने के हेतु ही मौलिक अधिकार अधिसूचित किए गए हैं। राज्य का कोई भी कार्य ऐसा नहीं हो सकता है जो मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हो। भारतीय संविधान में देश के सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की बात की गई हैं साथ ही उनके कुछ कर्त्तव्य भी सुनिश्चित किए गए हैं। अगर हमारे मौलिक अधिकारों का हनन होता है तो हम व्यक्ति तथा सरकार के विरुद्ध भी न्यायालय में न्याय की माँग कर सकते हैं।

संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार निम्न हैं-

- **समानता का अधिकार**
- **स्वतंत्रता का अधिकार**
- **शोषण के विरुद्ध अधिकार**
- **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार**
- **सांस्कृतिक और शिक्षण का अधिकार**
- **संविधान में संशोधन का अधिकार**
- **कुछ क़ानूनों/नियमों की रक्षा का अधिकार**

भारतीय संविधान के तीसरे अध्याय के अनुच्छेद 12-35 में बताए गए मौलिक अधिकारों को विस्तृत रूप में देखा जा सकता हैं-

समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)

अनुच्छेद (14) : कानून के समक्ष समानता : राष्ट्र किसी व्यक्ति की कानून के लिए समानता को अथवा भारत के अधिकार क्षेत्र के भीतर क़ानूनों की समान सुरक्षा को अस्वीकार नहीं कर सकता है। कानून के समक्ष भारत के सभी नागरिक समान है।

अनुच्छेद (15) : धर्म, वंश, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर विभेदन का निषेध :

1. राष्ट्र को किसी नागरिक में सिर्फ धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के कारण अंतर नहीं करना चाहिए।
2. किसी भी नागरिक को सिर्फ धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर निम्न के संदर्भ में कोई अक्षमता, ज़िम्मेदारी, प्रतिबंध अथवा शर्त में नहीं बांधा जा सकता है-

   अ) दुकान, जन भोजनालय, होटल अथवा जन मनोरंजन के स्थानों तक पहुँचने से अथवा

आ) कुओं, टंकियों, नहाने के घाटों, सड़कों और आम जनता के उपयोग के लिए समर्पित अथवा पूर्ण: अथवा आंशिक रूप से राष्ट्र के कोष से चलाए जा रहे जन मनोरंजन स्थलों के उपयोग से।

3. इस अनुच्छेद में यह प्रावधान भी है कि कोई भी परिस्थिति राष्ट्र को महिलाओं और बच्चों के लिए और नागरिकों के किसी सामाजिक अथवा शिक्षण रूप से पिछड़े हुए वर्ग के उत्थान के लिए अथवा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान करने से नहीं रोक सकती है।

अनुच्छेद (16) : जन रोज़गार के मामलों में अवसर की समानता : सभी नागरिकों के लिए राष्ट्र के अधीन कार्यालय में रोज़गार अथवा नियुक्ति से संबंधित मामलों में समानता होनी चाहिए। किसी भी नागरिक को सिर्फ धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर राष्ट्र के तहत किसी भी रोज़गार अथवा कार्यालय के लिए अयोग्य नहीं माना जा सकता और किसी के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जाता।

इस अनुच्छेद के अनुसार कोई भी राष्ट्र को नागरिकों के किसी पिछड़े वर्ग के लिए नियुक्तियों अथवा पदों के आरक्षण और राष्ट्र के अधीन सेवाओं में किसी वर्ग या वर्गों की उन्नति हेतु अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को समर्थन देने से नहीं रोकता है।

अनुच्छेद (17) : अस्पृश्यता का उन्मूलन : अनुच्छेद 17 के अंतर्गत अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है और किसी भी रूप में इसका व्यवहार/चलन प्रतिबंधित है। अस्पृश्यता के कारण होने वाली किसी भी अयोग्यता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध है।

अनुच्छेद (18) : पदवियों का उन्मूलन : कोई भी पदवी जो सैन्य अथवा अकादमिक विशिष्टता की न हो, उसे राष्ट्र द्वारा प्रदान नहीं किया जाएगा और भारत का कोई भी नागरिक किसी विदेशी राष्ट्र से कोई पदवी स्वीकार नहीं करेगा।

कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राष्ट्र के अधीन किसी लाभ अथवा भरोसे के पद पर होने के काल में राष्ट्रपति किसी विदेशी राष्ट्र से कोई पदवी स्वीकार नहीं कर सकता है।

स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

अनुच्छेद (19) : बोलने/वाणी की स्वतंत्रता आदि से संबंधित कुछ अधिकारों की सुरक्षा :

1) सभी नागरिकों को

क) बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का;

ख) शांतिपूर्वक और शास्त्रों के बिना एकत्रित होने का;

ग) संगठन अथवा संघ बनाने का;

घ) भारत के पूरे क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक घूमने;

ङ) भारत के किसी भी क्षेत्र में निवास करने और बसने का; और

च) किसी रोज़गार को अपनाने अथवा किसी व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार को करने का – अधिकार है।

उपयुक्त स्वतंत्रताएँ/ अधिकार हमें संविधान द्वारा दिए गए है लेकिन निम्न आधारों पर राष्ट्र द्वारा इन पर प्रतिबंध भी लगाया जा सकता है :

- भारत की संप्रभुता और अखंडता;
- राष्ट्र की सुरक्षा;
- विदेशी राष्ट्रों से मित्रवत संबंध;
- जनादेश, मर्यादा अथवा नैतिकता;
- न्यायालय की अवमानना, बदनामी अथवा किसी अपराध को उकसाने के संदर्भ में;
- अभ्यास करने के लिए आवश्यक व्यावसायिक अथवा तकनीकी शिक्षा;
- कोई रोज़गार अथवा कोई व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार करने में;
- किसी व्यापार, व्यवसाय, उद्योग अथवा सेवा के लिए राष्ट्र द्वारा संचालित अथवा नियंत्रित किसी निगम द्वारा शिकायत पर नागरिक का बहिष्कार, पूर्ण अथवा आंशिक अथवा अन्य।

अनुच्छेद (20) : अपराधों के लिए दंडित गए जाने के संदर्भ में सुरक्षा :

1) किसी भी व्यक्ति को उस कानून के उल्लंघन के अतिरिक्त किसी अपराध के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है जिसे उस कानून को लागू करते समय अपराध माना गया था, न ही उसे अपराध का निर्धारण करते समय लागू किए गए कानून के तहत निर्धारित दंड/जुर्माने से अधिक जुर्माना लिया जा सकता है।

2) किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित अथवा दंडित नहीं किया जा सकता है।

3) किसी भी व्यक्ति को जो किसी अपराध का अभियुक्त हो अपने खिलाफ गवाही देने को बाध्य नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद (21) : जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की सुरक्षा : किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन अथवा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता है, सिर्फ क़ानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही ऐसा किया जा सकता है।

अनुच्छेद (22) : कुछ मामलों में गिरफ्तारी अथवा नजरबंदी के विरुद्ध सुरक्षा :

1) कोई भी व्यक्ति जिसे गिरफ़्तार किया गया हो, को बिना सूचना के हिरासत में नहीं रखा जा सकता है, न ही उसे उसकी पसंद के वकील से परामर्श करने अथवा अपने बचाव के लिए नियुक्त करने के अधिकर से वंचित किया जा सकता है।

2) प्रत्येक व्यक्ति जिसे गिरफ़्तार करके हवालात में रखा जाता है को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तारी के बाद चौबीस घंटे के अंदर पेश किया जाना अनिवार्य है।

अनुच्छेद (23) : मनुष्यों और बंधुआ मज़दूरों के व्यापार का निषेध : मनुष्यों और किसी भी प्रकार के बंधुआ मज़दूरों का व्यापार निषेध है और ये कानून के अनुसार एक दंडनीय अपराध है।

अनुच्छेद (24) : कारखानों, आदि में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध : इस अनुच्छेद के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को किसी कारखाने अथवा खदान अथवा किसी अन्य जोखिमपूर्ण रोज़गार के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता है, ऐसा करना दंडनीय अपराध है।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

अनुच्छेद (25) : अंतःकरण की स्वतंत्रता और स्वतंत्र व्यवसाय, व्यवहार और धर्म के प्रसार की स्वतंत्रता: जनादेश, नैतिकता और स्वास्थ्य और इस भाग के अन्य प्रावधानों के अनुसार, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता और स्वतंत्र रूप से धार्मिक कार्यों का व्यवहार और प्रसार करने का अधिकार है।

अनुच्छेद (26) : धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता : जनादेश, नैतिकता और स्वास्थ्य के आधार पर, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय अथवा उसके किसी भी वर्ग को निम्नांकित अधिकार प्राप्त है –

अ) धार्मिक और धर्मार्थ कार्यों के लिए संस्थान स्थापित करने और उन्हें चलाने का;

आ) धर्म के मामलों में अपने निजी मामलों के प्रबंधन का;

इ) चल और अचल संपत्ति की मिल्कियत और अर्जित करने का और;

ई) ऐसी संपत्ति को कानून के अनुसार दर्ज करने का।

अनुच्छेद (27) : किसी विशेष धर्म के प्रोत्साहन के लिए करों के भुगतान की स्वतंत्रता

अनुच्छेद (28) : धार्मिक शिक्षा में उपस्थित न होने की स्वतंत्रता : अनुच्छेद 28 पूर्णत: राज्य निधि से पोषित शैक्षणिक संस्थानों में कोई धार्मिक शिक्षा देने का पूर्णतया प्रतिषेध करता है। राज्य से मान्यता तथा सहायता प्राप्त अन्य संस्थाओं के मामलों में, प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा तथा उपासना में उपस्थित न होने की स्वतंत्रता होगी, इसके लिए कोई भी किसी अन्य पर किसी प्रकार का दबाव नहीं बना सकता है।

सांस्कृतिक और शिक्षण अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

अनुच्छेद 29 और 30 : अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा और शिक्षण संस्थानों को स्थापित करने और उन्हें चलाने के उनके अधिकार की रक्षा करते हैं। सभी अल्पसंख्यकों, को अपनी पसंद के शिक्षण संस्थानों को स्थापित करने और चलाने का अधिकार है।

संपत्ति का अधिकार : अनुच्छेद 31 संपत्ति का अधिकार, अधिग्रहण एक्ट, 1978 द्वारा निरस्त कर दिया गया। संविधान के 44वें संशोधन के बाद, संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं रहा। अनुच्छेद 300 ए के तहत, यह संवैधानिक अधिकार बन गया।

कुछ क़ानूनों की सुरक्षा हेतु :

अनुच्छेद 31 ए- भूसंपत्ति आदि के अधिग्रहण के लिए कानून की सुरक्षा

अनुच्छेद 31 बी- कुछ एक्ट और नियमनों की वैधता

अनुच्छेद 31 सी- कुछ निदेशात्मक सिद्धांतों को लागू करने के लिए क़ानूनों की सुरक्षा

अनुच्छेद 32- संवैधानिक सुधारों का अधिकार : उच्चतम न्यायालय के पास निर्देशनों, अथवा आदेशों अथवा याचिकाओं को जारी करने का अधिकार होता है, जिसमें अनुच्छेद 33, 34 और 35 कोई अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं। लेकिन संसद की शक्ति से संबंधित प्रावधानों को निर्धारित करते हैं-

- बलों में उपयोग के लिए अधिकारों का रूपांतरण करना आदि;
- इन भाग द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों पर किसी क्षेत्र में कानून के लागू होने पर प्रतिबंध लगाना;
- इस भाग के प्रावधानों को प्रभावी बनाने के लिए कानून लागू करना।

मौलिक अधिकारों की प्रकृति

मौलिक अधिकार हमारे संविधान की विशेषताओं को उजागर करते हैं, जिससे हमें पता चलता है कि संविधान द्वारा सभी व्यक्तियों को समान समझा गया है और हमारी सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।

सबसे अधिक व्यापक

भारतीय संविधान के अध्याय तीन में 24 अनुच्छेद हैं जिनमें सात अधिकारों को उनके सूक्ष्मतम विस्तारों के साथ बताया गया है। ये सबसे अधिक व्यापक हैं और एक पूरा अध्याय इनके विषय में है।

अधिकारों को लागू करने हेतु विशेष उपाय

अनुच्छेद 32 के तहत एक विशेष अधिकार संवैधानिक उपचारों का अधिकार है जिसे अन्य सभी अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए सम्मिलित किया गया है। उच्चतम न्यायालय सभी अधिकारों की रक्षा करता है और अनुच्छेद 226 के अनुसार उच्च न्यायालयों को भी उनके क्रमिक न्याय अधिकार के

अधीन सीमाओं में इन अधिकारों को लागू करने के लिए याचिकाएँ जारी करने का अधिकार दिया गया है।

1.4 राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धांत

किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण में मौलिक अधिकार तथा नीति निर्देश महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य के नीति निर्देशक तत्व जनतांत्रिक संवैधानिक विकास के नवीनतम तत्व हैं। सर्वप्रथम ये आयरलैंड के संविधान में लागू किए गए थे। ये वे तत्व हैं जो संविधान के विकास के साथ ही विकसित हुए हैं। इन तत्वों का कार्य एक जनकल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) की स्थापना करना है। भारतीय संविधान में, अध्याय-IV में अनुच्छेद 36 से 51 में राष्ट्र की कुछ मौलिक जिम्मेदारियों को निर्धारित किया गया है, जिसे हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

अनुच्छेद	विवरण
36	परिभाषा
37	इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना
38	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा
39	राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व
39क	समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता
40	ग्राम पंचायतों का संगठन
41	कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार
42	काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध
43	कर्मकारों के लिए निर्वाह मज़दूरी आदि
43क	उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना
44	नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता
45	बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध
46	अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि
47	पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य को सुधार करने का राज्य

	का कर्तव्य
48	कृषि और पशुपालन का संगठन
48क	पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन वन तथा वन्य जीवों की रक्षा
49	राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण
50	कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण
51	अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि

अनुच्छेद 37- यह स्पष्ट करता है कि ये निदेशात्मक सिद्धांत देश के शासन में मौलिक हैं, लेकिन ये प्रावधान न्यायपालिका द्वारा लागू गए जाने योग्य नहीं है। जहां नागरिक और राजनैतिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों के अध्याय में सम्मिलित किया गया है, जिन्हें वैधानिक रूप से लागू किया जा सकता है, वहीं सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को निदेशात्मक सिद्धांतों में सम्मिलित किया गया है, जिन्हें वैधानिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 38 –जनता के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए तथा सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित करने के लिए राष्ट्र को व्यादेश देता है। यह राष्ट्र से जहां तक संभव हो सके प्रभावी रूप से ऐसी सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने का आग्रह करता है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की राष्ट्रीय जीवन के सभी संस्थानों को जानकारी हो।

अनुच्छेद 39 –यह अनुच्छेद राष्ट्र को निम्नलिखित को सुरक्षित रखने की दिशा में अपनी नीतियाँ बनाने का अधिकार देता है :

क) पुरुष और महिला नागरिकों को समान रूप से जीविका के उपयुक्त साधनों का अधिकार है;

ख) समुदाय के सामग्री संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण का वितरण इस प्रकार हो कि वह सामान्य वस्तुओं को मुहैया करने के लिए श्रेष्ठ हो;

ग) आर्थिक प्रणाली के प्रचलन से संपत्ति का सान्द्रण और उत्पादन के साधनों की क्षति न हो;

घ) महिलाओं और पुरुषों के लिए समान कार्य के लिए समान मज़दूरी अथवा वेतन हो;

ङ) महिला और पुरुष श्रमिकों और कम उम्र के बच्चों के स्वास्थ्य और शक्ति से खिलवाड़ न हो और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण अपनी आयु अथवा शक्ति के लिए अनुपयुक्त व्यवसायों को अपनाने के लिए बाध्य न होना पड़े;

च) बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्र और सम्मानपूर्ण स्थितियों में विकसित होने के अवसर और सुविधाएँ प्रदान की जाएँ और यह कि बच्चों और युवाओं की नैतिक और सामग्री परित्याग और शोषण के विरुद्ध सुरक्षा की जाए।

अनुच्छेद 39 ए – राष्ट्र को उपयुक्त क़ानूनों अथवा योजनाओं के द्वारा मुफ्त वैधानिक सहायता के प्रावधान को सुनिश्चित करने का आदेश देता है, जिससे कोई भी नागरिक आर्थिक अथवा अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय से वंचित न हो सकें।

अनुच्छेद 40 – राष्ट्र को ग्राम पंचायतों के संगठन और उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान करने का आदेश देता है, जिससे वो स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

अनुच्छेद 41 – राष्ट्र से उसकी आर्थिक क्षमता की सीमाओं में कार्य करने और शिक्षा के अधिकार और बेरोज़गारी, वृद्धावस्था और बीमारी और अपंगता और अन्य अवांछित मांग के मामलों में जन सहायता को सुरक्षित करने के लिए अधिक प्रभावी प्रावधान बनाने का आग्रह करता है।

अनुच्छेद 42 – यह बताता है कि राष्ट्र को कार्य और मातृत्व सहायता की उचित और मानवीय स्थितियों को सुरक्षित करने के लिए प्रावधान बनाने चाहिए।

अनुच्छेद 43 – यह राष्ट्र को उचित कानून अथवा आर्थिक संगठन द्वारा कृषि, औद्योगिक अथवा अन्य प्रकार के सभी श्रमिकों के लिए जीविका भत्ते और कार्य स्थितियों को सुरक्षित रखने का निर्देश देता है।

अनुच्छेद 43 ए - यह राष्ट्र से उपयुक्त कानून के द्वारा अथवा अन्य संगठनों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी को सुरक्षित करने का आग्रह करता है।

अनुच्छेद 44 – यह राष्ट्र को भारत के संपूर्ण क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक आचार संहिता को सुरक्षित करने के बारे में बताता है।

अनुच्छेद 45 – जिसमें इस संविधान के आरंभ के 10 वर्षों की अवधि में बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रावधान था जबतक कि वे 14 वर्ष के न हो जाए। लेकिन बाद में इसे संवैधानिक संशोधन के द्वारा एक मौलिक अधिकार बना दिया गया।

अनुच्छेद 46 – अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा और आर्थिक हितों के प्रोत्साहन के बारे में हैं और राष्ट्र से आग्रह करता है कि सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करें।

अनुच्छेद 47 – राष्ट्र को पोषण का स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने और जन स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का निर्देश देता है।

अनुच्छेद 48- राष्ट्र से कृषि और पशु प्रजनन को आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से संरक्षित करने के लिए प्रयास का आग्रह करता है और अनुच्छेद 48 ए देश के वनों और वन्य जीवन की सुरक्षा द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार के बारे में बताता है।

अनुच्छेद 49 - यह अनुच्छेद राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों और स्थानों और वस्तुओं को नष्ट होने से बचाने के कर्त्तव्य के बारे में बताता है।

अनुच्छेद 50 –यह अनुच्छेद न्यायपालिका के कार्यपालिका से पृथक्करण को बताता है और अनुच्छेद 51 अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को प्रोत्साहन की आवश्यकता को बताता है।

नीति निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन

- पहला ही संशोधन अधिनियम भूमि सुधारों के क्रियान्वयन के लिए था।
- 4थें,17वें, 25वें, 42वें तथा 44वें संशोधन अधिनियमों में इसी का अनुगमन किया गया।
- 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (1992), अनुच्छेद 40 (ग्राम पंचायत) के क्रियान्वयन की दिशा में एक कदम था।
- ताज महल जैसे ऐतिहासिक स्मारको के संरक्षण का कार्य भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग को दिया गया है, जो अनुच्छेद 49 के प्रावधान का अनुपालन है।
- भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग ने 1992 के उत्तरार्ध में पुरी मंदिर के क्षय से संरक्षण का कार्य हाथ में लिया।
- अनेक योजनाएँ, जैसे- एकीकृत बाल विकास सेवाएं, मध्यान भोजन योजना तथा मादक पेयों के प्रतिषेध हेतु कुछ राज्यों की नीति (यथा-1993 में आंध्र प्रदेश) अनुच्छेद-47 का ही अनुसरण है।
- हरित क्रांति तथा जैव-प्रौद्योगिकी में शोध का एक लक्ष्य कृषि व पशुपालन का आधुनिकीकरण भी है, जो कि अनुच्छेद 48 का अनुसरण है।
- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986, वन्य-जीवन अधिनियम, राष्ट्रीय वन नीति-1988 आदि कुछ ऐसे कदम हैं, जो अनुच्छेद 48 (क) के क्रियान्वयन की दिशा में लिए गए हैं।
- 1995 में केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय पर्यावरण की स्थापना की।
- जिला स्तर पर कुछ न्यायिक शक्तियों से कार्यपालिका के कार्य को संपन्न करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता में किया गया संशोधन अनुच्छेद 50 का अनुसरण है।
- अंतर्राष्ट्रीय शांति को सुनिश्चित करने के लिए भारत ने अनेक प्रयास गए हैं, यथा-संयुक्त राष्ट्र की शांति स्थापना की कार्यवाहियों में भाग लेना (सोमालिया, सिएरा लियोन आदि), गुट निरपेक्ष आंदोलन का प्रारंभ व नेतृत्व करना इत्यादि।

निदेशक तत्वो का महत्व

- अनुच्छेद 37 घोषित करता है कि नीति निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं।
- चूँकि सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी है, नीति-निदेशक तत्व सभी आगामी सरकारों के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।
- नीति निदेशक तत्व इन सरकारो की सफलता-विफलता का आकलन करने के लिए मानदंड प्रस्तुत करते हैं।

निदेशक तत्वों की उपलब्धियां

- कर्मकारों के लिए कार्यस्थल पर मानवोचित दशाओं को बनाने के लिए कारखानों से संबंधित अनेक कानून हैं, अनुच्छेद 42।
- कुटीर उद्योगों का संवर्धन करना सरकार की आर्थिक नीतियों में प्रमुख रुप से रहा है और इस उद्देश्य के लिए खादी व ग्रामोद्योग आयोग भी है। इसके अतिरिक्त सिल्क बोर्ड, हथकरघा बोर्ड और नाबार्ड आदि का भी सृजन किया गया है।
- शिक्षा, प्रशासन तथा अर्थव्यवस्था में महिलाओं, अनुसूचित जाति, और अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों सहित कमज़ोर वर्गों को प्राथमिकता प्रदान करना व्यवहार सरकार की कल्याणकारी नीति का एक भाग रहा है। इसमें नवीनतम है - मंडल आयोग की रिपोर्ट का क्रियान्वयन, जिसके लिए 1992 में सर्वोच्च यायालय ने न्यायिक अनापत्ति प्रदान की-अनुच्छेद 46।

मौलिक अधिकार व निदेशक तत्वो में अंतर

- मौलिक अधिकार भारत के राजनीतिक प्रजातंत्र को आधार प्रदान करते हैं, जबकि नीति-निदेशक तत्व भारत के सामाजिक व आर्थिक प्रजातंत्र को।
- मौलिक अधिकार राज्य के निषेधात्मक कर्तव्य के रुप में है, अर्थात राज्य की निरंकुश कार्यवाहियों पर प्रतिबंध है। इसके विपरीत नीति-निदेशक सिद्धांत नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक कर्तव्य हैं।
- जहाँ मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं, वही नीति-निदेशक सिद्धांत न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं।

1.5 वंचितों के अधिकार और संविधान

किसी भी देश में संविधान को बनाते समय उस देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान गए जाते हैं। साथ ही उस देश के वंचितों और पिछड़े समुदायों के लिए विशेष नीति का नियोजन भी किया

जाता है। भारतीय संविधान एक बृहद संविधान है, जिसमें देश के तमाम पिछड़े अथवा वंचितों के लिए विशेष प्रावधान प्रस्तुत किए गए हैं, जिसके तहत महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों आदि के प्रति राष्ट्र की सकारात्मक भूमिका को चिन्हित किया गया है।

महिलाएँ और संविधान

भारत का संविधान सभी भारतीय महिलाओं को सामान अधिकार प्रदान करता है (अनुच्छेद 14), इनके साथ राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं करने (अनुच्छेद 15 (1)), अवसर की समानता (अनुच्छेद 16), समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 39 (घ)) की गारंटी देता है। इसके अलावा यह महिलाओं और बच्चों के पक्ष में राज्य द्वारा विशेष प्रावधान बनाए जाने की अनुमति देता है (अनुच्छेद 15(3)), महिलाओं की गरिमा के लिए अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने (अनुच्छेद 51(ए)(ई)) और साथ ही काम की उचित एवं मानवीय परिस्थितियाँ सुरक्षित करने और प्रसूति सहायता के लिए राज्य द्वारा प्रावधानों को तैयार करने की अनुमति देता है। (अनुच्छेद 42)। हमारे संविधान में महिलाओं के लिए इसके अलावा और भी बहुत से प्रावधान किए गए हैं। संविशन संशोधन में भी कई बार महिलाओं की सुरक्षा संबंधी कानून बनाए गए।

बाल अधिकार और संविधान

भारतीय संविधान में बच्चों के मूलभूत अधिकारों पर विशेष बल दिया गया है, जिनमें बाल श्रम को रोकने के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं। हमारे संविधान का अनुच्छेद 15, राज्यों की महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधान करने की शक्ति देता है। अनु. 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों एवं अन्य जोखिम पूर्ण कार्य में नियोजन का प्रतिरोध किया गया है। वहीं आर्थिक आवश्यकताओं की वजह से किसी व्यक्ति से उसकी क्षमताओं से परे काम करवाने का अनु.39 (ई.-एफ) प्रतिरोध करता है।अनु.45 के द्वारा बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान उपलब्ध कराने का राज्य को निर्देश दिया गया है। भारतीय संसद के द्वारा इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के तहत 1974 में एक राष्ट्रीय नीति स्वीकार की गई, जिसने घोषित किया कि बच्चों की उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से रक्षा की जाएगी और 14 वर्ष से कम का कोई भी बालक जोखिमपूर्ण व्यवसाय या भारी कार्य में नहीं लगाया जायेगा। 14 वर्ष की कम उम्र का व्यक्ति फैक्ट्री एक्ट 1948 के तहत रोज़गार नहीं कर सकता है। बागान एक्ट 1951 तथा खान एक्ट 1952 के तहत 15 वर्ष की उम्र में कार्यों पर प्रतिबंध लगाया गया है। कुछ प्रमुख अधिनियम अनुबंधित श्रमिक अधिनियम 1975, बाल श्रमिक (निवारण और नियमितीकरण) 1986 तथा 1987 की राष्ट्रीय बाल श्रम नीति के अंतर्गत बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने और उनकी शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन तथा सामान्य विकास पर जोर देने की व्यवस्था की गई।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अधिकार और संविधान

भारतीय संविधान द्वारा जातिगत भेदभाव और छुआछूत को समाप्त कर दिया गया है तथा इसके निवारण के लिए विशेष प्रावधान भी दिए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 17, 23, 24 और 25(2) (ख) में राज्य को अनुसूचित जातियों के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करने का आदेश दिया गया है। अनुच्छेद 17 का संबंध समाज में चल रही अस्पृश्यता की प्रथा के उन्मूलन से है। संसद ने अनुसूचित जातियों के साथ हो रही अस्पृश्या की समस्या के समाधान के लिए सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 अधिनियमित किए गए है। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को 30 जनवरी 1990 से लागू किया गया है। इन कानूनों में ऐसे दंण्ड का प्रावधान है जो भारतीय पौनल कोड और अन्य क़ानूनों के तहत संगत अपराधों से अधिक सख्त है। इसके अतिरिक्त, संविधान के 65वें संशोधन कानून, 1990 के अनुसार , 12 मार्च 1992 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग प्रभाव में आया है, जिसमें दीवानी अदालत के कार्यों और अधिकार क्षेत्र में वो मसले भी आते हैं जो उनके सामाजिक आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं।

1.6 सारांश

भारत का संविधान विश्व के किसी भी गणतांत्रिक देश का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। इसमें अब 465 अनुच्छेद, तथा 12 अनुसूचियां हैं और ये 22 भागों में विभाजित है। परंतु इसके निर्माण के समय मूल संविधान में 395 अनुच्छेद, जो 22 भागों में विभाजित थे, इसमें केवल 8 अनुसूचियां थीं। किसी भी लिखित संविधान में उद्देशिका उस संविधान का एक परिचय होता है, जिसके आधार पर हम मूलभूत मूल्यों को समझ सकते हैं। भारतीय संविधान की उद्देशिका से यह स्पष्ट होता है कि संविधान द्वारा भारत के सभी वर्गों, समुदायों को समान माना गया है। उद्देशिका को पढ़ने से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के स्पष्ट लक्ष्यों का भी पता चलता है।

मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निदेशात्मक तत्व भारतीय संविधान के दो प्रमुख घटक है। मौलिक अधिकार हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर पर समानता स्थापित करता हुआ स्पष्ट होता है। मौलिक अधिकार के तहत सबको समान समझा गया है और समाज के दमित अथवा पिछड़े व्यक्तियों के लिए विशेष अधिकार भी दिए गए है, जिसे राज्य नीति निदेशक के द्वारा लागू किया जाता है। हमारे मौलिक अधिकारों का जब हनन होता है या हमारे आत्मसम्मान का संकट होता है तब ऐसे में हम अपने मौलिक अधिकारों की संरक्षण के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय में भी जा सकते हैं। हमारा मौलिक अधिकार सात प्रमुख अधिकारों की गारंटी देते हैं और राष्ट्र नीति के निदेशात्मक सिद्धांत हमारे सामाजिक आदर्शों को स्पष्ट करते हैं। हमारे मौलिक अधिकारों की चर्चा संविधान के अध्याय तीन में अनुच्छेद 12-

35 तक की गई है और राष्ट्र नीति के निदेशात्मक सिद्धांतों की चर्चा अध्याय चार में अनुच्छेद 36-51 तक की गई।

1.7 शब्दावली

याचिका का आवेदन- वह याचिका जो मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के बारे में हो, को याचिका का आवेदन कहते हैं।

उद्देशिका- एक प्रारंभिक कथन अथवा प्राक्कथन।

धर्म निरपेक्ष- जहां धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता तथा सभी धर्मों को समान रूप से देखा जाता है।

लोकतंत्र - सरकार को सारी शक्तियां जनता से प्राप्त होती हैं। शासकों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। दूसरे रूप में कह सकते हैं कि लोकतंत्र जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए है।

समाजवाद- ऐसी व्यवस्था जिसमें उत्पादन और वितरण का स्वामित्व राज्य के नियंत्रण में रहता है।

गणराज्य- इसका मतलब यह है कि राज्य का अध्यक्ष एक निर्वाचित व्यक्ति है, जो एक निश्चित अवधि के लिए पद ग्रहण करता है।

अध्यादेश- जब संसद का अधिवेशन नहीं चल रहा हो और किसी विशेष उद्देश्य के लिए कानून की आवश्यकता हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा निर्मित कानून जैसा ही होगा।

प्रभुसत्ता संपन्न- जहां देश आंतरिक और बाह्य मामलों में पूरी तरह स्वतंत्र हो और किसी बाह्य शक्ति पर निर्भर न हो।

ज्ञान शांति मैत्री

1.8 प्रश्न बोध

1. संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों की चर्चा करें।
2. मौलिक अधिकार राज्य के नीति निदेशात्मक नियमों से किस तरह संबंधित है?
3. संविधान द्वारा वंचितों के लिए प्रस्तुत विशेष प्रावधानों की चर्चा करें।
4. लोकतंत्र में संविधान की भूमिका पर अपने विचार स्पष्ट करें।

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कश्यप, स. (2008(7ad). *हमारा संविधान* . नई दिल्ली: नेशनल बूक ट्रस्ट, इंडिया .

जस्टिस अ, कृष्ण वी. (1984) . *इंडियन जुस्टिस: पर्सपेक्टिव एंड प्रॉब्लेम्स* . इंदौर: वेदपाल लॉ हाउस.

गैंग्रेडो, के. (1978) . *सोशल लेजिस्लेशन इन इंडिया* . नई दिल्ली: कंसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.

इकाई- 2 समाज कार्य और मानव अधिकार

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 मानव अधिकार
2.3 सामाजिक कार्य और मानव अधिकार
2.4 मानव अधिकारों की तीन पीढ़ियाँ : समाज कार्य का स्थान
2.5 मानव अधिकारों की सीमाएँ
2.6 भारत में सामाजिक कार्य और मानव अधिकारों का आधारी ढाँचा
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 बोध प्रश्न
2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) मानव अधिकार को समझ सकेंगे।
2) सामाजिक कार्य और मानव अधिकार के संबंधों की विवेचना कर सकेंगे।
3) भारत में मानव अधिकार और सामाजिक कार्यों द्वारा कैसे सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जाता है, को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

"मानव अधिकार" 10 दिसंबर, सन 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अस्तित्व में आया। मानव अधिकार ऐसे अधिकार होते हैं जो प्रत्येक मनुष्य को जन्म के साथ ही जुड़ जाते हैं। प्रत्येक देश में मानव अधिकारों की रक्षा के लिए कानून हैं। वास्तव में देखा जाए तो मानवीय जीवन और अधिकारों की रक्षा उस देश के 'मानवाधिकार' कानूनों के लिए गौरवान्वित करने वाली बात होती है। वर्तमान में हमारे देश में 'मानवाधिकारों' की स्थिति वास्तव में जटिलता में देखी जा रही है। भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद में देखा जा सकता है। मानव अधिकारों की सुरक्षा राज्य सरकार से लेकर केंद्र सरकार तक करने के लिए बाध्य होती है। वर्तमान समय में मानव अधिकारों से

व्यक्तियों को रूबरू करने का कार्य बड़े स्तर पर सामाजिक कार्य द्वारा भी किया जा रहा हैं। एक सामाजिक कार्यकर्ता अपने सेवार्थियों सहित समूह, समाज और समुदाय आदि को भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने का कार्य कर रहे हैं।

2.2 मानव अधिकार

मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। यह अधिकार भारतीय संविधान के भाग-तीन में मूलभूत अधिकारों के नाम से वर्णित किए गए हैं और न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। इसके अलावा ऐसे अधिकार जो अंतरराष्ट्रीय समझौते के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकार किए गए हैं और देश के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं, को मानव अधिकार माना जाता है। अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के उदाहरण के रूप में जिनकी गणना की जाती है, उनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों, नागरिक और राजनैतिक अधिकार सम्मिलित हैं, जैसे कि जीवन और आज़ाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ-ही-साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा(यूडीएचआर) को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 10 दिसंबर, 1948 में अपनाया गया था। यूडीएचआर ने सदस्य देशों से मानवीय, नागरिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देने पर ज़ोर दिया। ये अधिकार " दुनिया में स्वतंत्रता, न्याय और शांति" का हिस्सा हैं।

स्वाभाविक आत्मसम्मान और समानता व अविच्छेद अधिकारों की मान्यता मानव परिवार के सभी सदस्यों के लिए दुनिया में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार हैं। मानव अधिकारों की उपेक्षा और अवमानना कर बर्बर कार्य हुए, जिसकी हमारी आत्मा इजाजत नहीं देती, लेकिन मानव अधिकारों के आने के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को तवज्जो दिया जाने लगा है, जिससे आम लोग सर्वोच्च आकांक्षा रख सकें। संयुक्त राष्ट्र ने बुनियादी मानव अधिकारों, मनुष्य की गरिमा और मूल्यों के साथ पुरुष और महिलाओं के समान अधिकार में भरोसा जताया है और अत्यधिक स्वतंत्रता के साथ जीवन के बेहतर स्तर और सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने मानव अधिकारों के निरीक्षण और बुनियादी स्वतंत्रता के अनुपालन के साथ सार्वभौमिक सम्मान को बढ़ावा देने और उसके सहयोग से इन्हें प्राप्त करने का वादा किया है। हालांकि यूडीएचआर एक गैर बाध्यकारी प्रस्ताव है और अब इसे अंतरराष्ट्रीय प्रथागत क़ानून के तौर पर माना जाने लगा है, जो राष्ट्रीय और अन्य न्यायपालिकाओं द्वारा उपयुक्त परिस्थितियों में लागू किया जा सकता है।

भारतीय संविधान तथा मानव अधिकार

मानवाधिकार पर सार्वभौम घोषणा का प्रारूप तैयार करने में भारत ने सक्रिय भागीदारी की। संयुक्त राष्ट्र के लिए घोषणा पत्र का मसौदा तैयार करने में भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने विशेष रूप से लैंगिक समानता को दर्शाने की ज़रूरत को उजागर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत छह प्रमुख मानव अधिकार प्रतिज्ञापत्र और बच्चों के अधिकारों पर करार के वैकल्पित प्रोटोकॉल का हस्ताक्षरकर्ता है। भारतीय संविधान के लागू होने के बाद सार्वभौम घोषणा के अधिकांश अधिकारों को इसके दो भागों, मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया है, जो मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा के लगभग क्षेत्रों को अपने में समेटे हुए हैं।

अधिकारों के पहले सेट में अनुच्छेद 2 से 21 तक घोषणा और इसके अंतर्गत संविधान के अनुच्छेद 12 से 35 तक में मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया है। इसमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक स्वतंत्रता का अधिकार, कुछ विधियों की व्यावृति और सांविधानिक उपचारों का अधिकार शामिल है।

अधिकारों के दूसरे सेट में अनुच्छेद 22 से 28 तक घोषणा और संविधान के अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को शामिल किया गया है। इसमें सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, कार्य का अधिकार, रोज़गार चुनने का स्वतंत्र अधिकार, बेरोज़गारी के खिलाफ काम की सुरक्षा और कार्य के लिए सुविधाजनक परिस्थितियाँ, समान कार्य के लिए समान वेतन, मानवीय गरिमा का सम्मान, आराम और छुट्टी का अधिकार, समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में निर्बाध हिस्सेदारी का अधिकार, मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना, समान न्याय और मुफ्त क़ानूनी सहायता और राज्य द्वारा पालन गए जाने वाले नीति के सिद्धांतों को शामिल किया गया है। हालांकि, मानव अधिकारों के लिए सम्मान भारतीय लोकाचार में सामाजिक दर्शन के एक भाग के रूप में लंबे समय से एक अस्तित्व में है।

मानव अधिकार रक्षा अधिनियम, 1993

भारत ने मानव अधिकार रक्षा अधिनियम, 1993 को बनाकर संघ तथा राज्य स्तर पर मानवाधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए आयोगों की स्थापना आवश्यक कर दिया। इस अधिनियम की वजह से संघ स्तर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तथा राज्यों के स्तर पर राज्य मानव अधिकार आयोगों की स्थापना करना क़ानूनी रूप से आवश्यक हो गया। यह आयोग मानव अधिकारों तथा उससे संबंधित विषयों को सुलझाने के लिए ज़िम्मेदार हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राज्य मानवाधिकार आयोग अब नागरिकों के रोज़मर्रा के जीवन का हिस्सा बन गया है साथ ही देश के शासन में भी इसका असर बढ़ता हुआ महसूस किया जा सकता है। अधिकारों में बारे में नागरिकों में अभिरुचि तथा जानकारी

लगातार बढ़ रही है। भारत विश्व में मानवाधिकारों की रक्षा का पक्षधर है तथा इसके लिए कार्यरत संघों का समर्थक भी है।

2.3 सामाजिक कार्य और मानव अधिकार

सामाजिक कार्य एक शैक्षणिक एवं व्यावसायिक विधा है जो अनुसंधान, नीति, सामुदायिक संगठन एवं अन्य विधियों द्वारा लोगों एवं समूहों के जीवन-स्तर को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है। सामाजिक कार्य का अर्थ है सकारात्मक, सुचिंतित और सक्रिय हस्तक्षेप के माध्यम से लोगों और उनके सामाजिक माहौल बीच अंत:क्रिया प्रोत्साहित करके व्यक्तियों की क्षमताओं को बेहतर करना, ताकि वे अपनी ज़िंदगी की ज़रूरतें पूरी करते हुए अपनी तकलीफ़ों को कम कर सकें। इस तरह सामाजिक कार्य लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति करने और उन्हें अपने ही मूल्यों की कसौटी पर खरे उतरने में सहायक होता है। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान एक सामाज कार्य कार्यकर्ता अपने सेवार्थी के साथ इस तरह काम करते हैं कि उनके मानव अधिकारों की रक्षा भी हो और मौलिक अधिकारों की भी रक्षा हो। (नेशनल एसोसिएशन ऑफ सोशल वर्कर्स, 2000) ने अपने नीति कथन इंटरनेशनल पॉलिसी ऑन ह्यूमन राइट्स में उन सार्वभौमिक घोषणा-पत्र, सम्मेलनों और संधियों का समर्थन किया है जो सामाजिक कार्यकर्ताओं के राष्ट्रीय संगठन के अनुसार, सामाजिक कार्य के लिए मानव अधिकारों की रूपरेखा प्रदान करते हैं।

मानव अधिकार और मानव की प्रतिष्ठा

समाज कार्य का सिद्धांत मनुष्यों को स्वावलंबन प्रदान करने का प्रयास करता है, जिसके माध्यम से एक सामाजिक कार्यकर्ता अपने सेवार्थी को उसके अधिकारों से रूबरू करता है, ताकि सेवार्थी अपने अधिकारों को समझ सकें और अपने अधिकारों की सुरक्षा खुद कर सकें। एक सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्ति के गरिमामयी जीवन के लिए उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक सुरक्षा के लिए कार्य करता है, जिसके माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता लोगों के आत्मसम्मान के अधिकारों को बढ़ावा देते हैं, विशेषकर उन समूहों पर, जिसका सशक्तीकरण नहीं हुआ है, ताकि समाज के सभी वर्ग, समुदाय तथा संप्रदाय का विकास हो सकें और समाज के प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा से जीवन-यापन कर सकें।

2.4 मानव अधिकारों की तीन पीढ़ियाँ : समाज कार्य का स्थान

मानव अधिकार समय के साथ विकसित हुए ऐसे अधिकार है, जिसे अंतर्गत प्रत्येक मानव के लिए समान अधिकार का प्रावधान किया जाता है। मानव अधिकारों को व्यापक रूप से तीन समूहों अथवा तीन पीढ़ियों के रूप में विकसित माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि मानव अधिकार के विकास क्रम तीन धाराओं में रहा है, जिसमें प्रत्येक धारा में विशिष्ट प्रमुख धाराएँ थी, जिसे हम निम्न सारणी में देख सकते हैं-

	पहली पीढ़ी	दूसरी पीढ़ी	तीसरी पीढ़ी
नाम	नागरिक और राजनैतिक अधिकार	आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार	सामूहिक अधिकार
उत्पत्ति	उदारवाद	समाजवाद, सामाजिक प्रजातंत्र	आर्थिक विकास अध्ययन हरित आदर्शवाद
उदाहरण	वोट देने, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निष्पक्ष व्यवहार, उत्पीड़न दुर्व्यवहार से मुक्ति, भेदभाव से मुक्ति, क़ानूनी सुरक्षा	शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य, रोज़गार, पर्याप्त आय, सामाजिक सुरक्षा, आदि के अधिकार	आर्थिक विकास और समृद्धि, आर्थिक वृद्धि से हितों, सामाजिक सौहार्द, स्वस्थ पर्यावरण, स्वच्छ वायु आदि के अधिकार
संस्था	विधिक क्लीनिक एमनेस्टी इंटरनेशनल, ह्यूमन वाच, शरणागत कार्य	हितकारी राष्ट्र,वेलफ़ेयर स्टेट, तीसरा क्षेत्र, निजी बाजार कल्याण	आर्थिक विकास संस्थाएँ, सामुदायिक परियोजनाएँ, ग्रीनपीस आदि
प्रभावी व्यवसाय	विधि/कानून	सामाजिक कार्य	सामुदायिक विकास
सामूहिक कार्य	वकालत, शरणागत कार्य, शरण स्थान की तलाश करने वाले, कैद सुधार, आदि	प्रत्यक्ष सेवा, हितकारी राष्ट्र का प्रबंधन, नीति विकास और वकालत अनुसंधान	सामुदायिक विकास, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, व्यक्तिगत आदि

ज्ञान शांति मैत्री

2.5 मानव अधिकारों की सीमाएँ

प्रकृति के अलावा मनुष्यों द्वारा बनाए गए विधि सम्मत क़ानून का भी यह कर्त्तव्य है कि वह मानवाधिकारों की रक्षा करें। हमारे मानव समाज में मानवाधिकारों के प्रति सचेतता आम लोगों में विशेष रूप से दिखाई नहीं पड़ती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में आए दिन घटित होने वाली महिलाओं के शारीरिक और मानसिक शोषण और प्रताड़ना की घटनाएँ, प्रतिदिन होने वाली हजारों भ्रूण हत्याएँ भारतीय संस्कृति की गरिमा तार-तार करती हैं। भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, शारीरिक प्रताड़ना और मानसिक उत्पीड़न आदि अत्याचारों से पीड़ित महिलाओं के विषय में मानवाधिकारों की आवश्यकता को रेखांकित करते ही हमारा समाज प्रायः मौन हो जाता है। मानव अधिकारों पर बातचीत की गंभीर सीमाएँ हैं, क्योंकि पहली पीढ़ी के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। मानव अधिकारों पर किसी भी परिचर्चा में देश के मानव अधिकारों का रिकॉर्ड ही उसके सभी तीन पीढ़ियों के मानव अधिकारों के प्रदर्शन को प्रदर्शित करने वाले समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास की बजाय पहले

आता है। पहली पीढ़ी के अधिकार न्यायपूर्ण समाज के लिए आवश्यक है, लेकिन ये स्वयं सामाजिक समानता अथवा सामाजिक न्याय निर्मित नहीं कर सकते हैं। यदि ऐसे लक्ष्यों को प्राप्त करना हो तो कम से कम दूसरी पीढ़ी के अधिकारों पर भी विचार करना चाहिए और तीसरी पीढ़ी के अधिकारों को भी सामाजिक न्याय की पूर्ण शर्तों के रूप में समावेशित किया जाना चाहिए।

2.5भारत में सामाजिक कार्य और मानव अधिकारों का आधारी ढाँचा

भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों में मानव अधिकार अंतर्भूत है। ये अधिकार भारतीय न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। भारतीय न्यायालयों द्वारा मानवाधिकारों की सक्रिय रूप से रक्षा करने की बात भी स्वीकार की गयी है। इस प्रकार अनेकों न्यायिक दृष्टान्त भी जीवन की स्वतंत्रता, समता, गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार आदि मौलिक अधिकारों एवं मानव अधिकारों के प्रतिबिंबित उदाहरण हैं। वास्तव में मानवीय जीवन और अधिकारों की रक्षा किसी देश के मानवाधिकार क़ानूनों के लिए गौरवान्वित करने वाली बात है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पत्र के परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने मई 1993 में मानवाधिकार आयोग का गठन कर इस दिशा में सार्थक भूमिका निभायी है। भारत के संविधान की प्रस्तावना से स्पष्ट होता है कि भारत के सभी नागरिकों को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता का अधिकार देता है, तो अनु0 15 भेदभाव पर रोक लगाता है,अनु0 16 (1) लोक सेवा में अवसर की समानता, तथा अनुच्छेद 22 संरक्षण का अधिकार देता है। महिलाओं को विशेष संरक्षण प्रदान करने हेतु संविधान के अनुच्छेद 15(3), 42, 34, 39 तथा संविधान के 73 वें एवं 75 वें संशोधन द्वारा महिलाओं को पंचायत चुनाव में 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया वही सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 25 की उपधारा 2 में अभिवर्णित है कि राज्य कल्याण की वृद्धि के लिए महिलाओं को विशेष संरक्षण प्रदान करेगा। वास्तव में भारत में मानवाधिकार की जड़े हमारी सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक बनावट एवं सांस्कृतिक परंपराओं में निहित है। इसके बाद भी समय-समय पर मानव अधिकारों को और मज़बूती देने के उद्देश्य से सूचना का अधिकार क़ानून, 2005 में लागू किया गया। जिसके अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ता भी सूचना का अधिकार कानून का मानव अधिकारों के दुर्व्यवहार और उल्लंघन को नियंत्रित करने के लिए करता है। समाज कार्य मानव-समाज और मानव-संबंधों के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन करता है, साथ ही इन संबंधों में आने वाले अंतरों एवं सामाजिक परिवर्तन के कारणों की खोज क्षेत्रीय स्तर पर करने के साथ-साथ व्यक्ति के मनोसामाजिक पक्ष का भी अध्ययन करता है। समाज-कार्य करने वाले कर्ता का आचरण विद्वान की तरह न होकर समस्याओं में हस्तक्षेप के ज़रिए व्यक्तियों, परिवारों, छोटे समूहों या समुदायों के साथ संबंध स्थापित करने की तरफ़ उन्मुख होता है।

2.7 सारांश

हमने इस इकाई में मानव अधिकारों को समझा, जिसमें हमने जाना कि मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। यह अधिकार भारतीय संविधान के भाग-तीन में मूलभूत अधिकारों के नाम से वर्णित किए गए हैं और न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा 10 दिसंबर, 1948 में किया गया। मानवाधिकार पर सार्वभौम घोषणा का प्रारूप तैयार करने में भारत ने भी सक्रिय भागीदारी की। संयुक्त राष्ट्र के लिए घोषणा पत्र का मसौदा तैयार करने में भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने विशेष रूप से लैंगिक समानता को दर्शाने की ज़रूरत को उजागर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सभी देशों में मानव अधिकार लागू है। भारत में मानव अधिकारों की रक्षा के लिए जितना मानव अधिकार कार्यकर्ता सक्रिय है उतना ही समाज कार्य कार्यकर्ता भी सक्रिय है। सामाजिक कार्यकर्ता का उतरदायित्व होता है कि वह अपने सेवार्थी के मूलभूत अधिकारों से भी अवगत कराएं, ताकि सेवार्थी स्वयं अपनी समस्याओं से निपट सकें।

2.8 शब्दावली

सार्वभौमिक – मानव अधिकार प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं महत्व का आदर करते हैं। व्यक्ति किसी भी राष्ट्र का, किसी भी स्थान पर हो, उसे मानव अधिकार प्राप्त हैं।

घोषणा पत्र – मानव अधिकार दस्तावेजों के संदर्भ में उस प्रारूप और औपचारिक कथन को प्रस्तुत करता है, जिसमें सामान्य सिद्धांत और व्यापक दायित्व बताए जाते हैं।

अंतर्निहित – मनुष्य होने के नाते ही हर व्यक्ति इन अधिकारों को प्राप्त करने के योग्य है तथा जन्म लेते ही सभी मनुष्यों पर लागू होते हैं।

असंक्राम्य – मानव अधिकार किसी भी व्यक्ति से छीने नहीं जा सकते।

अविभाज्य – मानव अधिकार अविभाज्य हैं और किसी एक अधिकार को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। यह सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक के अधिकारों की बात करते समय हमे दूसरे समूह के अधिकारों के बारे में भी सोचना होगा।

अन्योन्याश्रित – एक अधिकार के उल्लंघन से दूसरे अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है।

गैर-श्रेणीबद्ध – मानव अधिकार में कोई एक अधिकार दूसरे अधिकार से ज़्यादा या कम महत्व का नहीं है।

सामाजिक समावेशन – मुख्यधारा समाज में सम्मिलित कर लेना, समान्यतः ऐसे अवसरों के द्वारा जो व्यक्तियों द्वारा स्वयं को सुधारने का मौका देते हैं।

2.9 बोध प्रश्न

1. मानव अधिकारों को परिभाषित करते हुए मानव अधिकार के महत्व पर चर्चा करें।
2. भारतीय संविधान में मानव अधिकारों की संरचना को कैसे देखा जा सकता हैं?

3. समाज कार्य का संबंध मानव अधिकारों से किस तरह जुड़ा हुआ है?
4. मानव अधिकारों की प्रासंगिकता पर अपने विचार व्यक्त करें।

2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

http://archive.india.gov.in/hindi/spotlight/spotlight_archive.php?id=69#mf2 से, 21 06 2016 को पुनर्प्राप्त

International human rights council. (दि.न.). http://manavadhikar.co.in/welcometo_humanrights.php से, 21 06 2016 को पुनर्प्राप्त

त्रिपाठी, प्रो० म. (2010). *भारत में मानवाधिकार*. नई दिल्ली : ओमेगा पब्लिकेशन्स .

आइफे, जे. (2001). *ह्यूमन राइट्स एंड सोशल वर्क*. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई – 3 हितकारी अर्थव्यवस्था और विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 हितकारी अर्थव्यवस्था
3.3 स्वास्थ्य, शिक्षा और महिला सशक्तीकरण
3.4 विकास की अवधारणा
3.5 आर्थिक विकास एवं सामाजिक अवसर
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 बोध प्रश्न
3.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) हितकारी अर्थव्यवस्था को परिभाषित कर सकेंगे।
2) विकास की अवधारणा को समझ सकेंगे।
3) स्वास्थ्य और शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तीकरण कैसे होता है यह समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र-राज्य के विकास के लिए जरूरी है कि उस राष्ट्र-राज्य की अर्थव्यवस्था हितकारी हो। भारत भी एक ऐसा देश है जहाँ ज़्यादा-से-ज़्यादा हितकारी अर्थव्यवस्थाएँ लागू की जाती हैं। हितकारी अर्थव्यवस्था, अर्थशास्त्र की ही एक शाखा के रूप में है। हितकारी अर्थव्यवस्था के तहत हम आर्थिक विकास के लिए देश के सभी नागरिकों के लिए समान अवसर प्रदान करने की कोशिश करते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में भी समाज के सभी वर्गों को ध्यान में रखते हुए नीतियाँ बनाई जाती हैं ताकि सबका विकास हो सकें। विशेषकर शिक्षा और स्वास्थ्य अच्छे राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक अंग होते हैं। अतः हितकारी अर्थव्यवस्था के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तीकरण भी ज़रूरी है।

3.2 हितकारी अर्थव्यवस्था

हितकारी अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र की एक शाखा के रूप में स्थापित है, जो किसी आर्थिक प्रणाली में संसाधनों के वितरण और कल्याण के मापन को दर्शाती है। यह अर्थव्यवस्था के भीतर दक्षता के आवंटन

और उससे संबद्ध आय वितरण के निर्धारण के लिए सूक्ष्म आर्थिक तकनीकों का उपयोग करती है। व्यक्ति समूह, समुदाय अथवा समाज की मौलिक इकाई के रूप में होता है अतः हितकारी अर्थशास्त्र सामाजिक विश्लेषण व्यक्तियों के आर्थिक क्रियाकलापों के संदर्भ में करती है। आर्थिक विश्लेषण की दो श्रेणियाँ होती है; पहली, सकारात्मक तथा दूसरी, मानकीय। सकारात्मक विश्लेषण हमेशा इस दिशा में कार्य करता है कि क्या उम्मीद है अथवा क्या की जा सकती है? जबकि नकारात्मक विश्लेषण इस बात पर ज़ोर देते हैं कि क्या उचित है अथवा क्या वांछनीय है हितकारी अर्थव्यवस्था बाद वाली श्रेणी में आती है और परिणामों की वांछनीयता को मापने और सामाजिक व्यवस्था प्राप्त करने की विधियों अथवा तकनीकों की जाँच करती है। यह एक अनुपयुक्त विज्ञान के रूप में है जो सकारात्मक अर्थव्यवस्था से स्थायी सैद्धांतिक संबंधों को एक अंत के संदर्भ में एकत्रित करता है, जो समाज का आर्थिक कल्याण है (रोटेनबर्ग, 1961) । यह जन नीति के लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है।

हितकारी अर्थव्यवस्था के दो पक्ष होते हैं; पहला, आर्थिक क्षमता और दूसरा, आय वितरण। आर्थिक क्षमता काफ़ी सकारात्मक होती है और हमेशा इस दिशा में कार्य करती है कि संसाधनों की वृद्धि कैसे की जाए? आय वितरण ज़्यादा मानकीय होता है और हमेशा इस दिशा में कार्य करता है कि संसाधनों का वितरण कैसे किया जाए? चूँकि अर्थव्यवस्था को व्यक्तियों द्वारा अपने लाभों अथवा हितों को बढ़ाने का विज्ञान माना जाता है, अतः हितकारी अर्थव्यवस्था हमेशा समस्या से सरोकार रखती है। अर्थव्यवस्था कब यह कह सकती है कि समाज किसी परिवर्तन के परिणाम स्वरूप बेहतर हुआ है? अथवा वैकल्पिक रूप से हम कब कह सकते हैं कि सामाजिक लाभ में वृद्धि हुई है अथवा वह बढ़ा हुआ है (रोथबर्ड, 1956) ।

पारंपरिक हितकारी अर्थव्यवस्था

किसी भी क्रिया की विवेचना समग्र उपयोगिता में उसके योगदान के संदर्भ में करनी चाहिए, जिसका अर्थ है उससे प्राप्त होने वाली संतुष्टि एवं खुशी। किसी भी नीति के लिए श्रेष्ठ मानक अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम खुशी प्रदान करता है। अतः सामाजिक इष्टतम अथवा अधिकतम सामाजिक कल्याण को संसाधनों के ऐसे आवंटन के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें व्यक्तिगत हितों का योग अधिकतम होता है। उपयोगितावादी अभिगम के साथ मुख्य समस्या उसका यह मानना था कि उपयोगिताओं को वास्तविक रूप में मापा जा सकता है। विल्फ़्रेडो परेटो ने इस अवधारणा का विरोध किया, क्योंकि उनका मानना था कि उपयोगिता महज विभिन्न उपभोग पूलों के बीच व्यक्तिगत प्राथमिकताओं का साधारण प्रदर्शन है। तत्पश्चात परेटो ने इष्टतम समाज कल्याण को मापने की तकनीक प्रस्तुत की, जिसे अब परेटो अनुकूलता के रूप में जाना जाता है।

परेटो अनुकूलता

अर्थशास्त्र के इतिहास में विलफ़्रेडो परेटो का नाम एक ऐसे विद्वान के रूप में दर्ज है, जिसने इस अनुशासन को पहले तो गणितीय और वैज्ञानिक आधार देने की भूमिका निभायी और फिर उसे ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अंतर्दृष्टियों से संपन्न करने के लिए काम किया। परेटो ने अमेरिका और कई यूरोपियन देशों में आय वितरण पर निगाह डाली और पाया कि विषमता की स्थिति एक पैटर्न के रूप में तकरीबन ऐसी ही है। इसलिए उन्होंने इसे नियम की संज्ञा दी। परेटो का मानना था कि विषमता इसी तरह जारी रहेगी, क्योंकि मालदार लोग अपने राजनीतिक रुतबे का फ़ायदा उठा कर वितरण के इस पैटर्न को बदलने ही नहीं देंगे। परेटो के इस नियम से बहुत विवाद पैदा हुआ, क्योंकि इसके साथ कई सामाजिक-राजनीतिक मुद्दे जुड़े हुए थे, जिन पर विचार करने से अर्थशास्त्री आम तौर पर कतराते रहते थे, लेकिन परेटो की इस खोज को आर्थिक विज्ञान में होने वाली एक महत्त्वपूर्ण प्रगति का दर्जा भी मिला। परेटो से पहले किसी अर्थशास्त्री ने दुनिया के बहुत से देशों की आमदनियों के आँकड़ों का विश्लेषण नहीं किया था।

ओर्डिनल उपयोगिता को कार्डिनल उपयोगिता पर प्राथमिकता दे कर परेटो ने अर्थशास्त्रियों से आग्रह किया कि वे उपभोक्ता से बहुत ज़्यादा अपेक्षाएँ न करें। कार्डिनल उपयोगिता के मुताबिक उपभोक्ता से न केवल यह उम्मीद की जाती थी कि वह एक वस्तु के ऊपर दूसरी को प्राथमिकता देना जानता होगा, बल्कि यह भी जानता होगा कि उस प्राथमिकता की मात्रा क्या होगी, जबकि ओर्डिनल उपयोगिता के सिद्धांत के अनुसार उपभोक्ता से केवल प्राथमिकता देने की आशा ही की जानी चाहिए थी। व्यवहार में कार्डिनल और ओर्डिनल उपयोगिता के बीच अंतर इस तरह समझा जा सकता है : अगर एक उपभोक्ता अनन्नास से ऊपर आम को प्राथमिकता देता है, तो उससे यह जानने की अपेक्षा करना ग़लत होगा कि वह आम को अनन्नास से दो सौ फ़ीसदी उपयोगी मानता है या डेढ़ सौ फ़ीसदी। उपभोक्ता का ख़रीद-व्यवहार ऐसी कोई सूचना नहीं देता। परेटो के इस आग्रह का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न लोगों द्वारा ग्रहण की जाने वाली उपयोगिता को नापना ज़रूरी नहीं रह गया। जेरेमी बेंथम और जेम्स स्टुअर्ट मिल द्वारा विकसित उपयोगितावाद का दर्शन में इस उलझन से ग्रस्त था। परेटो के सूत्रीकरण का नतीजा यह हुआ कि उपयोगिता नापने का पैमाना बनाने की कोशिशें ही रुक गईं। इसी तरह अंतर्वैयक्तिक संबंधों में भी उपयोगिता की तुलनाएँ करने का रवैया छोड़ दिया गया। यही काफ़ी समझा जाने लगा कि अगर दो व्यक्ति दो चीज़ों का विनिमय कर रहे हैं, तो वे जो दे रहे हैं उसके मुकाबले उनके लिए प्राप्त की जाने वाली चीज़ की उपयोगिता अधिक है। अगर ऐसा न होता तो वे यह विनिमय न करते ही क्यों। परेटो का तीसरा योगदान अनुकूलतम परिस्थिति के सिद्धांत के रूप में सामने आया। आर्थिक मामलों की अनुकूलतम स्थिति की खोज करते समय परेटो इस नतीजे पर पहुँचे कि कुछ आर्थिक परिणाम किसी भी तरीके से बेहतर नहीं किए जा सकते। अगर किसी एक व्यक्ति की स्थिति को बेहतर किया जाना है तो उसके लिए किसी दूसरे व्यक्ति की स्थिति को कमतर करना होगा। यानि कुल मिला कर स्थिति में कोई सुधार नहीं

होगा। परेटो का कहना था कि दो व्यक्ति तभी कोई लेन-देन करते हैं जब दोनों को फ़ायदे की उम्मीद हो। अगर लाभ किसी एक को ही होगा तो विनिमय होगा ही नहीं। ऐसी स्थिति के बावजूद अगर दबाव डाल कर वस्तुओं का पुनर्वितरण करने की कोशिश की जाएगी तो कुल मिला कर स्थिति में या आर्थिक प्रदर्शन में कोई सुधार नहीं होगा। इसलिए बाज़ार में मुक्त विनिमय की स्थिति ही अनुकूलतम कही जा सकती है।

3.3 स्वास्थ्य, शिक्षा और महिला सशक्तीकरण

कोई अर्थव्यवस्था तभी हितकारी हो सकती है जब स्वास्थ्य, शिक्षा और महिलाओं के सशक्तीकरण पर ध्यान दिया जाए। किसी भी राष्ट्र-राज्य को तभी हितकारी राष्ट्र राज्य कहा जा सकता है जब सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के जन प्रावधान को राष्ट्र-
राज्य की संरचना द्वारा चलाया जाए। स्वस्थ्य, शिक्षा और महिला सशक्तीकरण को हम निम्न आधारभूत अवधारणाओं के रूप में समझ सकते हैं-

स्वास्थ्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य रोग का न होना या अशक्तता मात्र नहीं है, बल्कि पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तंदुरुस्ती की स्थिति है।

पिछले कई वर्षों से इस परिभाषा का विस्तार हुआ, जिसमें सामाजिक व आर्थिक रूप से गुणकारी जीवन व्यतीत करने की क्षमता को सम्मिलित किया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रमुख तीन मापदंडों पर विचार किया है -

1. शारीरिक मापदंड - यह समझना बहुत सरल है कि शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिति संपूर्ण क्रिया-कलापों के विचार में निहित है। व्यक्ति में अच्छे स्वास्थ्य के संकेत हैं- अच्छा रंग, अच्छे बाल, चमकती आँखें, स्वच्छ त्वचा, अच्छी साँस, तंदुरुस्त शरीर, गाढ़ी नींद, अच्छी भूख, अच्छी पाचन शक्ति, सरल सहायक, शारीरिक गतिविधियाँ, शरीर के सभी अव्यव जो कि सामान्य आकार कार्य वाले हैं- संपूर्ण चेतना, नाड़ी की गति, रक्तचाप व सहनशीलता; ये सभी व्यक्ति की आयु व लिंग के अनुसार सामान्यता की स्थिति में आते हैं। यह सामान्यता की स्थिति एक विस्तृत सीमा लिए हुए है।

यह सामान्य स्थिति अप्रभावित स्वस्थ लोगों के (जो किसी भी बीमारी से पीड़ित नहीं हैं) निरीक्षण के पश्चात स्थापित की गई है।

2. मानसिक मापदंड - मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हैं। यह केवल मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति नहीं है। अच्छा मानसिक स्वास्थ्य जीवन के बहुत से अनुभवों को बताने की योग्यता रखता है। निम्न मानसिक स्वास्थ्य अच्छे शरीर को तो प्रभावित करता है; इसके अतिरिक्त मानसिक कारक भी विचारपूर्ण है जो कि अति-रक्तचाप, अस्थमा, शारीरिक अव्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

3. सामाजिक मापदंड – एक व्यक्ति के लिए अपने इतर अन्य के प्रति अच्छी व्यवहार कुशलता सौहार्दपूर्ण विकास हेतु आवश्यक है। एक समुदाय का सामाजिक स्वास्थ्य उन्नति, चिंतन, विचारों और दूसरों के प्रति सहानुभूति जैसे कारकों पर निर्भर करता

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर हम समझ सकते हैं कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, 'स्वास्थ्य'का अर्थ किसी बीमारी या कमज़ोरी का न होना मात्र नहीं है । यह शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ्य होने का नाम है। स्वास्थ्य प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत जरूरत एवं मौलिक अधिकार है ।

शिक्षा

अच्छे राष्ट्र-राज्य के लिए नागरिकों का स्वास्थ्य जितना ज़रूरी है उतना ही जरूरी है नागरिकों का शिक्षित होना। शिक्षा को लेकर कई विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त गए हैं, जिनमें से कुछ विद्वानों के विचार निम्नलिखित है-

फ्राबेल के अनुसार, "शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक बालक अपनी शक्तियों का विकास करता है।"

स्वामी विवेकानंद के अनुसार, "मनुष्य में अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।"

महात्मा गांधी के अनुसार, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक या मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क या आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम विकास से है।"

अरस्तु के अनुसार, "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण करना ही शिक्षा है।"

पेस्टालोजी के अनुसार, "मानव की आंतरिक शक्तियों का स्वाभाविक व सामंजस्यपूर्ण प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।"

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार, "शिक्षा से तात्पर्य अंतर्निहित शक्तियों तथा बाह्य जगत के मध्य समन्वय स्थापित करना है।"

ज्ञान शांति मैत्री

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते है कि शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है, जिससे वह अपने समाज का विकास करता है। एक अच्छे देश का विकास तभी संभव होगा जब उस देश के लोगों का शैक्षणिक विकास हो।

महिला सशक्तीकरण

महिला सशक्तीकरण की जब भी बात की जाती है, तब सिर्फ राजनीतिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण पर चर्चा होती है, पर सामाजिक सशक्तीकरण की चर्चा नहीं होती। ऐतिहासिक रूप से महिलाओं को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है। उन्हें सिर्फ पुरुषों से ही नहीं, बल्कि जातीय संरचना में भी सबसे पीछे रखा गया है। इन परिस्थितियों में उन्हें राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने की बात बेमानी लगती है, भले ही उन्हें कई कानूनी अधिकार मिल चुके हैं। महिलाओं का जब तक सामाजिक सशक्तीकरण नहीं

होगा, तब तक वह अपने क़ानूनी अधिकारों का समुचित उपयोग नहीं कर सकेंगी। सामाजिक अधिकार या समानता एक जटिल प्रक्रिया है, कई प्रतिगामी ताकतें सामाजिक यथास्थितिवाद को बढ़ावा देती हैं और कभी-कभी तो वह सामाजिक विकास को पीछे धकेलती हैं। प्रश्न यह है कि सामाजिक सशक्तीकरण का ज़रिया क्या हो सकता हैं? इसका जवाब बहुत ही सरल, पर लक्ष्य कठिन है। शिक्षण और कौशल एक ऐसा कारगर हथियार है, जो सामाजिक विकास की गति को तेज़ करता है। समानता, स्वतंत्रता के साथ-साथ शिक्षित व्यक्ति अपने क़ानूनी अधिकारों का बेहतर उपयोग भी करता है और राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त भी होता है। महिलाओं को ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से वंचित रखने का षडयंत्र भी इसलिए किया गया कि न वह शिक्षित होंगी और न ही वह अपने अधिकारों की माँग करेंगी, यानि, उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक बनाए रखने में सहुलियत होगी। इसी वजह से महिलाओं में शिक्षण और कौशल का प्रतिशत बहुत ही कम है। हाल के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं स्वाभाविक सामाजिक विकास के कारण शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जिस कारण बालिका शिक्षा को परे रखना संभव नहीं रहा है। इसके बावजूद सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से शिक्षा को किसी ने प्राथमिकता सूची में पहले पायदान पर रखकर इसके लिए विशेष प्रयास नहीं किया। कई सरकारी एवं गैर सरकारी आँकड़ें यह दर्शाते हैं कि महिला साक्षरता दर बहुत ही कम है और उनके लिए प्राथमिक स्तर पर अभी भी विषम परिस्थितियाँ क़ायम हैं। 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज व्यवस्था के तहत निर्वाचित स्थानीय प्रतिनिधियों ने भी पिछले 10-15 वर्षों में शिक्षा के लिए उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। सामान्य तौर पर ऐसा देखने में आया है कि पुरुष पंचायत प्रतिनिधियों ने निर्माण कार्यों पर ज़ोर दिया, क्योंकि इसमें भ्रष्टाचार की संभावनाएं होती हैं। शुरुआती दौर में महिला पंचायत प्रतिनिधियों ने भी कठपुतली की तरह पुरुषों के इशारे एवं दबाव में उनकी मर्जी के खिलाफ अलग कार्य नहीं किया। आज भी अधिकांश जगहों पर महिला पंच-सरपंच मुखर तो हुई हैं, पर सामाजिक मुद्दों के प्रति उनमें अभी भी उदासीनता है। इसके बावजूद महिला पंचों एवं सरपंचों से ही सामाजिक मुद्दों पर कार्य करने की अपेक्षा की जा रही है, क्योंकि सामाजिक सशक्तीकरण के लिहाज से यह उनके लिए भी जरूरी है। स्त्री विमर्श के तमाम आंदोलनों व स्वयं स्त्री के संघर्षों के फलस्वरूप आज स्त्रियों ने संवैधानिक तौर पर स्वतंत्रता और समानता का अधिकार पाते हुए व्यक्ति की अस्मिता की तरफ मज़बूती से कदम बढ़ाया हैं। लेकिन कागजी अधिकारों को व्यावहारिक रूप देने में यही पुरुष समाज व्यवस्था बाधा बन रही है, जहाँ इन अधिकारों को वह अपने हाथ में लेकर एक अंश ही स्त्री को देता है। अभी हमारे समाज में जो पीढ़ी है कम-से-कम उससे तो हम व्यक्ति की अस्मिता को पूर्णतः स्वीकार करने की उम्मीद नहीं कर सकते हैं; चाहे वे शिक्षित ही क्यों न हों, क्योंकि उनकी वर्षों की पुरानी मानसिकता को नहीं बदला जा सकता है, जो कि पुरुष-सत्तात्मक समाज में गढ़ी गई है। अतः महिला सशक्तीकरण के लिए जरूरी है, महिलाओं का अच्छा स्वास्थ्य एवं उनके लिए अच्छी शिक्षा।

3.4 विकास की परिभाषा

विकास को परिभाषित करते हुए विश्व बैंक ने बड़ी विस्तृत चर्चा की है। विश्व के सभी देशों को तीन भागों में बाँटा गया है। विकसित, विकासशील एवं अविकसित देश। किसी भी राष्ट्र को विकसित राष्ट्र का दर्जा हासिल करने के लिए कई मानकों पर खरा उतरना पड़ता है। प्रथम है- आर्थिक प्रगति, प्रति व्यक्ति आय में लंबे समय तक वृद्धि होनी चाहिए तथा गरीबी में निरंतर गिरावट आनी चाहिए। निजी क्षेत्र, खासकर निजी उद्योगों को युवाओं के लिए रोज़गार के अवसर पैदा करने के लिए मुख्य भूमिका निभानी होती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, पानी जैसी आधारभूत सुविधाएँ सभी नागरिकों को सामान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। यही नहीं शिक्षा और स्वास्थ्य में प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत समय और धन निवेश करने की क्षमता होनी चाहिए। हर नागरिक की भागीदारी होनी चाहिए, उन निर्णयों में जो उसके जीवन को प्रभावित करते हैं। सुशासन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, विकसित देश होने के लिए जहाँ का प्रशासन सक्रिय हो, सरकारी और निजी क्षेत्रों में उचित सामंजस्य हो, कानून व्यवस्था का शासन हो, सामाजिक सुरक्षा हो। विकास को लेकर देश की अपनी स्वयं की एक योजनाबद्ध रूपरेखा होनी चाहिए।

विज्ञान और तकनीक में प्रगति के बिना विकास के सपने देखना बेमानी हैं। भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश को आर्थिक प्रगति करने के लिए उद्योग और कृषि के क्षेत्र में उन्नत तकनीक चाहिए। विज्ञान की मदद से तकनीक आधुनिक होती है। खोजों तथा प्रयोगशालाओं में निवेश से विज्ञान में विकास होता है। इन खोजों के लिए युवाओं को उच्च शिक्षा के अवसर चाहिए। स्पष्ट है कि किसी भी देश का विकास तभी संभव है, जब उस देश के प्रत्येक नागरिक स्वस्थ्य और शिक्षित हो और ये हितकारी अर्थव्यवस्था के तहत ही संभव है।

3.5 आर्थिक विकास एवं सामाजिक अवसर

किसी भी देश, क्षेत्र या व्यक्तियों की आर्थिक समृद्धि के वृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं। नीति निर्माण की दृष्टि से आर्थिक विकास उन सभी प्रयत्नों को कहते हैं, जिनका लक्ष्य किसी जन-समुदाय की आर्थिक स्थिति व जीवन-स्तर के सुधार के लिए अपनाये जाते हैं। आइन लिटिल ने विकास अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि विकास अर्थशास्त्र मोटे तौर पर एडम स्मिथ से जॉन स्टुअर्ट मिल तक के प्रतिष्ठित विचारों सहित प्रति व्यक्ति आय की संवृद्धि से जुड़े समस्त चिंतन का सार-संग्रह है। यहाँ विकास निश्चित रूप से आय की वृद्धि पर ही केन्द्रित हो गया है। हाल के वर्षों में आर्थिक विकासशास्त्र भी विकास क्रम के स्वरूप के व्यापकीकरण की ओर अग्रसर हुआ है। आर्थिक विकास के तहत आमतौर पर समझा जाता है, विकास के रूप में अच्छी तरह से अर्थव्यवस्था (जीडीपी, सकल घरेलू उत्पाद, या एल.पी.) में वास्तविक आय के वृद्धि में व्यक्ति इस आँकड़ा से अलग हो सकता है। विकास और प्रति व्यक्ति आय, यह स्तर और गतिशीलता को दर्शाता है। अक्सर आर्थिक विकास के कारकों को आर्थिक वृद्धि के प्रकार के अनुसार वर्गीकृत किया गया। बाधाओं के रूप में आर्थिक विकास, अक्सर, संसाधन और पर्यावरण

संबंधी बाधाओं के रूप में सामाजिक उत्पादन की वृद्धि के साथ जुड़े लागत, साथ-ही-साथ की एक विस्तृत श्रृंखला सरकार के अकुशल आर्थिक नीतियों को दर्शाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि अंततः हमें विभिन्न नीतियों का मूल्यांकन इसी आधार पर करना होगा कि क्या उनसे जनसामान्य को सुलभ योग्यताओं का संवर्धन हो रहा है अथवा नहीं। यह दृष्टिकोण उस विचार से बिलकुल भिन्न है, जिसमें आर्थिक आय की संवृद्धि को ही महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत तथा अन्य अनेक देशों में आजकल नौकरशाही हस्तक्षेप से मुक्त बाजार अवसरों के संवर्धन की नीतियों में दिए जा रहे तर्क मुख्यतः आर्थिक प्रसार अथवा देश में उत्पादन एवं आय को बढ़ाने से ही जुड़े हैं। दूसरी ओर उत्पादन और आय पर ध्यान देने का औचित्य ही इस बात पर आधारित रहता है कि इनकी संवृद्धि से व्यक्ति की वांछित जीवन-यापन की स्वतंत्रता का संवर्धन होता है। आर्थिक विकास के विश्लेषण में इन दोनों कारणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यही नहीं, उन नीतियों एवं संस्थागत परिवर्तनों पर भी गौर होना चाहिए, जिनसे मानवीय योग्यताएँ बढ़ती हैं। विकास कार्यक्रम की सफलता का मानदंड केवल उत्पादन एवं आय की वृद्धि नहीं हो सकता, इसमें तो लोगों के सहज जीवन-यापन स्तर पर बल दिया जाना चाहिए। विश्व में किसी भी देश में विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन की भाँति ही यह कथन भारत जैसे देश में चल रहे आर्थिक सुधारों एवं नीतियों के मूल्यांकन-विश्लेषण पर भी समान रूप से लागू होगा।

3.6 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने यह समझा कि हितकारी अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र की एक शाखा के रूप में स्थापित है जो किसी आर्थिक प्रणाली में संसाधनों के वितरण और कल्याण के मापन को दर्शाती है। हितकारी अर्थव्यवस्था के दो पक्ष होते हैं; पहला, आर्थिक क्षमता और दूसरा, आय वितरण। आर्थिक क्षमता काफ़ी सकारात्मक होती है और हमेशा इस दिशा में कार्य करती है कि संसाधनों की वृद्धि कैसे की जाए? आय वितरण ज़्यादा मानकीय होता है और हमेशा इस दिशा में कार्य करता है कि संसाधनों का वितरण कैसे किया जाए? तत्पश्चात हमने परेटो के अनुकूलता के सिद्धांतों के तहत यह जाना कि एक आवंटन से दूसरे में गति जिससे कम-से-कम एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को विपन्न गए बिना संपन्न हो सकता है। इसके बाद हमने यह समझने की कोशिश की कि कोई अर्थव्यवस्था तभी हितकारी हो सकती है जब स्वास्थ्य, शिक्षा और महिलाओं के सशक्तीकरण पर ध्यान दिया जाए। साथ ही आर्थिक विकास में सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान किया जाए तो देश में आर्थिक विकास होगा।

3.7 शब्दावली

अर्थव्यवस्था- उत्पादन, वितरण एवं खपत की सामाजिक व्यवस्था को अर्थव्यवस्था कहते हैं।

हितकारी अर्थव्यवस्था- हितकारी अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र की एक शाखा के रूप में स्थापित है, जो किसी आर्थिक प्रणाली में संसाधनों के वितरण और कल्याण के मापन को दर्शाती है। यह अर्थव्यवस्था

के भीतर दक्षता के आवंटन और उससे संबद्ध आय वितरण के निर्धारण के लिए सूक्ष्म आर्थिक तकनीकों का उपयोग करती है।

परेटो सुधार- एक आवंटन से दूसरे आवंटन में गति जिससे कम-से-कम एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को विपन्न गए बिना संपन्न हो सकता है, परेटो सुधार कहलाता है।

आर्थिक विकास-किसी भी देश, क्षेत्र या व्यक्तिओं की आर्थिक समृद्धि के वृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।

3.8 बोध प्रश्न

1. हितकारी अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. शिक्षा एवं स्वास्थ्य महिला सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है। समझाएँ।
3. विकास की अवधारणा को समझाएँ।
4. आर्थिक विकास के लिए समान अवसर सबके लिए जरूरी क्यों हैं?

3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

wikipedia. (दि.न.). https://hi.wikipedia.org/wiki/विलफ्रेडो_परेटो से, 25 06 2016 को पुनर्प्राप्त

सेन, अ,द्रीज, ज्या. (2010). *भारत विकास की दिशाएँ* . दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज .

बागड़ी,डा. (2009). *भारतीय अर्थव्यवस्था* . नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग .

सिंह, सु०,मिश्रा, पी०डी०. (2010). *समाज कार्य: इतिहास, दर्शन एवं प्रणालियाँ* . लखनऊ: न्यूरॉयल बूक कम्पनी .

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई – 4 भारतीय न्यायिक प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 भारतीय न्यायिक प्रणाली एवं इसके स्रोत
4.3 भारतीय कानून
4.4 न्यायपालिका का संगठन
4.5 दीवानी/सिविल प्रक्रिया
4.6 दांडिक प्रक्रिया
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1) भारतीय न्यायिक प्रणाली को समझ सकेंगे।
2) कानून/ विधि के मुख्य स्रोतों से अवगत हो सकेंगे।
3) किस प्रकार न्यायिक तंत्र विभिन्न स्तरों पर संरचित और आयोजित होती है, का विश्लेषण कर सकेंगे।
4) एफ़. आई. आर. संबंधी अधिकारों को समझ सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

4.1 प्रस्तावना

भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्र के लोगों की रक्षा अथवा सुरक्षा के लिए कुछ नियम व क़ानून बनाए गए हैं, जिसके तहत लोगों की रक्षा सुरक्षा मिलता है। भारतीय संविधान द्वारा नियमों व विधियों को लागू करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया को अपनाया गया है, जिसके तहत न्यायाधीशों और न्यायालयों की स्थापना की गई है। भारतीय न्यायिक व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष स्थान पर है उसके बाद प्रत्येक राज्य के लिए उच्च न्यायालय है। न्यायालय के अधीन अनेक जिला न्यायालय और कचहरियाँ सम्मिलित हैं। भारत में अधिकतम जनसंख्या गाँवों में निवास करता है अतः वे पंचायतों के न्यायिक क्षेत्र में आती है।

भारतीय दंड संहिता द्वारा अपराधियों को, किसी जाति व धर्म से प्रभावित हुए सजा तय की जाती है, जो कि भारतीय न्यायिक प्रणाली की विशेषता है।

4.2 भारतीय न्यायिक प्रणाली एवं इसके स्रोत

उच्च न्यायालय, जिला न्यायालय के साथ, जो उनके अधीनस्थ होते हैं, वे राज्य के प्रमुख दीवानी न्यायालय होते हैं। हालांकि उच्च न्यायालय केवल उन्हीं मामलों में दीवानी और फौजदारी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं, जिनमें उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय सक्षम (विधि द्वारा अधिकृत नहीं) न हो। उच्च न्यायालय कुछ मामलों में मूल अधिकार भी रखते हैं, जो राज्य या संघीय कानून में विशेष रूप से नामित होते हैं। हालाँकि, मुख्य रूप से उच्च न्यायालयों के काम निचली अदालतों की अपील और रिट याचिका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत होता है। रिट याचिका उच्च न्यायालय का मूल विधि क्षेत्र भी है। प्रत्येक राज्य न्यायिक जिलों में विभाजित होता है, जहाँ एक जिला और सत्र न्यायाधीश होता है। उसे जिला न्यायाधीश माना जाता है, जब वह नागरिक मामलों की सुनवाई करता है और सत्र न्यायाधीश माना जाता है जब वह आपराधिक मामलों की सुनवाई करता है। उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के बाद सर्वोच्च न्यायिक अधिकार होते हैं। उसके नीचे नागरिक अधिकार के विभिन्न न्यायालय होते हैं, जिन्हें विभिन्न राज्यों में अलग-अलग नामों से जाना जाता हैं। भारतीय न्यायिक प्रणाली को निम्न स्रोतों के रूप में देखा जाता है-

भारतीय संविधान

भारत राज्यों का एक संघ है। यह संसदीय प्रणाली की सरकार वाला एक स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। यह गणराज्य भारत के संविधान के अनुसार शासित है, जिसे संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर 1949 को ग्रहण किया गया तथा 26 जनवरी 1950 से लागू हुआ। संविधान में सरकार के संसदीय स्वरूप की व्यवस्था की गई है जिसकी संरचना कतिपय एकात्मक विशिष्टताओं सहित संघीय हो। केंद्रीय कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख राष्ट्रपति होता है। भारत के संविधान की धारा 79 के अनुसार, केंद्रीय संसद की परिषद में राष्ट्रपति तथा दो सदन है जिन्हें राज्यों की परिषद (राज्य सभा) तथा लोगों का सदन (लोक सभा) के नाम से जाना जाता है। संविधान की धारा 74 (1) में यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति की सहायता करने तथा उसे सलाह देने के लिए एक मंत्री परिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा, राष्ट्रपति सलाह के अनुसार अपने कार्यों का निष्पादन करेंगे। इस प्रकार वास्तविक कार्यकारी शक्ति मंत्रिपरिषद में निहित है जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री है।

मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोगों के सदन (लोक सभा) के प्रति उत्तरदायी है। प्रत्येक राज्य में एक विधान सभा होता है। कुछ राज्यों में एक ऊपरी सदन है जिसे राज्य विधान परिषद कहा जाता है। प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल होता है जो उस राज्य का प्रमुख होता है। मंत्रिपरिषद, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है,

राज्यपाल को उसके कार्यकारी कार्यों के निष्पादन में सलाह देती है। राज्य की मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से राज्य की विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है।

संघ कार्यपालिका

संघ कार्यपालिका का अध्यक्ष भारत का राष्ट्रपति होता है, जो राष्ट्र द्वारा नामित अध्यक्ष होता है। वास्तविक अधिकार मंत्रियों की संघीय परिषद में निहित होते हैं, जिनका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। राष्ट्रपति का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है, जिसमें संसद के दोनों सदनों के चयनित सदस्य, समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार राज्यों में विधान सभा के सदस्दयों के द्वारा एकल अंतरणीय मत द्वारा होता है। राज्यों के बीच परस्पर एकरूपता लाने के लिए तथा संपूर्ण रूप से राज्यों और केंद्र के बीच संगतता लाने के लिए प्रत्येक मत को उचित महत्व दिया जाता है। राष्ट्रपति को भारत का नागरिक होना आवश्यक है, उनकी आयु 35 वर्ष से कम न हो और वह लोक सभा के सदस्य के रूप में चुने जाने के योग्य हो। उनके कार्य की अवधि पांच वर्ष की होती है और वह पुनर्निवाचन के लिए पात्र होता है। उन्हें पद से हटाने की प्रक्रिया संविधान की धारा 61 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार होती है। वह अपने हाथ से उप-राष्ट्रपति को अपने पद से इस्तीफा देने के लिए संबोधन करते हुए पत्र लिख सकते हैं।

संघ अथवा केंद्र विधानमंडल

संघ अथवा विधानमंडल (संसद) भारत का सर्वोच्च विधायी निकाय है। संसद की व्यवस्था द्विसदनीय है। भारतीय संसद में राष्ट्रपति तथा दो सदन- लोकसभा (लोगों का सदन) एवं राज्यसभा (राज्यों की परिषद) होते हैं। राष्ट्रपति के पास संसद के दोनों में से किसी भी सदन को बुलाने या स्थगित करने अथवा लोकसभा को भंग करने की शक्ति है। भारतीय संसद का संचालन 'संसद भवन' में होता है, जो कि नई दिल्ली में स्थित है। लोक सभा में राष्ट्र की जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं, जिनकी अधिकतम संख्या 552 है। राज्य सभा एक स्थायी सदन है, जिसमें सदस्य संख्या 250 है। राज्या सभा के सदस्यों का निर्वाचन/ मनोनयन 6 वर्ष के लिए होता है, जिसके 1/3 सदस्य प्रत्येक 2 वर्ष में सेवानिवृत्त होते हैं।

राज्य कार्यपालिका

राज्य की संवैधानिक संरचना ज़्यादातर केंद्र जैसी ही होती है। प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति राज्य के राज्यपाल के पास होती है। प्रत्येक राज्यों में राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मंत्रियों की केंद्रीय परिषद की सलाह से की जाती है। राज्यपाल की नियुक्ति 5 वर्षों के लिए की जाती है, लेकिन राष्ट्रपति चाहे तो किसी भी समय राज्यपाल को पदच्युत कर सकते हैं। राज्यपाल राज्य के मंत्रियों की परिषद की सलाह पर कार्य करता है, जिसका अध्यक्ष राज्य का मुख्यमंत्री होता है।

राज्य विधानमंडल

संविधान के अनुच्छेद 168 (अध्याय-III) के अंतर्गत प्रत्येक राज्य हेतु एक विधानमंडल की व्यवस्था की गई है। इसी अनुच्छेद के अनुसार राज्य विधान मंडल में राज्यपाल के अतिरिक्त विधान मंडल के एक या दोनों सदन शामिल हैं। इसी अनुच्छेद के अनुसार बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और आंध्र

प्रदेश में द्वि-सदनीय विधान मंडल और शेष राज्यों में एक-सदनीय विधान मंडल की व्यवस्था है। जम्मू-कश्मीर राज्य में भी विधान परिषद है, परंतु इसकी व्यवस्था भारतीय संविधान द्वारा नहीं, जम्मू-कश्मीर राज्य के अपने संविधान द्वारा की गई है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जम्मू-कश्मीर का अपना एक पृथक् संविधान है। जिन राज्यों में दो सदन हैं वहां एक की विधान सभा तथा दूसरे को विधान परिषद कहते हैं। जिन राज्यों में एक सदन है उसका नाम विधान सभा है।

वैधानिक अधिकारों का अधिकार

संविधान द्वारा वैधानिक अधिकारों की ऐसी संरचना की गई है, जिसमें प्रत्येक अधिकारी अथवा संस्थान के अधिकारों पर नियंत्रण अथवा संतुलन संविधान द्वारा रखा गया है। केंद्र और राज्यों के बीच वैधानिक अधिकारों का विभाजन संविधान के विशेष गुण के रूप में देखा जा सकता है। केंद्र विधानमंडल के

वैधानिक अधिकार केंद्र सूची और सातवें शेड्यूल की सहवर्ती सूची में बताए गए, जो सभी मामलों के लिए विस्तारित हैं। इसके अवशेषी वैधानिक अधिकार भी हैं। केंद्र अथवा राज्यों के वैधानिक अधिनियमों को अक्सर इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि अधिनियम वैधानिक संस्था की वैधानिक क्षमता से परे है, जिसका निर्धारण फिर उच्चतर न्यायपालिका से किया जाता है।

4.3 भारतीय कानून

भारतीय संविधान में सभी को व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं जीवन की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया है। संविधान में सभी को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, ताकि नागरिकों का हित स्वैच्छिक निर्णयों से प्रभावित नहीं हो। भारतीय कानून के दो स्रोत हैं-

प्राथमिक स्रोत

संसद द्वारा अथवा विधानमंडल द्वारा पारित कानून भारतीय कानून का प्राथमिक स्रोत है। इसके अलावा जब संसद अथवा राज्य विधानमंडल का सत्र नहीं चल रहा होता है, तब राष्ट्रपति और राज्यपाल के पास अध्यादेशों को जारी करने का सीमित अधिकार भी होता है। ये अध्यादेश संसद अथवा राज्य विधानमंडल के पुनः आरंभ होने क छह सप्ताह के भीतर अमान्य हो जाते हैं। इन कानूनों को बाद में अधिकारिक गजैट में प्रकाशित किया जाता है। ज़्यादातर नियम अधिकारियों को क़ानून के नियम और नियमन बनाने का कार्य सौपते हैं। ये नियम और नियमन आवर्ती रूप से विधानमंडल के समक्ष रखे जाते हैं।

द्वितीय स्रोत

सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय और कुछ विशेषीकृत न्यायाधिकरणों के निर्णय, कानून के द्वितीय स्रोत होते हैं। इन संस्थानों के निर्णय न सिर्फ पक्षों के बीच कानूनी और वास्तविक मुद्दों का निर्धारण करती

हैं, बल्कि इस प्रक्रिया में कानून की व्याख्या भी करते हैं। संविधान द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्मित कानून भारत के सभी न्यायालयों में लागू होंगे। सर्वोच्च न्यायालय अपने अधिकारों का उपयोग उन न्यायिक प्रक्रिया में करता है, जो पारंपरिक रूप से पाएं जाते हैं, जैसे न्यायालय कानून की व्याख्या करते हैं, नए कानून नहीं बना सकते। उच्च न्यायालय का निर्णय जरूरी नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय पर लागू हो, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय सभी उच्च न्यायालयों पर लागू होते हैं।

4.4 न्यायपालिका का संगठन

भारत की न्यायपालिका एकीकृत प्रकार की है, जिसके शीर्ष पर उच्चतम न्यायालय स्थापित है। उच्चतम न्यायालय को अंतिम न्याय-निर्णयन का अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक राज्य या कुछ समूह पर उच्च न्यायालय गठित है। उच्च न्यायालय के तहत श्रेणीबद्ध अधीनस्थ न्यायालय हैं। कुछ राज्यों में पंचायत न्यायालय का भी गठन किया गया है। ये न्यायालय अलग-अलग नामों जैसे–न्याय पंचायत, पंचायत अदालत, ग्राम कचहरी आदि के नाम से काम करते हैं। प्रत्येक राज्य में ज़िला स्तरों पर ज़िला न्यायालय स्थापित किए गए हैं। इसके अध्यक्ष ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश होते हैं, जो ज़िले का सर्वोच्च न्यायिक अधिकारी होता है। ज़िला न्यायालय मूल अधिकार क्षेत्र के प्रमुख दीवानी न्यायालय होते हैं। इन न्यायालयों में मृत्युदंड दिए जा सकने वाले अपराधों तक की सुनवाई होती है। इसके अधीन दीवानी न्यायालय होता है, जिसे विभिन्न राज्यों में मुंसिफ़ न्यायालय कहा जाता है। फ़ौजदारी न्यायालयों में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट होते हैं। इनके अतिरिक्त देश में विभिन्न अधिकरण तथा आयोग भी स्थापित किए गए हैं, जो पारंपारिक न्यायालय भले ही न हों, परंतु वे विधिक प्रक्रिया द्वारा अनेक विवादों को हल करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

ज्ञान शांति मैत्री

उच्चतम न्यायालय

देश के उच्चतम न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश को मिलाकर कुल 26 न्यायाधीश होते हैं। ये न्यायाधीश 65 वर्ष की उम्र तक अपने पद पर रहते हैं। उच्चतम न्यायालय का मूल कार्यक्षेत्र उन मामलों में हैं, जिनका विवाद -

1) केंद्र सरकार और किसी एक या कई राज्यों के बीच हो या
2) एक ओर केंद्र सरकार और कोई एक या कई राज्य तथा दूसरी ओर एक या कई राज्यों के बीच हो अथवा
3) दो या कई राज्यों के बीच हो।

देश के किसी उच्च न्यायालय के किसी निर्णय या अंतिम आदेश पर उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है, चाहे वह दीवानी, आपराधिक या अन्य प्रकार का मामला हो।

उच्च न्यायालय

उच्च न्यायालय, राज्य न्यायिक प्रशासन का प्रमुख होता है। देश में 21 उच्च न्यायालय हैं, जिनमें से तीन के कार्यक्षेत्र एक राज्य से ज़्यादा है। दिल्ली एकमात्र ऐसा केंद्र शासित प्रदेश है, जिसके पास उच्च न्यायालय है। अन्य छह केंद्र शासित प्रदेश विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के तहत आते हैं। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और कई न्यायाधीश होते हैं। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति देश के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। उच्च न्यायालयों के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्त प्रक्रिया वही है सिवाय इस बात के कि न्यायाधीशों के नियुक्ति की सिफारिश संबद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश करते हैं। ये 62 वर्ष की उम्र तक अपने पद पर रहते हैं। न्यायाधीश बनने की अर्हता यह है कि उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, देश में किसी न्यायिक पद पर दस वर्ष का अनुभव होना चाहिए या वह किसी उच्च न्यायालय या इस श्रेणी की दो अदालतों में इतने समय तक वकील के रूप में प्रैक्टिस कर चुका हो। प्रत्येक उच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों की रक्षा करने के लिए या किसी अन्य उद्देश्य से अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत किसी व्यक्ति या किसी प्राधिकार या सरकार के लिए निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार है। यह रिट बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के रूप में भी हो सकता है। कोई भी उच्च न्यायालय अपने इस अधिकार का उपयोग उस मामले या घटना में भी कर सकता है, जो उसके कार्यक्षेत्र में घटित हुई हो, लेकिन उसमें संलिप्त व्यक्ति या सरकारी प्राधिकरण उस क्षेत्र के बाहर के हों। विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों और अतिरिक्त न्यायाधीशों की स्वीकृत संख्या 678 है लेकिन 26 जून 2006 की स्थिति के अनुसार इनमें से 587 न्यायाधीश अपने-अपने पद पर कार्यरत थे।

राष्ट्रीय कर ट्रिब्यूनल

ज्ञान शांति मैत्री

विभिन्न अदालतों में याचिकाओं और मुकदमों की बढ़ती संख्या की वजह से कई मामले वर्षों तक लंबित पड़े रहते हैं। इसलिए एक राष्ट्रीय कर ट्रिब्यूनल के गठन का प्रस्ताव सरकार के समक्ष रखा गया है। यह ट्रिब्यूनल अदालतों में लंबित पड़ी कर से संबंधित सभी मामलों की सुनवाई कर यथाशिघ्र इनका निपटारा करेगा। इसके दायरे में आयकर और सीमा शुल्क व सेवा कर से संबंधित मामले आएंगे।

राष्ट्रीय कर ट्रिब्यूनल अधिनियम, 2005 को 21 दिसंबर 2005 के गजट में भी प्रकाशित कर दिया गया था। हालांकि बाद से इसे देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों में चुनौती भी दी गई थी। इस मसले से संबंधित

सभी याचिकाओं की एक सम्मिलित याचिका को उच्चतम न्यायालय में भी दायर किया गया, जिसके बाद न्यायालय ने एक आदेश जारी कर सरकार से इस बिल संसोधन पर दोबारा विचार करने के लिए कहा। अदालत के आदेश के बाद सरकार ने इसे 29 जनवरी 2007 को प्रख्यापित किया और अध्यादेश

में बदल दिया। हालांकि याचिका का स्थानानतरण अभी भी माननीय उच्चतम न्यायालय समक्ष विचाराधीन है।

निचली अदालतें

देश भर में निचली अदालतों का कामकाज और उसका ढाँचा लगभग एक जैसा है। अदालतों का दर्जा इनके कामकाज को निर्धारित करता है। ये अदालतें अपने अधिकारों के आधार पर सभी प्रकार के दीवानी और आपराधिक मामलों का निपटारा करती हैं। ये अदालतें नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 और अपराध प्रक्रिया संहिता, 1973 के आधार पर कार्य करती हैं। अदालतों को इन संहिताओं में उल्लिखित प्रक्रियाओं के आधार पर निर्णय लेना होता हैं। इन्हें स्थानीय कानूनों का भी ध्यान रखना होता है। ऑल इंडिया जजेस एसोसिएशन के मामले डब्ल्यू.पी (सिविल) 1022/1989 में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश के अनुसार देश भर में निचली अदालतों में न्यायिक अधिकारियों के पदों में एकरूपता रखी गई है। सीआर. पीसी के तहत, दीवानी मामलों के लिए जिला एवं अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सिविल जज (सीनियर डिविजन) और सिविल जज (जूनियर डिविजन) होते हैं, जबकि आपराधिक मामलों के लिए सत्र न्यायाधीश, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायिक मजिस्ट्रेट आदि होते हैं। अगर आवश्यक हो तो सभी राज्य सरकारों/केंद्र शासित प्रदेशों के प्रशासन इन श्रेणियों के समान श्रेणियों के माध्यम से वर्तमान पदों में कोई उपयुक्त नियोजन कर सकते हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुसार, अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं के सदस्यों पर प्रशासनिक नियंत्रण उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आता है। अनुच्छेद 233 और 234 के साथ अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत, प्रदत अधिकारों के संदर्भ में, राज्य सरकारें उच्च न्यायालय के साथ परामर्श के बाद इन राज्यों के लिए नियम और विनियम बनाएगी। राज्य न्यायिक सेवाओं के सदस्य इन नियमों और विनियमों द्वारा शासित होंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

लोक अदालतें

लोक अदालत ऐसा मंच है, जहाँ विवादों/अदालत में लंबित मामलों या दायर गए जाने से पहले ही वादों का सदभावनापूर्ण ढंग से निपटारा किया जाता है। लोक अदालतों को कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कानूनी दर्जा दिया जाता हैं। इस अधिनियम के तहत लोक अदालत द्वारा किए गए निर्णय को वही मान्यता प्राप्त है, जो किसी दीवानी कोर्ट के फैसले का होता है, वह अंतिम और सभी पक्षों पर बाध्यकारी होता है और उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती। लोक अदालतें, कानूनी सेवा प्राधिकरणों/समितियों द्वारा सामान्य तरीके से अर्थात कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 19 के तहत आयोजित की जाती हैं। इनमें निम्नलिखित प्रकार के मामले आते हैं, जैसे वैवाहिक/पारिवारिक मामले, आपराधिक मामले जो बढ़ सकते हैं, भूमि अधिग्रहण संबंधी मामले, श्रम विवाद, कामगारों को मुआवजा, बैंक वसूली मामले, पेंशन संबंधी मामले, आवास बोर्ड और मलिन

बस्ती निपटान मामले और गृह ऋण मामले, उपभोक्ता शिकायत मामले, बिजली संबंधी मामले, टेलीफोन बिल के मामले, गृह कर सहित नगरपालिका संबंधी मामले और सेलुलर कंपनियों के साथ विवाद के मामले।

4.5 दीवानी/सिविल प्रक्रिया

यदि किसी व्यक्ति के अधिकारों का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उल्लंघन किया जा रहा है तो जिस व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है वह न्यायालय की शरण में जाता है। किसी भी सिविल मुकदमे को आरंभ करने से लेकर उसके निपटारे तक के लिए न्यायालय की अपनी एक प्रक्रिया होती है, क्योंकि यदि यह प्रक्रिया न हो या निश्चित न हो तो अनेकों समस्याएँ आयेंगी और केस के निपटारे में असाधारण बिलंब हो सकता है। ऐसी समस्याओं से बचने के लिए ही सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 पारित की गई थी। इसमें न्यायालय में सिविल वाद के प्रस्तुति से लेकर निस्तारण तथा उसके बाद उसकी डिक्री के निष्पादन के लिए एक सुस्पष्ट लिखित प्रक्रिया निर्धारित कर दी गई है।

सिविल वाद

सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार किसी संपत्ति से संबंधित या अधिकारों से संबंधित वाद सिविल वाद या दीवानी वाद कहलाते हैं। दूसरे अर्थों में, किसी निजी या सार्वजनिक अधिकार को लेकर दो या अधिक व्यक्तियों में जो वाद शुरू होता है, उसे सिविल वाद कहते हैं।

सामान्य तौर पर सिविल वादों के अंतर्गत निम्नलिखित वाद शामिल किए जाते हैं-

1) कर्ज या किसी अन्य धनराशि की वसूली से संबंधित वाद।
2) नागरिक अधिकारों (सिविल राइट्स) से संबंधित वाद, जैसे- कॉपीराइट, सड़क पर आवागमन से संबंधित वाद।
3) चल या अचल संपत्ति से संबंधित वाद।
4) सुखाधिकार से संबंधित वाद, जैसे- व्यक्तिगत नाले का उपयोग, नाली, नींव आदि से संबंधित वाद।
5) मकान मालिक एवं किरायेदार के बीच विवाद।
6) पारिवारिक विवाद, जैसे- वैवाहिक विवाद, भरण-पोषण से संबंधित विवाद आदि।
7) किसी करार या समझौते से संबंधित विवाद।
8) साझेदारी फर्म या लेखा-जोखा से संबंधित वाद।
9) धार्मिक अधिकारों से संबंधित वाद।
10) सार्वजनिक स्थलों से संबंधित विवाद।
11) मोटर दुर्घटना हेतु प्रतिकर आदि से संबंधित विवाद।

ज्ञान शांति मैत्री

4.6 दांडिक प्रक्रिया

दांडिक प्रक्रिया पर कानून जम्मू-कश्मीर राज्य और उत्तर-पूर्वी राज्यों के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर पूरे भारत पर सार्वजनिक रूप से लागू होता है और यह कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर (1973) में दिया गया है। यह कोड, भारतीय दंड संहिता के तहत राज्य और केंद्र के कानूनों के तहत उन अन्य विशेष क़ानूनों के अतिरिक्त लागू होता है जो किसी विशेष मामले के लिए भिन्न प्रक्रिया प्रदान करते हैं। भारतीय दंड संहिता एक बहुत ही व्यापक प्रक्रिया है, जिसके तहत किसी के मामले की सुनवाई गिरफ्तारी सजा निर्धारित करना आदि सम्मिलित हैं।

कुछ प्रमुख धाराएं -

धारा 41 बी- गिरफ़्तारी की प्रक्रिया तथा गिरफ़्तार करने वाले अधिकारी के कर्तव्य को बताता है।

धारा 41 डी- जब कोई व्यक्ति गिरफ़्तार किया जाता है तथा पुलिस द्वारा उससे पूछताछ गए जाते हैं, तो पूछताछ के दौरान उसे अपने पंसद के अधिवक्ता से मिलने का अधिकार होता है।

धारा 46- यह बताता है कि गिरफ़्तारी कैसे की जाएगी?

धारा 51- गिरफ़्तार व्यक्ति की तलाशी को बताता है।

धारा 52-गिरफ़्तार व्यक्ति के पास यदि कोई आक्रामक आयुध पाए जाते है तो उन्हें अभिग्रहित करने के प्रावधान है।

धारा 55 ए- इसके अनुसार अभियुक्त की अभिरक्षा रखने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य होगा कि वह अभियुक्त के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की उपयुक्त देख-रेख करें।

धारा 58- इस धारा के अनुसार पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा जिला मजिस्टेट को या उसके ऐसे निर्देश देने पर उपखंड मजिस्टेट को, अपने-अपने थाने की सीमाओं के भीतर वारण्ट के बिना गिरफ़्तार करके लाए गए सभी व्यक्तियों कें मामले के रिपोर्ट करेंगे चाहे उन व्यक्तियों की जमानत ले ली गई हो या नहीं।

एफ़. आई. आर. संबंधित जानकारी

किसी अपराध की सूचना जब किसी पुलिस अफसर अथवा पुलिस थाने को दी जाती है तो उसे एफआईआर कहते हैं। यह सूचना लिखित में होनी चाहिए या फिर इसे लिखित में परिवर्तित किया गया हो। एफआईआर भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अनुरूप चलती है। एफआईआर संज्ञेय अपराधों में होती है। अपराध संज्ञेय नहीं है तो एफआईआर नहीं लिखी जाती।

एफ़. आई. आर. संबंधित कुछ अधिकार-

क) अगर संज्ञेय अपराध है तो थानाध्यक्ष को तुरंत प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर)

ख) दर्ज करनी चाहिए एफआईआर की एक कॉपी लेना शिकायत करने वाले का अधिकार है।

ग) एफआईआर दर्ज करते वक्त पुलिस अधिकारी अपनी तरफ से कोई टिप्पणी नहीं लिख सकता, , न ही किसी भाग को हाईलाइट कर सकता है।

घ) संज्ञेय अपराध की स्थिति में सूचना दर्ज़ करने के बाद पुलिस अधिकारी को चाहिए कि वह संबंधित व्यक्ति को उस सूचना को पढ़कर सुनाए और लिखित सूचना पर उसके साइन कराए।

ङ) एफआईआर की कॉपी पर पुलिस स्टेशन की मोहर व पुलिस अधिकारी के साइन होने चाहिए। साथ ही पुलिस अधिकारी अपने रजिस्टर में यह भी दर्ज करेगा कि सूचना की कॉपी आपको दे दी गई है।

च) अगर आपने संज्ञेय अपराध की सूचना पुलिस को लिखित रूप से दी है, तो पुलिस को एफआईआर के साथ आपकी शिकायत की कॉपी लगाना ज़रूरी है।

छ) एफआईआर दर्ज कराने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि शिकायत करने वाले को अपराध की व्यक्तिगत जानकारी हो या उसने अपराध होते हुए देखा हो।

ज) अगर किसी वजह से आप घटना की तुरंत सूचना पुलिस को नहीं दे पाएं, तो घबराएं नहीं। ऐसी स्थिति में आपको सिर्फ देरी की वजह बतानी होगी।

झ) आपकी एफआईआर पर क्या कार्रवाई हुई, इस बारे में संबंधित पुलिस आपको डाक से सूचित करेगी।

ञ) अगर थानाध्यक्ष सूचना दर्ज करने से मना करता है , तो सूचना देने वाला व्यक्ति उस सूचना को रजिस्टर्ड डाक द्वारा या मिलकर क्षेत्रीय पुलिस उपायुक्त को दे सकता है , जिस पर उपायुक्त उचित कार्रवाई कर सकता है।

ट) अगर अदालत द्वारा दिए गए समय में पुलिस अधिकारी शिकायत दर्ज नहीं करता या इसकी प्रति आपको उपलब्ध नहीं कराता या अदालत के दूसरे आदेशों का पालन नहीं करता , तो उस अधिकारी के खिलाफ कार्रवाई के साथ उसे जेल भी हो सकती है।

4.7 सारांश

इस इकाई का उद्देश्य भारतीय न्यायिक प्रणाली को समझना था। अतः इस इकाई के अंतर्गत हमने भारतीय संविधान में वर्णित भारतीय न्यायिक प्रणाली की संरचना को समझा। हमने यह भी जाना कि संघ कार्यपालिका का अध्यक्ष भारत का राष्ट्रपति होता है, जो राष्ट्र द्वारा नामित अध्यक्ष होता है। वास्तविक अधिकार मंत्रियों की संघीय परिषद में निहित होते हैं जिनका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। हमारे देश के न्यायिक ज़िम्मेदारियों के निर्वहन के लिए न्यायिक प्रणाली की संरचना संघीय पदानुक्रम की भाँति की गई है। हमारी न्यायिक शाखा को उच्चतर और निचली न्यायपालिका में वर्गीकृत किया जाता है। उच्चतर न्यायपालिका में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय है, जबकि निचली न्यायपालिका में सामान्य

दीवानी और दांडिक अदलते हैं, जहाँ उच्चतर न्यायपालिका संविधान द्वारा नियंत्रित होती है और निचली न्यायपालिका संसद द्वारा लागू किए गए विधान के साथ ही राज्य कानून के सहयोग से अपने न्यायिक अधिकार प्राप्त करती है, जिसके तहत यदि किसी व्यक्ति के अधिकारों का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उल्लंघन किया जा रहा है, तो जिस व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है वह न्यायालय की शरण में जा सकता है और अपने न्याय के लिए याचिका दायर कर सकता है।

4.8 शब्दावली

याचिका- याचिकाकर्ता द्वारा दीवानी न्यायालय में पेश गए जाने वाले दस्तावेज़ जिनपर कार्यवाही शुरू होती है।

याचिकाकर्ता- वह पक्ष जो दीवानी कार्य में शिकायत अथवा मुकदमा दायर करता है।

अधिनियम- केंद्र में संसद या राज्य में विधानसभा द्वारा पारित किसी विधान को, अधिनियम कहते हैं।

4.9 बोध प्रश्न

1. भारतीय न्यायिक प्रणाली को परिभाषित करें।
2. सिविल प्रक्रिया के तहत क्या-क्या प्रावधान है?
3. एफ़. आई. आर. संबंधी अधिकारों की चर्चा करें।
4. न्यायपालिका के कार्यों का वर्णन करें।

4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

archive.india.gov.in. (दि.न.).http://www.archive.india.gov.in/hindi/citizen/lawnorder.php?id=8 से, 20 06 2016 को पुनर्प्राप्त

bharatdiscovery.org. (दि.न.). http://bharatdiscovery.org/india/न्यायपालिका से, 2006 2016 को पुनर्प्राप्त

wikipedialorg. (दि.न.). https://hi.wikipedia.org/wiki/न्यायपालिका से, 20 06 2016 कोपुनर्प्राप्त

शर्मा, डॉ सु० .(2007). *संविधान और सरकार*. दिल्ली: अरोड़ा ऑफसेट प्रेस.

त्रिपाठी, प्रो० म०. (2008). *भारतीय प्रशासन*. दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स.

ज्ञान शांति मैत्री

खंड - 4
सामाजिक विधान

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई- 01 महिलाओं एवं बालक/बालिकाओं के लिए कानूनी प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 महिलाओं से संबंधित संवैधानिक प्रावधान
1.4 भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के लिए सुरक्षात्मक कानून
1.5 महिलाओं के लिए अधिनियम
1.5.1 विवाह संबंधी अधिनियम
1.5.2 अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
1.5.3 दहेज निषेध अधिनियम, 1961
1.5.4 स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम, 1986
1.5.5 प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994
1.5.6 घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005
1.5.7 बलात्कार संबंधी कानून एवं अधिनियम
1.5.8 कार्यस्थल पर महिला यौन उत्पीड़न (रोकथाम और निषेध) अधिनियम, 2012
1.6 महिलाओं से संबंधित अन्य अधिनियम
1.7 बालक/बालिका से संबंधित सामाजिक अधिनियम
1.8 संवैधानिक स्थिति
1.9 बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929
1.10 बल श्रम प्रतिनिषेध एवं विनियमन अधिनियम 1986
1.11 किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015
1.12 हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण एवं पोषण आधिनियम 1956
1.13 सारांश
1.14 बोध प्रश्न
1.15 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. महिलाओं एवं बालक/बालिकाओं से संबंधित सामाजिक विधान के प्रति समझ विकसित कर सकेंगे।
2. उनके हितों, सुरक्षा तथा अधिकारों पर पहल कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

समाज में ऐसे कई अक्षम तबके होते हैं, जिन्हें सहायता की आवश्यकता होती है। सामाजिक विधान उनके सामान्य हितों को प्रोत्साहित करने वाले विधान या कानून होता है। ऐसे कानून में उनकी सुरक्षा, बीमा तथा कल्याण शामिल होता है। जैसे कि हम जानते हैं, ऐसे कई कानूनी प्रावधान हैं, जिसके अंतर्गत अक्षम तबके, महिला, बालक, बालिका, वृद्ध, विशेष योग्यता वाले, आदिवासी आदि को सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जाती हैं। इसके बावजूद बेरोज़गार, गरीब तथा अशिक्षित लोगों की सहायता के लिए भी कई सारे प्रावधान हैं।

भारतीय सामाजिक ढाँचे में स्त्री और पुरुष की भूमिका अलग-अलग रूप में निर्धारित की जाती है। वैश्विक स्तर पर लगभग सभी समाजों में, महिलाओं का स्तर पुरुषों की अपेक्षाकृत निम्न है। समाज शैक्षिक योग्यता, समान पद के बावजूद विवाह के समय दिया जाने वाला दहेज समाज में महिलाओं की स्थिति स्वयं उजागर करता है। इसके बावजूद जन्म से मृत्यु तक समाज में महिलाओं को जिन उत्पीड़नों के बीच से गुजरना पड़ता है, वे अलग ही है। जन्म से पहले ही लिंग भेद के कारण गर्भ में ही कितनी ही बालिकाओं को मार दिया जाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में जन्म के बाद लड़कों के साथ जेंडर भेद का वह शिकार हो जाती है। बालिकाओं का लैंगिक शोषण, बलात्कार, उत्पीड़न, काम के जगह पर उत्पीडन, यह सब आम बाते हो गई हैं। इन सबसे बचे तो घरेलु हिंसा का शिकार होना ही है, जिसमें मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न शामिल हैं। इसलिए माना जाता है कि इस दुनिया में महिलाओं के लिए कोई जगह सुरक्षित नहीं हैं। ऐसे में संविधान द्वारा उनकी सुरक्षा तथा समानता स्थापना के लिए पहल को देखा जाता है। सामाजिक विधान के अंतर्गत उनके सांविधिक अधिकारों की बात की जाती है।

भारत में संविधान निर्माण के साथ ही महिलाओं के विधिक अधिकारों की बात की जाती है। महिलाओं के स्थिति को बेहतर बनाने के लिए विविध कानून बनाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान की गई। आज भी लगातार विभिन्न नीतियों के अंतर्गत महिलाओं की बेहतरी के लिए कार्य किया जाता है। हालांकि इसके क्रियान्वयन तथा महिलाओं में जागरूकता की कमी के कारण आज भी महिलाएं काफ़ी समस्याओं से जूझ रही हैं।

सामाजिक विधान के अंतर्गत ऐसे कई सारे कार्यक्रमों को संचालित किया जाता है, जिससे महिलाओं और बालक/बालिकाओं को सामाजिक सुरक्षा, चिकित्सा लाभ, बेरोज़गार भत्ता, क्षतिपूर्ति आदि प्रदान किया जाता है। साथ ही समय-समय पर विभिन्न लाभों को शामिल कर इनके लिए जीवन-यापन के संसाधनों को उपलब्ध कराने में मदद प्रदान की जाती है, जिससे उनका जीवन बेहतर बन सके। इस इकाई में हम महिला एवं बालक/बालिका कल्याण हेतु संचालित सामाजिक विधानों को भारतीय संदर्भ में समझेंगे।

1.3 महिलाओं से संबंधित संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 में देश के प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार दिया गया है। समानता में किसी प्रकार का लिंग भेद नहीं है। समानता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार महिला-पुरुष दोनों को समान रूप से दिया गया है। शारीरिक और मानसिक तौर पर नर-नारी में किसी प्रकार का भेदभाव असंवैधानिक माना गया है। हालांकि आवश्यकता महसूस होने पर महिलाओं और पुरुषों का वर्गीकरण किया जा सकता है। अनुच्छेद-15 में यह प्रावधान किया गया है कि स्वतंत्रता, समानता और न्याय के साथ-साथ महिलाओं/लड़कियों की सुरक्षा और संरक्षण का काम भी सरकार का कर्तव्य है। महिलाओं को समान अवसर प्रदान करने हेतु भारतीय संविधान में निम्नलिखित प्रावधान दर्ज है-

अनुच्छेद 14 महिलाओं और पुरुषों को राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में समान अधिकार और अवसर प्रदान करता है।

अनुच्छेद 15 महिलाओं को समानता का अधिकार प्रदान करता है।

अनुच्छेद 15 (3) में जाति, धर्म, लिंग एवं जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव न करना।

अनुच्छेद 16 सभी नागरिकों को रोजगार का समान अवसर प्रदान करता है।

अनुच्छेद 16 (1) में लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता।

अनुच्छेद 19 (1) में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।

अनुच्छेद 21 में स्त्री एवं पुरुष दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना।

अनुच्छेद 23-24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार समान रूप से प्राप्त हैं।

अनुच्छेद 25-28 में धार्मिक स्वतंत्रता दोनों को समान रूप से प्रदत्त हैं।

अनुच्छेद 29-30 में शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार।

अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

अनुच्छेद 39 सुरक्षा तथा रोजगार का समान कार्य के लिए समान वेतन भी स्थापित करता है।

अनुच्छेद 39 (घ) में पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार।

इसके साथ ही अनुच्छेद 35 से 50 में राज्य के नीति निर्देशक तत्व दिए हैं। ये महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करते हैं। अनुच्छेद 51 (क) (ड) में यह निहित है कि भारत के सभी लोग ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों। अनुच्छेद 33 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के ज़रिए लोकसभा में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है तथा अनुच्छेद 332 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के ज़रिए राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है।

1.4 भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के लिए सुरक्षात्मक कानून

भारतीय दंड संहिता कानून महिलाओं को एक सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करता है, ताकि समाज में घटित होने वाले विभिन्न अपराधों से वे सुरक्षित रह सकें। भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों अर्थात हत्या, आत्महत्या हेतु प्रेरण, दहेज मृत्यु, बलात्कार, अपहरण एवं व्यपहरण आदि को रोकने का प्रावधान है। उल्लंघन की स्थिति में गिरफ्तारी एवं न्यायिक दंड व्यवस्था का उल्लेख इसमें किया गया है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नानुसार हैं, जो दंड के कारण बन सकते हैं-

भारतीय दंड संहिता की धारा 294 के अंतर्गत सार्वजनिक स्थान पर गालियाँ देना एवं अश्लील गाने आदि गाना जो कि सुनने पर बुरे लगें,

धारा 304 बी के अंतर्गत किसी महिला की मृत्यु उसका विवाह होने की दिनांक से 7 वर्ष की अवधि के अंदर उसके पति या पति के संबंधियों द्वारा दहेज संबंधी माँग के कारण क्रूरता या प्रताड़ना के फलस्वरूप सामान्य परिस्थितियों के अलावा हुई हो,

धारा 306 के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य (दुष्प्रेरण) के फलस्वरूप की गई आत्महत्या,

धारा 313 के अंतर्गत महिला की इच्छा के विरुद्ध गर्भपात करवाना,

धारा 314 के अंतर्गत गर्भपात करने के उद्देश्य से किए गए कृत्य द्वारा महिला की मृत्यु हो जाना,

धारा 315 के अंतर्गत शिशु जन्म को रोकना या जन्म के पश्चात उसकी मृत्यु के उद्देश्य से किया गया ऐसा कार्य जिससे मृत्यु संभव हो,

धारा 316 के अंतर्गत सजीव, नवजात बच्चे को मारना,

धारा 318 के अंतर्गत किसी नवजात शिशु के जन्म को छुपाने के उद्देश्य से उसके मृत शरीर को गाड़ना अथवा किसी अन्य प्रकार से निराकरण,

धारा 354 के अंतर्गत महिला की लज्जाशीलता भंग करने के लिए उसके साथ बल का प्रयोग करना,

धारा 363 के अंतर्गत विधिपूर्ण संरक्षण से महिला का अपहरण करना,

धारा 364 के अंतर्गत हत्या करने के उद्देश्य से महिला का अपहरण करना,

धारा 366 के अंतर्गत किसी महिला को विवाह करने के लिए विवश करना या उसे भ्रष्ट करने के लिए अपहरण करना, धारा 371 के अंतर्गत किसी महिला के साथ दास के समान व्यवहार,

धारा 372 के अंतर्गत वेश्यावृत्ति के लिए 18 वर्ष से कम आयु की बालिका को बेचना या भाड़े पर देना, तथा

धारा 373 के अंतर्गत वेश्यावृत्ति आदि के लिए 18 वर्ष से कम आयु की बालिका को खरीदना।

इन सब के लिए दंड का प्रावधान है। इसके बावजुद दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था है। अतः महिलाओं को गवाही के लिए थाने बुलाना, अपराध घटित होने पर उन्हें गिरफ्तार करना, महिला की तलाशी लेना और उसके घर की तलाशी लेना आदि पुलिस प्रक्रियाओं

को इस संहिता में वर्णित किया गया है। इन्हीं वर्णित प्रावधानों के तहत न्यायालय भी महिलाओं से संबंधित अपराधों का विचारण करता है।

स्त्री-धन में वैधानिक तौर पर विवाह से पूर्व दिए गए उपहार, विवाह में प्राप्त उपहार, प्रेमोपहार चाहे वे वर पक्ष से मिले हों या वधू पक्ष से तथा पिता, माता, भ्राता, अन्य रिश्तेदार और मित्र द्वारा दिए गए उपहार स्वीकृत किए गए हैं। विवाहित हिंदू स्त्री अपने धन की निरंकुश मालिक होती है। वह अपने धन को खर्च कर सकती है। सौदा कर सकती है या किसी को दे सकती है। इसके लिए उसे अपने पति, सास, ससुर या अन्य किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। बीमारी या कोई प्राकृतिक आपदा को छोड़कर स्त्री का पति भी उसके धन को खर्च करने का कोई अधिकार नहीं रखता। इन परिस्थितियों में खर्च किए गए स्त्री-धन को वापस करना ससुराल पक्ष की नैतिक ज़िम्मेदारी होगी। परिवार का अन्य सदस्य किसी भी स्थिति में स्त्री-धन खर्च नहीं कर सकता। उच्चतम न्यायालय ने एक प्रकरण में कहा है कि स्त्री द्वारा माँग किए जाने पर इस प्रकार के न्यासधारी उसे लौटाने के लिए बाध्य होंगे। अन्यथा धारा 405/406 भा.द.वि के अपराध के दोषी होंगे।

धारा 363 में व्यपहरण के अपराध के लिए दंड देने पर 7 साल का कारावास और धारा 363 क में भीख माँगने के प्रयोजन से किसी महिला का अपहरण या विकलांगीकरण करने पर 10 साल का कारावास और जुर्माना, धारा 365 में किसी व्यक्ति (स्त्री) का गुप्त रूप से अपहरण या व्यपहरण करने पर 7 वर्ष का कारावास अथवा जुर्माना अथवा दोनों, तथा धारा 366 में किसी स्त्री को विवाह आदि के लिए विवश करने के लिए अपहृत करने अथवा उत्प्रेरित करने पर 10 वर्ष का कारावास, जुर्माने का प्रावधान हैं। धारा 372 में वेश्यावृत्ति के लिए किसी स्त्री को खरीदने पर 10 वर्ष का कारावास, जुर्माना, तथा धारा 373 में वेश्यावृत्ति आदि के प्रयोजन के लिए महिला को खरीदने पर 10 वर्ष का कारावास, जुर्माना एवं बलात्कार से संबंधित दंड आजीवन कारावास या दस वर्ष का कारावास और जुर्माना, धारा 376 (क) में पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ पृथक्करण के दौरान संभोग करने पर 2 वर्ष का कारावास अथवा सजा या दोनों शामिल हैं।

धारा 376 (ख) में लोक सेवक द्वारा उसकी अभिरक्षा में स्थित स्त्री से संभोग करने पर 5 वर्ष तक की सजा या जुर्माना अथवा दोनों, धारा 376 (ग) में कारागार या सुधार गृह के अधीक्षक द्वारा संभोग करने पर 5 वर्ष तक की सजा या जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान, धारा 32 (1) में मरे हुए व्यक्ति (स्त्री) के मरणासन्न कथनों को न्यायालय सुसंगत रूप से स्वीकार करता है, बशर्ते ऐसे कथन मृत व्यक्ति (स्त्री) द्वारा अपनी मृत्यु के बारे में या उस संव्यवहार अथवा उसकी किसी परिस्थिति के बारे में किए गए हों, जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई हो। धारा 113 (ए) में यदि किसी स्त्री का पति अथवा उसके रिश्तेदार के द्वारा स्त्री के प्रति किए गए उत्पीड़न, अत्याचार जो कि मौलिक तथा परिस्थितिजन्य साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित हो जाते हैं, तो स्त्री द्वारा की गई आत्महत्या को न्यायालय दुष्प्रेरित की गई आत्महत्या की उपधारणा कर सकेगा। धारा 113(बी) में यदि भौतिक एवं परिस्थितिजन्य साक्ष्यों द्वारा यह प्रमाणित हो जाता है कि स्त्री की

अस्वाभाविक मृत्यु के पूर्व मृत स्त्री के पति या उसके रिश्तेदार दहेज प्राप्त करने के लिए मृत स्त्री को प्रताड़ित, उत्पीड़ित करते, सताते या अत्याचार करते थे तो न्यायालय स्त्री की अस्वाभाविक मृत्यु की उपधारणा कर सकेगा अर्थात दहेज मृत्यु मान सकेगा।

1.5 महिलाओं के लिए अधिनियम

1.5.1 विवाह संबंधी अधिनियम

हिंदू विवाह अधिनियम

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 भारतीय संसद द्वारा वर्ष 1955 में हिंदूओं, खासकर उनके लिए विवाह की संस्था, इसकी वैधता, स्थितियों के बीच निजी जीवन को विनियमित करने के इरादे से बनाया गया था। स्मृतिकाल से ही हिंदूओं में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है और हिंदू विवाह अधिनियम 1955 में भी इसको इसी रूप में बनाए रखने की चेष्टा की गई है। किंतु विवाह, जो पहले एक पवित्र एवं अटूट बंधन था, अधिनियम के अंतर्गत, ऐसा नहीं रह गया है। कुछ विधि विचारकों की दृष्टि में यह विचारधारा अब शिथिल पड़ गई है। अब यह जन्म जन्मांतर का संबंध अथवा बंधन नहीं, बल्कि विशेष परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर, (अधिनियम के अंतर्गत) वैवाहिक संबंध विघटित किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 10 के अनुसार न्यायिक पृथक्करण निम्न आधारों पर न्यायालय से प्राप्त हो सकता है:

अधिनियम की धारा 13 के अनुसार - संसर्ग, धर्मपरिवर्तन, पागलपन (3 वर्ष), कुष्ट रोग (3 वर्ष), रतिज रोग (3 वर्ष), संन्यास, मृत्यु निष्कर्ष (7 वर्ष), पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पास होने के दो वर्ष बाद तथा दांपत्याधिकार प्रदान करने वाली डिक्री पास होने के दो साल बाद 'संबंध-विच्छेद' प्राप्त हो सकता है।

स्त्रियों को निम्न आधारों पर भी संबंधविच्छेद प्राप्त हो सकता है; जैसे- द्विविवाह, बलात्कार, पुंमैथुन तथा पशुमैथुन।

धारा 11 एवं 12 के अंतर्गत न्यायालय 'विवाहशून्यता' की घोषणा कर सकता है। विवाह प्रवृत्तिहीन घोषित किया जा सकता है, यदि दूसरा विवाह सपिंड और निषिद्ध गोत्र में किया गया हो (धारा 11)। नपुंसकता, पागलपन, मानसिक दुर्बलता, छल एवं कपट से अनुमति प्राप्त करने पर या पत्नी के अन्य पुरुष से (जो उसका पति नहीं है) गर्भवती होने पर विवाह विवर्ज्य घोषित हो सकता है। (धारा 12)।

अधिनियम द्वारा अब हिंदू विवाह प्रणाली में निम्नांकित परिवर्तन किए गए हैं

1. अब हर हिंदू स्त्री-पुरुष दूसरे हिंदू स्त्री-पुरुष से विवाह कर सकता है, चाहे वह किसी जाति का हो।
2. एकविवाह तय किया गया है। द्विविवाह अमान्य एवं दंडनीय भी है।

3. न्यायिक पृथक्करण, विवाह-संबंध-विच्छेद तथा विवाहशून्यता की डिक्री की घोषणा की व्यवस्था की गई है।
4. प्रवृत्तिहीन तथा विवर्ज्य विवाह के बाद और डिक्री पास होने के बीच उत्पन्न संतान को वैध घोषित कर दिया गया है। परंतु इसके लिए डिक्री का पास होना आवश्यक है।
5. न्यायालयों पर यह वैधानिक कर्तव्य नियत किया गया है कि हर वैवाहिक झगड़े में समाधान कराने का प्रथम प्रयास करें।
6. विवाह के बाद या विवाह के बीच या संबंधविच्छेद पर निर्वाहव्यय एवं निर्वाह भत्ता की व्यवस्था की गई है। तथा
7. न्यायालयों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि अवयस्क बच्चों की देख रेख एवं भरण पोषण की व्यवस्था करे।

उक्त अधिनियम में महिलाओं के हितों को ध्यान में रखते हुए 2010 को संशोधन किया गया, जिसे विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम-2010 कहा जाता है। इस संशोधन में यह प्रावधान शामिल किया गया है कि वैवाहिक संबंध में स्त्री असमाधेय गतिरोध के आधार पर विवाह-विच्छेद का प्रस्ताव रख सकती है। पुरुष को ऐसा करने से मनाही है तथा वह स्त्री द्वारा प्रस्तावित तलाक का विरोध नहीं कर सकता, लेकिन पुरुष द्वारा विवाह विच्छेद की याचना को विरोध करने का स्त्री को पूरा अधिकार प्राप्त है।

मुस्लीम विवाह अधिनियम

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में मुस्लिम विधि काफ़ी हद तक असंहिताबद्ध है। मुस्लिम विधियाँ ज्यादातर धार्मिक ग्रंथों के आधार पर ही मान्यता प्राप्त हैं। शरियत अधिनियम, 1937 से पहले तक मुस्लिम समुदायों में विभिन्नता को देखा जाता है। भारतीय संदर्भ में देखे तो मुस्लिम विवाह विधि निम्नलिखित हैं- मुस्लिम विवाह विधि भारत के प्रत्येक मुस्लिम व्यक्ति पर लागू होती है, जिसका मानना है कि ईश्वर एक है और उसका पैगम्बर मोहम्मद है। मुस्लिमों में विवाह संस्कार नहीं, बल्कि एक सिविल संविदा है। मुस्लिम और गैर-मुस्लिम के बीच, विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अंतर्गत विवाह हो सकता है। 18 वर्ष से कम आयु की स्त्री का विवाह करना अपराध है, परंतु इस निषेध का उल्लंघन करने से विवाह की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा।

मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम, 1939 द्वारा मुस्लिम पत्नी को निम्नलिखित आधारों पर तलाक पाने का अधिकार दिया गया है-

1. चार वर्षों से पति के संबंध में कोई जानकारी न हो
2. पति दो वर्ष से उसका भरण-पोषण नहीं कर रहा हो
3. पति सात वर्ष या उससे अधिक का कारावास दे दिया गया हो

4. किसी समुचित कारण के बिना पति तीन वर्ष से अपने वैवाहिक दायित्वोंम का निर्वाह नहीं कर रहा हो
5. पति नपुंसक हो
6. पति दो वर्ष से पागल हो
7. पति कुष्ठ् रोग या उग्र रति रोग से पीड़ित हो
8. उस (पत्नी) की शादी 15 वर्ष की आयु पूरी होने से पहले हो चुकी हो और उसने पति के साथ सहवास न किया हो
9. पति का व्यवहार क्रूर रहा हो

क्रिश्चन विवाह अधिनियम

क्रिश्चन लोगों के लिए भारतीय क्रिश्चन विवाह अधिनियम, 1872 हैं। इसे पारित करने के पीछे यह उद्देश्य था कि क्रिश्चन विवाहों को भारत में संपन्न कराने से संबंधित कानून को समेकित एवं संशोधित किया जा सके। यह अधिनियम ऐसे राज्यों को छोड़ भारत के सभी क्रिश्चन पर लागू होता है जो 1 नवंबर 1956 से पहले त्रावनकोर, कोचीन, मणिपुर, जम्मू एवं कश्मीर में शामिल थे। यह अधिनियम दोनों पक्षों की राष्ट्रीयता या अधिवास चाहे कही का भी हो भारत में संपन्न सभी क्रिश्चन विवाहों पर लागू होता है। इस अधिनियम में भारतीय क्रिश्चन के अंतर्गत इसाई धर्म अपनाने वाले, धर्मपरिवर्तन से इसाई बने हुए भारतीय मूल के इसाई वंशज भी शामिल किए गए हैं।

अधिनियम की धारा 4 के अनुसार दो पक्षों, जिसमें से एक या दोनों इसाई हैं, के बीच होने वाला प्रत्येक विवाह, अधिनियम की धारा 5 के अनुसार संपन्न किया जाएगा अन्यथा विवाह अमान्य होगा।

तलाक अधिनियम, 1969 की धारा 10 में अनुमति है कि यदि पति दूसरा विवाह करने का दोषी पाया जाता है या किसी और से उसके संबंध हैं, तो इस स्थिति में उसकी पत्नी उस पर मुकदमा दायर कर सकती है।

धारा 494, भारतीय दंड संहिता (द्विविवाह) के अंतर्गत किए गए न्यायिक फैसलों में व्यक्त है कि किसी भी इसाई व्यक्ति की एक से अधिक पत्नी या उसका एक से अधिक पति नहीं हो सकता।

तलाक के मामले में महिलाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण प्रावधानों को हटाने के लिए भारतीय तलाक (संशोधन) अधिनियम, 2001 के ज़रिए भारतीय तलाक अधिनियम, 1896 में व्यापक संशोधन किए गए। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम की धारा 36 और 41 में विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 2001 के जरिए संशोधन किया गया, ताकि गुजारा खर्चा अथवा नाबालिग बच्चों के भरण-पोषण और शिक्षा व्यय के वहन के लिए दी जाने वाली याचिका का निपटारा प्रतिवादी को नोटिस दिए जाने के 60 दिनों के भीतर किया जा सके।

1.5.2 अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956

समाज में महिलाओं का पद इतना हीन माना गया है कि उन्हें एक वस्तु के रूप में देखा जाता है। इस अवमूल्यन के कारण एवं सामाजिक शोषण के कारण कई महिलाएं देह व्यापार की ओर बढ़ती हैं। ऐसे में ताक लगाकर बैठे दलाल इनकी खरीदफरोक्त शुरू कर देते हैं। ऐसे में उनका जीवन अत्यंत पीड़ाजनक बन जाता है। इस शोषण के दमन के लिए शुरुआत में अनैतिक व्यापार निवारण अधिनयम, 1956 बनाया गया, जिसमें बाद में, 1986 एवं 1987 में संशोधन किया गया।

इस अधिनियम के प्रमुख दो उद्देश्य हैं-

- अपराधियों के लिए भारी सजा निर्धारित करते हुए, महिला/बालक/बालिका के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की जांच करना
- देह व्यापार से पीड़ित और संकटग्रस्त महिलाओं/बालिकाओं के लिए उद्धार एवं पुनर्वास संबंधी ढाँचे की व्यवस्था करना।

1.5.3 दहेज निषेध अधिनियम, 1961

दहेज जैसे सामाजिक अभिशाप से महिला को बचाने के उद्देश्य से 1961 में 'दहेज निषेध अधिनियम' बनाकर क्रियान्वित किया गया। वर्ष 1986 में इसे भी संशोधित कर समयानुकूल बनाया गया। यह अधिनियम दहेज लेने और देने पर प्रतिबंध लगाता है। यह दहेज को एक ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति मानता है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विवाह के एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को विवाह के समय या उससे पहले या उसके बाद दिया जाता है। किंतु इसमें दोअर या मेहर शामिल नहीं है - उन व्यक्तियों के मामले में जिन पर मुस्लिम पर्सनल लॉ (जिसे शरीयत कहते हैं) लागू होता है। यह अधिनियम दहेज देने वाले और दहेज की मांग करने वाले पक्षों को दंडित करता है। यह दहेज का विज्ञापन करने वाले विज्ञापनों पर भी प्रतिबंध लगाता है। यह अधिनियम के प्रावधानों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए दहेज निषेध अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था करता है तथा साथ ही केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को अधिनियम के बेहतर कार्यान्वयन हेतु नियम बनाने के लिए अधिकृत करता है।

अधिनियम के अनुसार यदि दहेज का सामान ससुराल पक्ष के लोग दुर्भावनावश अपने कब्जे में रखते हैं, तो धारा 405-406 भा.द.वि. का अपराध होगा। विवाह के पूर्व या बाद में दबाव या धमकी देकर दहेज प्राप्त करने का प्रयास धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अतिरिक्त धारा 506 भा.द.वि. का भी अपराध होगा। यदि धमकी लिखित में दी गई हो, तो धारा 507 भा.द.वि. का अपराध बनता है। दहेज लेना तथा देना दोनों अपराध हैं।

1.5.4 स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम, 1986

किसी भी समाज में स्त्री की अपनी सुंदरता के कारण अलग पहचान है। भारतीय समाज में भी महिलाओं की सामाजिक छवि प्रतिष्ठित मानी जाती हैं, किंतु कुछ असामाजिक घटकों द्वारा महिलाओं की छवि को खराब करने की चेष्टा लगातार की जाती रही हैं। खासकर आज कल के विज्ञापनों में महिलाओं की सुन्दरता को गलत ढंग से या अश्लील रूप में पेश किया जाता है। ऐसे में महिलाओं के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। समाज में अनैतिकता फैलती है तथा सामाजिक मूल्यों में बिखराव की स्थिति उत्पन्न होती हैं। ऐसे में इस पर रोक लगाने के लिए अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामत: स्त्री अशिष्ट रूपण निषेध अधिनियम, 1986 पारित किया गया।

यह अधिनियम-

- महिलाओं के अशिष्ट रूपं को परिभाषित करने पर ध्यान केन्द्रित करता है;
- ऐसे सभी विज्ञापनों, प्रकाशनों आदि पर रोक लगाता है जो कि किसी भी रूप में महिलाओं के अशिष्ट रूपण को उजागर करते हों;
- महिलाओं का अशिष्ट रूपण शामिल हों ऐसी कोई भी पुस्तक, पैम्फलैट आदि की बिक्री, वितरण या इन्हें परिचालित करने पर रोक लगाता हैं;
- इससे संबंधित अपराधियों को सजा देने पर ध्यान केन्द्रित करता है।

यह एक संज्ञेय अपराध माना गया है इसलिए दोषी को बिना वारंट गिरफ्तार किया जाता है। प्रथम दोषसिद्धि के लिए दो वर्ष तक के कारावास और दो हजार रुपये तक के जुर्माने की सजा का प्रावधान इस अधिनियम में हैं तथा दूसरी बार इस तरह के अपराध में लिप्त पाए जाने पर या आरोप सिद्ध हो जाने पर छह माह से पांच वर्ष तक जेल और दस हजार से एक लाख रुपये तक का जुर्माना तय है।

1.5.5 प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994

गर्भावस्था में ही मादा भ्रूण को नष्ट करने के उद्देश्य से लिंग परीक्षण को रोकने हेतु प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994 निर्मित कर क्रियान्वित किया गया। इसका उल्लंघन करने वालों को 10-15 हजार रुपए का जुर्माना तथा 3-5 साल तक की सजा का प्रावधान किया गया है। यह लिंग चयन निषेध की ओर पहला कदम था किंतु इसका अनुपालन प्रभावी ढंग से नहीं हो पा रहा था। इसके प्रभाविता को बढाने के लिए 2001 में उच्चतम न्यायालय ने पर्यवेक्षी बोर्ड को अधिनियम की आवश्यकताओं का परिक्षण करने का दायित्व सौपते हुए 4 मई 2001 को एक आदेश पारित किया और अपने आदेश पर आधारित आवश्यक सिफारिशें केंद्रीय सरकार को की। इसके बाद संसद ने पूर्व निर्धारण लिंग चयन तकनीक और गर्भ-चयन गर्भपातों के लिए प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 2002 पारित किया।

1.5.6 घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005

धारा 2 (छ) एवं 3 के अनुसार शारीरिक दुर्व्यवहार अर्थात शारीरिक पीड़ा, अपहानि या जीवन या अंग या स्वास्थ्य को खतरा या लैगिंग दुर्व्यवहार अर्थात महिला की गरिमा का उल्लंघन, अपमान या तिरस्कार करना या अतिक्रमण करना या मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार अर्थात अपमान, उपहास, गालीगलौच करना या आर्थिक दुर्व्यवहार अर्थात आर्थिक या वित्तीय संसाधनों, जिसकी वह हकदार है, से वंचित करना, ये सभी घरेलू हिंसा कहलाते हैं।

घरेलु हिंसा अधिनियम, 2005, जिसके तहत वे सभी महिलाएं जिनके साथ किसी भी तरह घरेलु हिंसा की जाती है, उनको प्रताड़ित किया जाता है, वे सभी पुलिस थाने जाकर एफआईआर दर्ज करा सकती है, और पुलिसकर्मी बिना समय गवाएं प्रतिक्रिया करेंगे।

1.5.7 बलात्कार संबंधी कानून एवं अधिनियम

धारा 376 के अंतर्गत किसी महिला से कोई अन्य पुरुष उसकी इच्छा एवं सहमति के बिना या भयभीत कर सहमति प्राप्त कर अथवा उसका पति बनकर या उसकी मानसिक स्थिति का लाभ उठाकर या 16 वर्ष से कम उम्र की बालिका के साथ उसकी सहमति से दैहिक संबंध करना या 15 वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ उसके पति द्वारा संभोग, कोई पुलिस अधिकारी, सिविल अधिकारी, प्रबंधन अधिकारी, अस्पताल के स्टाफ का कोई व्यक्ति गर्भवती महिला, 12 वर्ष से कम आयु की लड़की जो उनके अभिरक्षण में हो, अकेले या सामूहिक रूप से बलात्कार करता है, इसे विशिष्ट श्रेणी का अपराध माना जाकर विधान में इस धारा के अंतर्गत कम से कम 10 वर्ष की सजा का प्रावधान है।

ऐसे प्रकरणों का विचारण न्यायालय द्वारा बंद कमरे में धारा 372 (2) द.प्र.सं. के अंतर्गत किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि 'बलात्कार करने के आशय से किए गए हमले से बचाव हेतु हमलावर की मृत्यु तक कर देने का अधिकार महिला को है' (धारा 100 भा.द.वि. के अनुसार), दूसरी बात साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (ए) के अनुसार बलात्कार के प्रकरण में न्यायालय के समक्ष पीड़ित महिला यदि यह कथन देती है कि संभोग के लिए उसने सहमति नहीं दी थी, तब न्यायालय यह मानेगा कि उसने सहमति नहीं दी थी। इस तथ्य को नकारने का भार आरोपी पर होगा।

आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 2013

इस तरह के कानून की मांग दिल्ली में 16 दिसंबर, 2012 को चलती बस में मेडिकल की एक छात्रा के साथ सामूहिक बलात्कार के पश्चात् व्यापक तौर पर की गई थी। सरकार द्वारा दिसंबर, 2012 में ही ऐसे कानून में किए जाने वाले प्रावधानों की संस्तुति के लिए सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया, जिसकी संस्तुतियों के आधार पर राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 143 के तहत एक अध्यादेश जारी किया और उसी अध्यादेश को कुछ संशोधनों के साथ कानूनी स्वरूप प्रदान

किया गया। आलोच्य कानून के द्वारा लैंगिक अपराधों से जुड़े भारतीय दंड संहिता, भारत प्रमाण संहिता, आपराधिक प्रक्रिया संहिता कानूनों में संशोधन किया गया।

नए कानून में बलात्कार की परिभाषा को व्यापक बनाते हुए इसके लिए सख्त सजा का प्रावधान किया गया है। बलात्कार के मामले में पीड़ित की मौत हो जाने या उसके स्थायी रूप से मृतप्राय हो जाने की स्थिति में मौत की सजा का प्रावधान भी इस कानून में किया गया है। सामूहिक बलात्कार के मामले में दोषियों के लिए धारा 376ए के तहत सजा की अवधि न्यूनतम 20 वर्ष रखी गई है, जो आजीवन कारावास तक हो सकती है। कानून में सहमति से यौन संबंध बनाने की उम्र 18 साल तय की गई है। महिलाओं का पीछा करने एवं तांक-झांक पर कड़े दंड का प्रावधान किया गया है। ऐसे मामलों में पहली बार में गलती हो सकती है, इसलिए इसे जमानती रखा गया है, लेकिन दूसरी बार ऐसा करने पर इसे गैर-जमानती बनाया गया है। तेजाबी हमला करने वालों के लिए 10 वर्ष की सजा का भी कानून में प्रावधान किया गया है। इसमें पीड़ित को आत्मरक्षा का अधिकार प्रदान करते हुए तेजाब हमले की अपराध के रूप में व्याख्या की गई है। साथ ही यह भी प्रावधान किया गया है कि सभी अस्पताल बलात्कार या तेजाब हमला पीड़ितों को तुरंत प्राथमिक सहायता या निःशुल्क उपचार उपलब्ध कराएंगे और ऐसा करने में विफल रहने पर उन्हें सजा का सामना करना पड़ेगा।

कानून में कम-से-कम सात साल की सजा का प्रावधान किया गया है, जो प्राकृतिक जीवन काल तक के लिए बढ़ाई जा सकती है और यदि दोषी व्यक्ति पुलिस अधिकारी, लोकसेवक, सशस्त्र बलों या प्रबंधन या अस्पताल का कर्मचारी है, तो उसे जुर्माने का भी सामना करना होगा। कानून में भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन किया गया है, जिसके तहत बलात्कार पीड़िता को, यदि वह अस्थायी या स्थायी रूप से मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम हो जाती है, तो उसे अपना बयान दुभाषिये या विशेष एजुकेटर की मदद से न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज कराने की भी अनुमति दी गई है। इसमें महिला अपराध की सुनवाई बंद करने तथा कार्यवाही की विडियोग्राफी करने का भी प्रावधान किया गया है। इस कानून में महिलाओं के विरुद्ध अपराध की एफआईआर दर्ज नहीं करने वाले पुलिस कर्मियों को दंडित करने का भी प्रावधान है।

1.5.8 कार्यस्थल पर महिला यौन उत्पीड़न (रोकथाम और निषेध) अधिनियम, 2012

निजी एवं सार्वजनिक कार्यस्थलों पर महिलाओं को यौन उत्पीड़न से बचाने के उद्देश्य से संसद में लाया गया संशोधित महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम और निषेध) विधेयक, 2012 राज्यसभा में 25 फरवरी, 2013 को पारित कर दिया गया। यह विधेयक लोकसभा में 3 अगस्त, 2012 को बिना किसी चर्चा के ही पारित कर दिया गया था। इस विधेयक में कार्यालय में कार्यरत महिला कर्मचारियों के अतिरिक्त मजदूरों को भी यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान किया गया है।

अस्पतालों में इलाज के लिए आने वाली महिलाएं तथा कॉलेजों व विश्वविद्यालयों की छात्राओं व शोधकर्मियों को भी यौन उत्पीड़न से सुरक्षा का प्रावधान मूलतः 2010 में लाए गए मूल विधेयक में नहीं थे, किंतु संशोधित विधेयक में इन्हें भी विधेयक के दायरे में लाया गया है। प्रस्तावित अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- इस कानून के तहत् कार्यस्थल पर लैंगिक टिप्पणी या किसी भी तरह के शारीरिक लाभ उठाने अथवा गलत तरीके से छूने की अपराध की श्रेणी में रखा गया है।
- प्रस्तावित अधिनियम में शिकायतों की 90 दिनों की समय सीमा के अंदर जांच का प्रावधान किया गया है।
- प्रावधानों का उल्लंघन करने पर नियोक्ता पर 50 हजार रुपए तक के जुमाने का प्रावधान है।
- प्रस्तावित अधिनियम में घरों में काम करने वाली सहायिकाओं को भी शामिल किया गया है।
- इस कानून के अनुसार किसी भी 10 या उससे अधिक कर्मचारियों वाले संगठनों में आतंरिक शिकायत समिति बनाएं जाने का प्रावधान किया गया है।
- आंतरिक शिकायत समिति को संगठित और असंगठित दोनों ही क्षेत्रों में लागू करना अनिवार्य होगा।
- अधिनियम के अनुच्छेद-14 के अनुसार यदि महिला की शिकायत दुर्भावनापूर्ण निकली या उसके भ्रामक दस्तावेज पेश किए तो उसे दंडित किया जा सकता है।
- अधिनियम के अनुच्छेद-16 में यह प्रावधान किया गया है कि अभियुक्त की पहचान सार्वजनिक न हो, भले ही वह यौन उत्पीड़न अपराध का दोषी हों।
- जिन कंपनियों में 10 से कम कर्मचारी कार्य करते हैं वहां उस जिले का अधिकारी स्थानीय शिकायत समिति का गठन कर सकता है।

कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन शोषण से सुरक्षा प्रदान करने का कार्य 15 साल तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विशाखा दिशा-निर्देश से ही चलता रहा है। 15 साल के बाद सरकार ने महिलाओं को यौन सुरक्षा प्रदान करने के लिए कानून बनाने का निर्णय लिया है। उपर्युक्त अधिनियम में यौन शोषण को रोकने के लिए न केवल कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं, बल्कि दायरा भी विस्तृत किया गया है।

1.6 अन्य अधिनियम

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961

विभिन्न संस्थाओं में कार्यरत महिलाओं के स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रसूति अवकाश की विशेष व्यवस्था, संविधान के अनुच्छेद 42 के अनुकूल करने के लिए 1961 में प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम पारित किया गया। इसके तहत पूर्व में 90 दिनों का प्रसूति अवकाश मिलता था। अब 135 दिनों का अवकाश मिलने लगा है।

अंतरराज्यिक प्रवासी कर्मकार अधिनियम, 1979 एवं ठेका श्रम अधिनियम, 1970

शासन ने 'अंतरराज्यिक प्रवासी कर्मकार अधिनियम' 1979 पारित करके विशेष नियोजनों में महिला कर्मचारियों के लिए पृथक शौचालय एवं स्नानगृहों की व्यवस्था करना अनिवार्य किया है। इसी प्रकार 'ठेका श्रम अधिनियम' 1970 द्वारा यह प्रावधान रखा गया है कि महिलाओं से एक दिन में मात्र 9 घंटे में ही कार्य लिया जाए।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976

महिलाओं को पुरुषों के समतुल्य समान कार्य के लिए समान वेतन देने के लिए 'समान पारिश्रमिक अधिनियम' 1976 पारित किया गया, लेकिन दुर्भाग्यवश आज भी अनेक महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन नहीं मिलता।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872

भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के कई प्रावधान भी उत्पीड़ित महिलाओं के हितार्थ हैं। दहेज हत्या, आत्महत्या या अन्य प्रकार के अपराधों में महिला के 'मरणासन्न कथन' दर्ज किए जाते हैं। यह प्रावधान महिला को उत्पीड़ित करने वाले को दंडित करने हेतु अत्यधिक उपयोगी है।

ज्ञान शांति मैत्री

1.7 बालक/बालिका से संबंधित सामाजिक अधिनियम

बच्चे देश का भाविष्य है। इसलिए 1974 की राष्ट्रीय नीति के आधार पर हमारी राष्ट्रीय कार्यसूची में इनका विकास एवं इनकी तरफ ध्यान देना सर्वाधिक प्राथमिकता का विषय माना गया है। बावजूद इसके अपनी कच्ची समझ या अन्य सामजिक और आर्थिक दबावों के कारण समाज में इन बच्चों का शोषण किया जा रहा है। इसलिए कुछ उपयोगी कानून बना कर ऐसे विभिन्न प्रकार के शोषणों पर रोक लगाई गई है।

1.8 संवैधानिक स्थिति

संविधान का मुख्य उद्देश्य बच्चों सहित भारत के सभी नागरिकों को न्याय स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की भावना प्रदान करना है।

अनुच्छेद 15 (3) बच्चों और महिलाओं के पक्ष में विशेष कानून बनाने के लिए राज्य को सशक्त करता है। इसलिए बच्चों और माहिलाओं के पक्ष में किए गए कई व्यवहारों को यहां तक कि न्यायिक फैसलों में भी संवैधानिक रुप से सही ठहराया गया है। इसी तरह हर बच्चे को स्वास्थ्य की प्राप्ति और इसके रखरखाव के रूप में पर्याप्त रूप से फलने-फुलने का अधिकार है।

अनुच्छेद 23 के अंतर्गत मानवों में दुव्यर्वहार और बलात श्रम के इसी प्रकार के प्ररुपों की मनाही है। इनका उल्लघंन करने पर दंड झेलना पड़ सकता है। यह प्रावधान न केवल राज्य शोषण, बल्कि आम व्यक्ति द्वारा किए गए शोषण से भी बालक/ बालिकाओं की सुरक्षा करता है।

अनुच्छेद 24 के अंतर्गत 14 वर्ष की आयु से छोटे किसी भी बालक/बालिका को किसी फैक्टरी, खान या किसी जोखिम वाली जगह पर काम के लिए नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही संविधान बालक/बालिका के पक्ष में वैध कानून बनाने के लिए राज्य को सशक्त करता है और बच्चों को राज्य और निजी व्यक्ति अर्थात दोनों के शोषण से संरक्षित करने की जरुरत को मान्यता प्रदान करता है तथा इसके उल्लघंन पर दंड का प्रावधान भी है।

1.9 बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929

भारत के कुछ विशिष्ट राज्यों में मौजुद रीति-रिवाजों के कारण बहुत ही छोटी आयु के ऐसे बाल/बालिकाओं का विवाह संपन्न कराने की प्रथा है जो कि अपनी छोटी आयु के कारण किसी भी तरह के किन्ही अन्य अनुबंधों को निभाने के भी योग्य नहीं होते है। निश्चित आयु से छोटे बालक-बालिकाओं के विवाह की अनुमति देना बाल अधिकार के विरुद्ध है और यह कुछ अन्य मौजूदा कानूनों का उल्लघंन करना भी माना जाता है।

इस क्रिया-कलाप को समाप्त करने के उद्देश्य से बाल विवाह अवरोध अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं है-

आयु

मौजूदा समय में विवाह के लिए लड़के की आयु 21 वर्ष पूरी होनी चाहिए और लड़की की आयु 18 वर्ष पूरी होनी चाहिए। इस आयु में किसी भी तरह की कमी होने से ऐसे बाल/बालिकाओं को बाल की श्रेणी में रखा जाएगा और इस अधिनियम के अंतर्गत उन पर कानूनी कार्रवाई भी जा सकती है।

दंड/सजा

अलग-अलग किस्म के अपराधियों के लिए दंड भी अल-अलग हैं-

यदि 18 वर्ष से अधिक लेकिन 21 वर्ष से कम आयु के लड़के को बाल विवाह में दोषी पाया जाता है, तो उसे 15 दिन की साधारण कैद और 1000 रुपये का जुर्माना हो सकता हैं।

यदि 21 वर्ष की आयु से अधिक आयु वाले किसी पुरुष को बाल विवाह में दोषी पाया जाता है, तो उसे तीन महीने की साधारण कैद और जुर्माना हो सकता है।

ऐसे माता/पिता या अभिभावक, जो बाल विवाह के दौरान मौन रहा या जिसने ऐसे विवाह को संपन्न कराने में सहायता प्रदान की उसे तीन महीने की साधारण कैद और जुर्माना हो सकता है। लेकिन ऐसा अभिभावक यदि महिला है, तो उसके मामले में कारावास की सजा नहीं हो सकती।

1.10 बाल श्रम प्रतिनिषेध एवं विनियमन अधिनियम 1986

जैसे कि हम जानते हैं कि कई कारखानों में नियोक्ता सस्ते श्रम के लिए बालक/बालिकाओं को काम पर रखते हैं; हालांकि यह उनके पढ़ने-लिखने का समय होता है; ऐसे में उनके वैयक्तिक अधिकारों का हनन होता है। ऐसे में उनकी सुरक्षा के लिए बाल श्रम प्रतिनिषेध एवं विनियमन अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई, जिसे मूर्त रूप 1986 में मिला। इस अधिनियम के लागू हो जाने पर पिछला विधान अर्थात बाल रोज़गार अधिनियम 1939 निरस्त कर दिया गया।

इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- विशिष्ट व्यवसायों और प्रक्रमों में ऐसे बच्चों को रोज़गार देने की मनाही है, जो 14 वर्ष की आयु से छोटे हैं।
- ऐसे रोज़गार, जहां काम करने की मनाही नहीं है, वहां बच्चों की कार्य दशाओं को अधिनियम विनियमित करता है।
- प्रतिबंधित श्रेणी के अंतर्गत ऐसे अन्य व्यवसायों को शामिल करने की कार्यविधि का निर्धारण करना, तथा
- अधिनियम का उल्लघंन करने वालों पर लगाए जाने वाले दडों का निर्धारण करना।

मुख्य विशेषताएं

बच्चों की कोमल आयु और सामर्थ्य को ध्यान में रखने हुए अधिनियम ऐसे व्यवसायों और प्रक्रमों जो हानिप्रद और असुरक्षित है, उनमें ऐसे बच्चों के शामिल होने पर रोक लगाता है, जिन्होंने चौदह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। इस विषयवस्तु को भली-भांति समझने के लिए निम्नलिखित रूप में सुरक्षित व्यवसायों और प्रक्रमों को विनिर्दिष्ट किया गया है।

स्वास्थ्य एवं सुरक्षा

राज्य या केंद्रीय सरकार अर्थात कोई भी उपयुक्त सरकार स्थापना की प्रकृति को ध्यान में रखकर सरकारी गॅजट में सूचना जारी करके रोज़गारशुदा बच्चों के स्वास्थ और सुरक्षा के लिए नियम बनाती हैं या किसी ऐसी जगह/जगहों पर काम करने की अनुमति प्रदान करती है।

अपराध एवं जुर्माना

इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन कर बच्चों को रोज़गार देने के मामलों में तीन माह से लेकर एक वर्ष तक की सजा या 10000 रुपये से 20000 रुपये या सजा एवं जुर्माना अर्थात दोनों किए जा सकते है। यदि इसी अपराध को दोहराया जाता है तो छह महीने से दो वर्षों तक की सजा का निर्धारण है। अपराध दोहराने वाले को और अधिक समय के लिए जेल हो सकती है, लेकिन इस मामले में जुर्माना पहले जैसा ही होगा। इसके अलावा रजिस्टर के रखरखाव या नोटिस देने की क्रियाविधि का यदि उल्लंघन किया जाता हैं, तो अपराधी को एक महीने की साधारण कैद और 10000 रुपये का जुर्माना हो सकता है।

हाल ही में आधिकारिक बाल श्रम (प्रतिबंध और नियमन) बिल, 2012 के संशोधनों से बाल श्रम (प्रतिबंध और नियमन) बिल, 1986 में कई तरह के संशोधन शामिल किए गए हैं, जिसमें प्रमुख यह हैं कि 'निषेध ऐसे बच्चों पर लागू नहीं होगा, जो अपने परिवार या पारिवारिक उद्यम (जो जोखिम वाला व्यवसाय या प्रक्रिया न हो) को मदद देने के लिए स्कूल की पढ़ाई होने के बाद या छुट्टियों के दौरान काम करते हैं'।

1.11 किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015

15 जनवरी 2016 से किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 लागू किया गया है और किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 निरस्त हो गया है। किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 को 7 मई, 2015 को लोक सभा द्वारा और 22 दिसंबर, 2015 को राज्य सभा द्वारा पास किया गया था। इसके बाद 31 दिसंबर, 2015 को इसे राष्ट्रपति ने मंजूरी प्रदान कर दी।

किशोर न्याय (बाल देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 और बेहतर ढंग से बच्चों की देखभाल और उनका संरक्षण सुनिश्चित करता है। साथ ही कानून के साथ विवाद की स्थिति में भी उनके हितों का ध्यान रखता है। इसके कुछ मुख्य प्रावधानों में शामिल हैं –

अधिनियम में 'किशोर' शब्द से जुड़े कई नकारात्मक संकेतार्थ को खत्म करने के लिए 'किशोर' शब्द से 'बच्चे' शब्द की नामावली में परिवर्तन किया गया है। अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों की नई परिभाषाओं को शामिल किया गया है। बच्चों के छोटे, गंभीर और जघन्य अपराध, किशोर न्याय बोर्ड (जेजेबी) व बाल कल्याण समिति (सीडब्ल्यूसी) के अधिकारों, कार्यों और ज़िम्मेदारियों में स्पष्टीकरण, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जांच में स्पष्ट अवधि, 16 साल से ऊपर के बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की स्थिति में विशेष प्रावधान, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों को गोद लेने संबंधी नियमों पर अलग नया अध्याय, बच्चों के विरुद्ध किए गए नए अपराधों को शामिल किया गया जाना तथा बाल कल्याण व देखभाल संस्थानों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाए जाने को शामिल किया गया है।

धारा 15 के अंतर्गत 16-18 साल की उम्र के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों को लेकर विशेष प्रावधान किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों को प्रारंभिक आकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।

1.12 हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण एवं पोषण आधिनियम 1956

भारतीय संविधान को अपनाए जाने के तुरंत छठे वर्ष के बाद हिंदूओं में दत्तक ग्रहण और अनुरक्षण से संबंधित कानून को समेकित एवं संहिता बद्ध करने का प्रयास किया गया। इसका बुनियादी कारण हिंदू विवाह अधिनियम 1955 पारित करना था, जो आगे चलकर बच्चों के दत्तक ग्रहण और पत्नियों के भरण पोषण से संबंधित कानूनों में बदलाव लाने में अनिवार्य कारक सिद्ध हुआ। यह बात भी विस्तृत रुप से महसूस हुई कि हिंदू विधि को भी तुरंत अपेक्षाकृत अधिक युक्तिसंगत आधार पर रखने की आवश्यकता है, जिससे सभी हिंदू समान रुप से भाईचारे के बंधन में बंध जाए और जाति लिंग और पंथ जैसे भेदभाव होने के बावजूद भी एक ही विधि द्वारा शासित किए जा सकें।

1.13 सारांश

इस इकाई में हमने महिलाओं और बालक/बालिकाओं की सुरक्षा तथा उनके सामाजिक संचालन को बेहतर बनाने वाले अधिनियमों को समझा है। बालक/बालिका तथा महिलाओं के खिलाफ समाज में काफ़ी गंभीर मामले हर रोज़ दर्ज किए जा रहें हैं। देश का भविष्य कहलाने वाले बालक/बालिकाओं का स्वयं भविष्य अँधेरे में हैं तथा दूसरी ओर महिलाएं जो आधी आबादी है, उन पर असुरक्षा का ख़तरा मंडरा रहा है। समाज का यह एक खास तबका है, जिसे अत्याधिक सुरक्षा की आवश्यकता महसूस की जाती है। ऐसे में उनके अधिकारों की सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधान एक कवच की तरह काम करते हैं। पिछले दशक से महिलाओं की सुरक्षा के लिए जो कानूनी कवच दिया गया है, वह नई चुनौतियों के आगे अपने को लाचार पा रहा है। ये कानून ठीक तरह से लागू हों, इसके लिए सजग रहना होगा। लेकिन आने वाली सदी में महिलाओं की जगह क्या होगी, इस बारे में एक समग्रदृष्टि विकसित करनी होगी। आज आवश्यकता जरूरत से ज्यादा कानूनों के थोड़े से पालन की नहीं, बल्कि थोड़े से कानून के अच्छी तरह

पालन करने की है। अत: सामाजिक कार्य के अंतर्गत सामाजिक कार्यकर्ता लोगों को इन अधिनियमों से अवगत कराने तथा नियमों के अंतर्गत न्याय प्राप्ति में भरसक सहयोग प्रदान कर सकता है।

1.14 बोध प्रश्न

1. महिलाओं के लिए संवैधानिक प्रावधानों को बताएं।

2. भारतीय दंड संहिता में महिलाओं के सुरक्षात्मक प्रावधानों का विश्लेषण कीजिए।
3. भारत में विवाह संबंधी अधिनियमों में महिलाओं के स्थिति का वर्णन कीजिए।
4. घरेलु हिंसा अधिनयम, 2005 पर निबंध लिखे।
5. बलात्कार संबंधी कानूनी प्रावधानों का विस्तार से वर्णन करें।
6. भारत में बालकों/बालिकाओं की संवैधानिक स्थिति का वर्णन करें।
7. बाल श्रम संबंधी अधिनियम की समीक्षा करें।
8. किशोर न्याय बाल देखभाल एवं सरंक्षण आधिनियम, 2015 पर चर्चा करें।

1.15 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

अहुजा, आ. (2016). *सामाजिक समस्याएं*. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

कुमार, जी. (2013). *समाज कार्य के क्षेत्र*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.

शर्मा, जी. एल. (2015). *सामाजिक मुद्दे*. नई दिल्ली: रावत प्रकाशन.

सिंह आर. पी. (सं.) (2010) *ग्रामीण सामाजिक विकास* (पाठ्यक्रम). *बच्चों महिलाओं और अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों से संबंधित सामाजिक विधान और नीतियाँ* (खंड). दिल्ली: इग्नू

http://www.vivacepanorama.com/sexual-harassment-of-women-at-workplace-prevention-prohibition-and-redressal-act-2013/ retrieved on dated 12 july 2016.

http://www.vivacepanorama.com/criminal-law-amendment-act-2013/ retrieved on dated 12 july 2016.

http://socialwelfare.icdsbih.gov.in/hindi/Policies_Legislations/Policies_Legislations_details.php?grpID=2&PLID=74&SubGroupID=1 retrieved on dated 12 july 2016.

https://hi.wikipedia.org/s/22cc retrieved on dated 12 july 2016.

http://www.archive.india.gov.in/hindi/citizen/lawnorder.php?id=16 retrieved on dated 15 july 2016.

http://www.pravakta.com/hindu-marriage-and-divorce-bill/ retrieved on dated 15 july 2016.

http://pib.nic.in/newsite/hindirelease.aspx?relid=44346 retrieved on dated 25 july 2016.

इकाई- 02 बुजुर्गों एवं विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के लिए प्रावधान

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 वृद्ध तथा बुजुर्ग

2.3 वृद्धों की संवैधानिक सुरक्षा

2.4 वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007

2.5 विभिन्न मंत्रालयों की पहल

2.6 विशेष योग्यजन

2.7 निःशक्त व्यक्ति (अपंग) व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995

2.7.1 अपंगता का निवारण और उसका पता लगाने हेतु उपबंध

2.7.2 शिक्षा हेतु उपबंध

2.7.3 रोज़गार हेतु उपबंध

2.7.4 भेदभाव हेतु उपबंध

2.8 ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहु विकलांगताओं से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999

2.9 मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987

2.10 भारतीय पुनर्वास परिषद

2.11 सारांश

2.12 बोध प्रश्न

2.13 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इसके पहले MSW-03 के खंड-04 अन्य क्षेत्र की इकाई : 03 में वृद्धावस्था सेवाएँ के अंतर्गत बुजुर्गों तथा वृद्धों की समस्याएं तथा उनके कल्याण के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों का सिंहावलोकन किया है। इस इकाई में हम वृद्धों के अधिकारों की सुरक्षा तथा उनके जीवन के बेहतरी के लिए भारत में विनियमित संवैधानिक कानून तथा सामाजिक विधान पर बात करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. वृद्धों की संवैधानिक सुरक्षा से अवगत हो सकेंगे।
2. वरिष्ट नागरिक अधिनियम, 2007 का अवलोकन कर सकेंगे।
3. विशेष योग्यता वाले समूहों के लिए पारित अधिनियमों से अवगत हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

चिकित्सा, न्यूट्रीशन तथा स्वच्छता सुविधाओं के बढ़ोतरी के कारण मानवीय जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy) में वृद्धि हुई है। भारत सरकार की *वृद्ध स्थिति विश्लेषण रिपोर्ट* (2011) में बताया गया है कि 65 प्रतिशत वृद्ध अपनी दैनंदिन सुविधाओं की प्राप्ति के लिए दूसरों पर निर्भर हैं। 20 प्रतिशत वृद्ध महिला जिसमें प्रमुखता से पुरुष आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं। 6-7 प्रतिशत ऐसे वृद्ध पुरुष है जो अपनी पत्नी को आर्थिक सहयोग प्रदान करते हैं। 85 प्रतिशत वृद्धअपने बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं, 2 प्रतिशत अपने नाते-पोते पर आश्रित हैं तथा 6 प्रतिशत अन्य पर आश्रित हैं। वृद्ध महिलाओं में 20 प्रतिशत से कम अपने पति पर निर्भर हैं, 70 प्रतिशत से अधिक अपने बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं, 3 प्रतिशत अपने बच्चों के बच्चों पर तथा 6 प्रतिशत वृद्ध महिलाएं उन लोगों पर निर्भर हैं जो इनके नाते-संबंधी नहीं है। 2002 के आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण इलाके के वृद्ध व्यक्तियों में से 50 प्रतिशत लोगों की मासिक प्रति व्यक्ति खर्च का स्तर 420 रुपये से 775 रुपये के बीच है और शहरी इलाके के वृद्ध व्यक्तियों का 665 रूपये से 1500 रूपये के बीच प्रति व्यक्ति खर्च का स्तर हैं। इतना ही नहीं 75 प्रतिशत से ज्यादा वृद्ध पुरुष और 40 प्रतिशत से कम वृद्ध महिलाएं अपने साथी के साथ जीवन यापन कर रही हैं। बाकी 20 प्रतिशत वृद्ध पुरुष और इसमें से आधी वृद्ध महिलाएं अपने बच्चों के साथ जीवन यापन कर रही हैं। इन आंकडें से पता चलता है कि भारत में वृद्धों की स्थिति कितनी भयावह है।

ऐसे में उनके अधिकारों की सुरक्षा तथा उचित देखभाल के लिए सामाजिक विधान की आवश्यकता महसूस की गई। इसी उद्देश्य के साथ 15 जून को राष्ट्रीय वृद्धजन दिवस तथा वर्ष 2000 को राष्ट्रीय वृद्धजन वर्ष घोषित किया गया तथा वृद्धों के लिए विभिन्न अधिनियमों को पारित किया गया। इस इकाई में हम इसी पर बात करेंगे। इसके पहले हम वृद्ध कौन हैं को संक्षेप में समझेंगे।

2.2 वृद्ध तथा बुजुर्ग

आमतौर पर 60 साल की उम्र का अर्थ होता है वृद्ध। 1999 के भारत सरकार के वृद्ध व्यक्तियों पर राष्ट्रीय नीति में 'वरिष्ठ नागरिक' या वृद्ध से तात्पर्य है 'ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 60 या उससे आगे है।' इसी बात को 2007 में बने वृद्ध अधिनियम में दोहराया गया है। इस अधिनियम के अनुसार 'वरिष्ठ नागरिक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो भारत का नागरिक है और जिसने साठ वर्ष या अधिक आयु प्राप्त कर ली है। इसके बावजूद वैश्विक स्तर पर वृद्धावस्था का वर्गीकरण दो वर्गों में मिलता है-

- साल के आयु मर्यादा 74 साल से 60 दा के व्यक्ति को वृद्ध
- साल से आगे की आयु के व्यक्ति के लिए अतिवृद्ध 75

भाटिया (1983) ने वृद्धावस्था को तीन दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। इस कारण हम इस परिभाषा को छाता परिभाषा (Umbrela Defination) के रूप में देख सकते हैं। इसके अनुसार वृद्धावस्था को तीन आयामों से परिभाषित किया जा सकता है- जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक-सांस्कृतिक।

- जैविक वृद्धावस्था से तात्पर्य है बालों में सफेदी, दातों की हानि और दृष्टी की स्पष्टता का ह्रास।
- मनोवैज्ञानिक रूप से वृद्धावस्था के संदर्भ में तंत्रिका तंत्र का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानसिक क्षमताओं में गिरावट, उनके प्रति दूसरों के दृष्टिकोण और व्यवहार शामिल हैं।
- सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण परिवार, समुदाय और समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति में परिवर्तन और बदलती परिस्थितियों को दर्शाता है। इन परिवर्तनों को माता-पिता की भूमिका, काम से सेवानिवृत्ति, कम आय, रोग, विकलांगता और उनकी जरूरतें शामिल हैं।

वृद्धावस्था स्वयं में एक समस्याग्रस्तता की अवस्था है। इसे दूसरा बचपन भी कहा जाता है। ऐसे में इनके सामने विभिन्न तरह की समस्याएं आती है, जिसका निवारण करने में वे अक्षम पाएं जाते हैं। उन समयाओं के निवारण तथा उचित जीवन-यापन हेतु भारतीय संविधान उनके लिए विभिन्न प्रावधान के अंतर्गत सुरक्षा मुहैया कराता है।

2.3 वृद्धों की संवैधानिक सुरक्षा

भारत के संविधान में वृद्धजनों के कल्याण का प्रावधान है। राज्य के नीति निर्देशित तत्त्व (अनूच्छेद 41) के अनुसार राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास को ध्यान में रखते हुए वृद्धजनों हेतु सरकारी सहायता का अधिकार सुनिश्चित करेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रावधान भी है, जो राज्य को निर्देशित करते है कि वह अपने नागरिकों के जीवन में गुणात्मक सुधार लाएं। हमारे संविधान में समानता का अधिकार एक मौलिक अधिकार है। इसके प्रावधान वृद्धों के लिए भी प्रभावी है और सामाजिक सुरक्षा का दायित्व राज्य एवं केंद्र सरकारों पर समान रूप से है।

पहचान पत्र जारी करना, यातायात में छुट, यातायात में आरक्षण, यातायात गाड़ियों में सुलभ प्रवेश और निर्गमन के लिए आवश्यक परिवर्तन आदि।

सीआरपीसी की धारा 125 के अनुसार सक्षम न्यायाधीश माता-पिता के भरण पोषण प्रावधान के अंतर्गत संतान को उनके माता-पिता की देखभाल की आज्ञा दे सकते हैं।

हिंदू उत्तराधिकार और भरण-पोषण अधिनियम के अनुसार, वरिष्ठ माता-पिता अपनी संतान से वैसे ही रख-रखाव की मांग कर सकते हैं जैसे कि एक पत्नी अपने पति से रखती है।

बहुत पहले आवास में रह रहें है बुजुर्ग माता-पिता को उनके आवास से बिना विहित विधिक प्रक्रिया के नहीं हटाया जा सकता। इसके लिए सीआरपीसी, भरण-पोषण अधिनियम एवं घरेलु हिंसा अधिनियम में प्रावधान किए गए हैं।

2.4 वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007

भारत में 2007 में 'माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण विधेयक' संसद में पारित किया गया। इसमें माता-पिता के भरण-पोषण, वृद्धाश्रमों की स्थापना, चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था और वरिष्ठ

नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा का प्रावधान किया गया है। साथ ही वृद्धों के कल्याण के लिए इस प्रकार के कार्यक्रमों को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए, जो उनमें जीवन के प्रति उत्साह उत्पन्न करे। इसके लिए उनकी रूचि के अनुसार विशेष प्रकार की योजनाएं भी लागू की जा सकती हैं।
जैसे कि इस अधिनियम में लिखा गया है, *संविधान के अधीन गारंटीकृत और मान्यता प्राप्त माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के लिए भरण-पोषण तथा कल्याण के लिए अधिक प्रभावी उपबंधों का और उनसे संबंधित या उनके अनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम* है। इस अधिनियम को 29 दिसंबर 2007 से जम्मू कश्मीर के अलावा संपूर्ण भारत और साथ ही भारत के बाहर भारत के नागरिकों पर लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत *कल्याण* से तात्पर्य है कि *वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक आहार, स्वास्थ्य देखरेख, आमोद-प्रमोद केंद्रों और अन्य सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करना।*
इस अधिनयम में निम्नलिखित बिंदु महत्वपूर्ण हैं-

- माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण
- वृद्ध आश्रमों की व्यवस्था
- वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सकीय देखरेख के लिए उपबंध
- वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा
- अपराध और विचारण के लिए प्रक्रिया

वरिष्ठ नागरिक अधिनियम 2007 के द्वितीय अध्याय में, जो माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक स्वयं के अर्जन से या स्वामित्वाधीन संपत्ति में से भरण पोषण नहीं कर सकते, ऐसे में उनके भरण पोषण के लिए प्रावधान किया गया है। वे अपने बच्चों से अपने रखरखाव के लिए आवेदन कर सकते हैं। तृतीय अध्याय में वृद्धाश्रमों की स्थापना के लिए प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत राज्य सरकार प्रत्येक जिले में कम-से-कम एक वृद्धाश्रम स्थापन करेगी, जिसमें न्यूनतम एक सौ पचास ऐसे वरिष्ठ नागरिकों को आवास सुविधा दी जा सके, जो निर्धन हैं। चतुर्थ अध्याय में वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सकीय देख-रेख के लिए उपबंध हैं, जिसमें यह निहित है कि सरकारी अस्पताल या सरकार द्वारा पूर्णत: या भागत: वित्तपोषित अस्पताल, सभी वरिष्ठ नागिकों को यथासंभव बिस्तर प्रदान करेंगे; उनके लिए पृथक पक्तियों की व्यवस्था चिरंतन, जानलेवा और ह्रासी रोगों के उपचार के लिए सुविधाएं प्रदान की जाएगी अनुसंधान कीए जाएंगे; तथा जराचिकित्सकीय देखरेख में अनुभव रखने वाले चिकित्सा अधिकारी की अध्यक्षता वाले प्रत्येक जिला अस्पताल में जराचिकित्सा के रोगियों के लिए निर्दिष्ट सुविधाएं नि:शुल्क प्रदान की जाएगी।

अध्याय पांच में वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की संरक्षा के लिए प्रावधान है, इसके सुनिश्चिती के लिए राज्य सरकारें उपाय करेंगी। इसके लिए वे जनमाध्यमों के अंतर्गत व्यापक प्रचार करेगी, केंद्रीय और राज्य अधिकारियों को अधिनियम संबधित प्रशिक्षण देना निहित है। अध्याय छह में वरिष्ठ नागरिकों के

प्रति होने वाले अपराध के विरुद्ध दंड का प्रावधान *अपराध और विचारण के लिए प्रक्रिया* के अंतर्गत किया गया है।

इस अधिनियम की धारा 7 में राज्य सरकारों को भरण-पोषण के मामलों के अधिकार क्षेत्र और निबटान के लिए राज्य स्तर पर भरण-पोषण न्यायाधिकरण गठित करने का अधिकार दिया गया है; और भाग 15 में भरण-पोषण न्यायाधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई के लिए अपील न्यायाधिकरण की स्थापना का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम राज्य सरकार को चरणबद्ध तरीके से क्षमतानुरूप हर जिले में वृद्धाश्रमों की स्थापना का दायित्व भी सौंपता है। इसके अलावा यह राज्य सरकार को इस अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियम बनाने की शक्तियां भी प्रदान करता है।

इस कानून के अंतर्गत जिला समाज कल्याण अधिकारी या किसी भी ऐसे अधिकारी को जो जिला समाज कल्याण अधिकारी के पद से नीचे के पद का न हो, किसी भी माता-पिता या वरिष्ठ नागरिक का प्रतिनिधित्व करने का और बच्चों द्वारा या न्यायसम्मत देखरेखकर्ता द्वारा भरण-पोषण या भरण-पोषण सुनिश्चित करने के अधिकार के साथ भरण-पोषण अधिकारी पदनामित करने के लिए कहता है। इस अधिकारी को इस अधिनियम के अंतर्गत गठित भरण-पोषण न्यायाधिकरण या अपील न्यायाधिकरण के सामने वरिष्ठ नागरिक का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार भी होता है।

2.5 विभिन्न मंत्रालयों की पहल

इसके बावजूद भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों द्वारा वृद्धों के लिए विभिन्न तरह की पहल की जा रही है, जो निम्नलिखित है-

विधि एवं कानून मंत्रालय- केंद्र सरकार के विधि एवं कानून मंत्रालय ने भी वरिष्ठ नागरिकों को निशुल्क कानूनी सहायता देने का प्रस्ताव दिया है।

गृह मंत्रालय- सरकारी सहायता प्राप्त विभिन्न योजनाओं तक इनकी पहुंच बनाने के लिए वरिष्ठ नागरिकों को स्मार्ट परिचय पहचान पत्र।

श्रम एवं रोज़गार मंत्रालय- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले वरिष्ठ नागरिकों को राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के तहत बीमा सुरक्षा। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना केंद्र सरकार की योजना है, जो एक अक्तूबर, 2007 को शुरू की गई थी और इसका मकसद गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को 30 रूपए रजिस्ट्रेशन के आधार पर एक वर्ष में 30 हजार रूपए तक की स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना है। इसमें कोई आयु सीमा नहीं है और पुरानी चिकित्सा व्याधियों का इसके तहत उपचार किया जाता हैं।

कार्मिक एवं पेंशन मंत्रालय- कार्मिक एवं पेंशनर कल्याण विभाग ने पेंशनरों को सेवानिवृति लाभ दिलाने के लिए कई प्रयास शुरू किए हैं।

वरिष्ठ नागरिकों के लिए अदालतों में छूट/सुविधाएं

- वृद्धजनों से संबधित केसों को प्राथमिकता और उनका त्वरित निपटारा सुनिश्चित करना।

- सूचना का अधिकार कानून (आरटीआई कानून)।
- वरिष्ठ नागरिकों की और से आरटीआई कानून के तहत दूसरी अपीलों की सुनवाई उच्च प्राथमिकता के आधार पर।

स्वास्थ्य देखभाल सेवा :

- अस्पतालों एवं स्वास्थ्य देखभाल केंद्रों में वरिष्ठ नागरिकों के लिए अलग से लाइनों की व्यवस्था।
- कुछ राज्य सरकारों ने सरकारी अस्पतालों में वरिष्ठ नागरिकों के लिए विशेष क्लिनिकों की स्थापना की है।

वित्त एव कराधान- वरिष्ठ नागरिकों के लिए टैक्स में विशेष छूट तथा अन्य प्रावधान।

बैंकिंग एवं डाकधर- वरिष्ठ नागरिकों को उनकी बचतों पर अधिक ब्याज दर तथा कम बैंकिंग शुल्क।

यातायात

रेल यात्रा- सभी वरिष्ठ नागरिकों के लिए यात्रा 30 प्रतिशत सस्ती, किराए में 50 प्रतिशत छूट, वरिष्ठ नागरिकों के लिए अलग काउंटर/पंक्तियां।

विमान यात्रा- इंडियन एयरलाइंस की साधारण श्रेणी के किराए में 40 से 50 प्रतिशत छूट, वरिष्ठ नागरिकों को अन्य विमान सेवाओं द्वारा इसी तरह की छूटें।

सड़क यातायात- विभिन्न राज्य परिवहन निगमों में आरक्षण एवं छूट।

2.6 विशेष योग्यजन

ज्ञान शांति मैत्री

विशेष योग्यजन शब्द से तात्पर्य क्या है? जब किसी बालक को सीखने समझने में विशेष समस्या उत्पन्न होती है, तो वह बालक विशेष योग्यजन कहलता है। यदि कोई बालक सामान्य बच्चों की तरह देख नहीं सकता है, तो वह दृष्टिहीन विशेष योग्यजन कहलाएगा। इसी प्रकार विशेष योग्यजन मानसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक अथवा शैक्षिक क्षेत्र में रेखांकित किए जा सकते हैं। जिन बच्चों में कोई भी विशेष योग्यता पाई जाती है वह विशेष योग्यजन कहलाता है। विशेष योग्यजन बच्चों का व्यवहार, स्वभाव और शारीरिक संरचना प्रायः स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। विशेष योग्यजन एक ऐसी अवस्था है, जो किसी भी

व्यक्ति को किसी भी आयु में उसके सामान्य व्यवहार, कार्य शक्ति, विचार एवं भाषा को प्रभावित कर शारीरिक, मानसिक, समाजिक एवं भावात्मक असंतुलन पैदा कर देती हैं।

विशेष योग्यजन वे हैं कि जो अपनी व्यक्तिगत, शरीरिक, मानसिक और समाजिक सीमाओं और परिस्थितियों के कारण अपना जीवन सामान्य रुप से बिताने में असमर्थ है। वास्तवतः वे अपनी व्यक्तिगत

समस्याओं के कारण अपना सामान्य जीवन बिना किसी सहायता के नहीं बिता सकते और इस प्रकार असंतुलन एवं असामंजस्य उनके जीवन की विकट समस्याएं बन जाती है। उनका व्यवहार एवं सामाजिक प्रकार्यात्मकता दूषित और कठिन हो जाती है और वे समाज पर भार बन जाते है। एक विकासशील, सजग और प्रजातांत्रिक समाज उनके विकास और पुनर्गठन के उत्तरदायित्व से अपने आपको अलग नहीं रख सकता। इसीलिए उनके आर्थिक, सामाजिक विकास

विशेष योग्यजनता के प्रकार	**व्यक्ति**	**पुरुष**	**महिलाएं**
देखने में	50,32,463	26,38,516	23,93,947
सुनने में	50,71,007	26,77,544	23,93,463
बोलने में	19,58,553	11,22,896	8,75,639
गतिशीलता में	54,36,604	33,70,374	20,66,230
मानसिक विक्षिप्तता में	15,05,624	8,70,708	6,34,916
मानसिक कमजोरी	7,22,826	4,15,732	3,07,094
अन्य	49,27,011	27,27,828	21,99,183
एकधिक विशेष योग्यजनता	21,16,487	11,62,604	9,53,883
कुल	2,68,10,557	1,49,86,202	1,18,24,355

(स्त्रोत जनगणना २०11)

किसी भी प्रकार की असमानता एक अभिशाप है। वर्तमान कानूनों तथा सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र की विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों के बावजूद असमानताओं से ग्रस्त व्यक्तियों को सामाजिक, सांस्कृतिक और दृष्टिकोणगत बाधाओं का सामना करना पड़ रहा रहा है। उनका सामाजिक बहिष्कार, उपेक्षा, भेदभाव, अयोग्य व्यक्तियों के अधिकारों के बारे में बढ़ती हुई जागरूकता के बावजूद जारी है। यदि हम एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाना चाहते हैं, जो न्यायोचित, निष्पक्ष और असमरसतापूर्ण है। इसलिए हमें अपंगता की पारंपरिक अवधारणा को त्यागना होगा और वंचितों के समूह को समाज में उनका उचित स्थान दिलाना होगा।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15, धर्म, नस्ल, जाती लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है। यद्यपि अपंग व्यक्तियों का एक समूह के रूप में इसमें कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी सभी को एक संवैधानिक गारंटी प्राप्त है। विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के अधिकारों कि रक्षा करने के लिए हमारे देश में निम्नलिखित अधिनियम हैं-

2.7 निःशक्त व्यक्ति (अपंग) व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995

भारत सरकार द्वारा पारित अधिनियम में 74 धाराएं हैं, जो 14 अध्यायों में बंटी हुई है। निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 की धारा 2(न), (जिसे पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 1995 के रूप में भी जाना जाता है) विकलांग व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है, जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा यथा प्रमाणित किसी विकलांगता से न्यूनतम 40 प्रतिशत पीड़ित है।

निःशक्तता की परिभाषा

लोकसभा द्वारा निःशक्तजन (समान, अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995 पारित किए जाने के फलस्वरूप दिनांक 1 जनवरी 1996 से लागू किया गया है। इस अधिनियम के लागू होने के साथ ही भारत सरकार तथा राज्य सरकार को इसके प्रावधानों को लागू करने का दायित्व निर्धारित किया गया है।

धारा 2(टी) में निःशक्त व्यक्ति (समान, अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम 1995 के प्रावधानों के तहत 40 प्रतिशत से अधिक निःशक्त व्यक्ति को मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया हो निःशक्त कहा गया है।

अधिनियम के द्वारा प्रत्येक वर्ग के निःशक्तजन की निःशक्तता निर्धारित करने हेतु परिभाषाएं दी हैं, ऐसा कोई भी व्यक्ति, जिसमें 40 प्रतिशत से अधिक निःशक्तता होगी उसे ही केवल निःशक्त माना जाएगा। यह निःशक्तता चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। 'निःशक्तता' से अभिप्रेत है –

(i) अंधता
(ii) कम दृष्टि
(iii) कुष्ठरोगमुक्त
(iv) श्रवण शक्ति का ह्रास
(v) चलन निःशक्तता
(vi) मानसिक मंदता
(vii) मानसिक रूग्णता

निःशक्त व्यक्ति (अपंग) व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 के अनुसार निःशक्तता (अपंगता) 40 प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए।

निःशक्त व्यक्ति नियम 1996 के प्रावधानों के तहत मेडिकल बोर्ड के 3 सदस्यीय दल द्वारा प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में निर्देश जारी किए गए है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2010 में संशोधन किया जाकर मेडिकल बोर्ड में पदस्थ एक चिकित्सक द्वारा ही जिला स्तर पर आवेदक से आवेदन पत्र प्राप्त होने पर प्रमाण पत्र जारी करने हेतु अधिकृत किया गया है। इस हेतु अधिकतम एक माह की समयावधि निर्धारित की है।

उददेश्य

विकलांग व्यक्ति अधिनियम के कार्यान्वयन हेतु विभिन्न कार्यकलापों हेतु, विशेषकर विश्वविद्यालयों, सार्वजनिक भवनों, राज्य सरकार सचिवालयों, राज्य विकलांगता आयुक्त के कार्यालय आदि में बाधामुक्त वातावरण सृजित किए जाने हेतु राज्य सरकारों और केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा संचालित संस्थानों/संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

2.7.1 अपंगता का निवारण और उसका पता लगाने हेतु उपबंध

अधिनियमों, उचित सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों को अपंगता के निवारण हेतु निम्नलिखित कदम उठाने का अधिकार प्रदान करता है:

- अपंगता होने के कारणों की जांच और अनुसंधान
- अपंगता रोकने के लिए विभिन्न प्रणालियों का संवर्धन
- 'खतरे वाले' मामलों की पहचान करने के लिए साल में कम से कम एक बार सभी बच्चों की स्क्रीनिंग
- समस्याग्रस्त लोगों की पहचान करने और उन्हें दिशानिर्देशन करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करना
- अपंगताओं के कारक घटकों हेतु जागरुकता अभियान चलना
- माता और शिशु की प्रसवपूर्व, प्रसव के पश्चात देखभाल के लिए उपाय करना

2.7.2 शिक्षा हेतु उपबंध

विकलांग व्यक्तियों की शिक्षा के लिए उचित सरकार और स्थानीय प्राधिकारीगण निम्नलिखित कदम उठाएं :

- 18 वर्ष की आयु तक प्रत्येक अपंग बच्चे को निशुल्क शिक्षा सुनिश्चित करें

- अपंग छात्रों को सामान्य विद्यालयों में जोड़ना संवर्धित करें
- सामाजिक विद्यालय स्थापित करने को बढ़ावा दें
- विशेष विद्यालयों में व्यावसायिक प्रशिक्षण को बढ़ावा दें
- उन लोगों के लिए अंशकालिक कक्षाएं चलाए, जो पूर्णकालिक आधार पर अपना अध्ययन जारी नहीं रख सकें,
- 16 और उससे अधिक आयु वर्ग के लिए कार्यसाधक साक्षरता प्रदान करने के लिए अंशकालिक कक्षाएं,
- मुक्त विद्यालय या मुक्त विश्वविद्यालयों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करें,
- शिक्षा के लिए आवश्यक विशेष पुस्तकें और उपकरण निशुल्क प्रदान करें,
- विद्यालय जाने के लिए विकलांग बच्चों के लिए परिवहन सुविधाएं प्रदान करें,
- जो विद्यालय, कालेज या अन्य संस्थाएं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर रहे हैं, उनसे ढांचागत अवरोध हटाएं,
- विद्यालय जाने वाले अपंग बच्चों को पुस्तकें, वर्दी और अन्य सामग्री की आपूर्ति करें, तथा
- विकलांग छात्रों के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करें और उनके लाभार्थ पाठ्यक्रम पुनः संरचित करें।

2.7.3 रोज़गार हेतु उपबंध

सामाजिक कार्यकर्ताओं को विशेष योग्य जन व्यक्तियों के बारे में जानने, उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके रोज़गार हेतु इस अधिनियम के उपबंध को जानना चाहिए और अधिनियम के अनुसार उचित सरकारों और स्थानीय प्राधिकारीगण विकलांग व्यक्तियों के रोज़गार हेतु निम्नलिखित कदम उठाएं:

- आरक्षित किए जाने वाले पदों की पहचान करे और प्रत्येक तीन वर्ष में उनकी समीक्षा करें,
- नौकरियों में तिन प्रतिशत से अन्यून आरक्षण,
- विशेष रोज़गार केंद्र
- रोज़गार सुनिश्चित करने के लिए योजनाएं शुरू करें,
- सभी शिक्षण संस्थनों में तीन प्रतिशत सीटों का आरक्षण तथा गरीबी उन्मूलन योजनाएं, अंधों, बधिरों तथा गतिविषयक अपंगता या प्रमस्तिष्कीय पक्षाघात वाले प्रत्येक के लिए एक प्रतिशत।

2.7.4 भेदभाव हेतु उपबंध

अपंगता के आधार पर भेदभाव, जिसका हमारे संविधान में भी उल्लेख नहीं है, की पहचान इस कानून में की गई है, जिसमें सार्वजानिक रोज़गार और सार्वजानिक सुविधाओं की पहुँच के मामलों में अपंगता के आधार पर भेदभाव के विरुद्ध स्पष्ट कानूनी सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं।

2.8 ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहु विकलांगताओं से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999

ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहुविकलांगताओं इत्यादि से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 के अंतर्गत वर्ष 2000 में राष्ट्रीय न्यास की स्थापना की गई थी। यह स्वयंसेवी संगठनों, विकलांग व्यक्तियों की संस्थाओं और उनके अभिभावकों की संस्थाओं के एक तंत्र के माध्यम से कार्य करता है। इसके अंतर्गत देश भर में 3 सदस्य स्थानीय स्तर समितियां स्थापित करने, जहां कहीं आवश्यक हो विकलांग व्यक्तियों हेतु कानूनी संरक्षक तैनात करने का प्रावधान है। राष्ट्रीय न्यास द्वारा 6 वर्ष की आयु तक प्रारंभिक हस्तक्षेप से लेकर गंभीर विकलांगता से ग्रस्त वयस्कों हेतु आवासीय केंद्रों के लिए योजनाओं और कार्यक्रमों के समूह का संचालन किया जाता है।

2.9 मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987

मानसिक रुग्णता से प्रभावित व्यक्तियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण बहुत बदल गया है और अब सार्वभौमिक रूप से महसूस किया जा रहा है कि इस प्रकार की रुग्णता के प्रति कोई कलंक नहीं जुड़ना चाहिए, क्योंकि यह उपचार योग्य है। 19वीं सदी के शुरुवात में मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित पागलपन अधिनियम 1912 का उल्लेख मिलता है, अभी वह अप्रचलित हो गया है। इस अधिनियम ने आधुनिक समाज में अपनी प्रासंगिकता खो चुका है, क्योंकि मनोचिकित्सा के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। इन बीमारियों के प्रकृति को समझते हुए नए स्वरूप में मानसिक रोग ग्रस्त व्यक्तियों के उपचार हेतु बेहतर उपबंधों सहित एक नया विधान लाना आवश्यक है। मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 उसी दिशा में एक कदम है, जो एक लंबे समय से चली आ रही कानूनी कमी को पूरा कर रहा है।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 को मानसिक रूप से रोगी के उपचार और देखभाल से संबंधित कानून को एकत्रित और संशोधित करने के लिए पारित किया गया था, ताकि उनकी संपत्ति और मामलों तथा उनसे संबंधित अन्य आनुषंगिक मामलों के संबंध में बेहतर उपबंध बनाए जा सकें, जिसमें 98 धाराएं हैं, जिन्हें 10 अध्यायों में विभक्त किया गया है और यह सभी राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में लागू होता है। मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 के अंतर्गत भी विशेष योग्यजनों के संरक्षण हेतु कुछ प्रावधान किए गए है। इस के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:

- स्वैच्छिक रूप से इलाज करवाने हेतु इच्छित ज्ञान न रखने वाले एवं इलाज के दौरान निरुद्ध किए गए मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों को मनोचिकित्सालयों एवं नर्सिंग गृहों में भर्ती को नियमित करना एवं इनके अधिकारों को संरक्षित करना।
- मानसिक रूप से अस्वस्थ्य व्यक्तियों से समाज का संरक्षण करना।
- मनोचिकित्सालयों एवं नर्सिंग गृहों में बिना किसी वांछिनीय कारण के विरुद्ध नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना।
- मनोचिकित्सालयों एवं मनश्चिकित्सकीय नर्सिंग गृहों में भर्ती हुए मानसिक रोगियों के अनुरक्षण शुल्कों के उत्तरदायित्व को नियमित करना।
- अपने कार्यों के कारण में असमर्थ मानसिक रोगियों के लिए संरक्षकत्व की सुविधा उपलब्ध कराना।
- मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए केंद्रीय प्राधिकरण एवं राज्य प्राधिकारियों की स्थापना कराना।
- मानसिक रोगियों के लिए स्थापित होने वाले मनश्चिकित्सकीय अस्पतालों एवं मनोचिकित्सकीय नर्सिंग गृहों को लाइसेन्स देने एवं इन पर नियंत्रण करने की शक्तियों को नियंत्रित कराना।
- कुछ विशिष्ट प्रकार के मानसिक रोगियों को राज्य के खर्च पर कानूनी सहायता उपलब्ध कराना।

यह कानून सारे भारतवर्ष पर लागू है, इस कानून के अंतर्गत मानसिक रोगियों के संरक्षण अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा मानसिक रोगियों के इलाज के लिए स्थापित मनोचिकित्सकीय अस्पताल एवं मनोचिकित्सकीय नर्सिंग गृह एवं मानसिक रोगियों के स्वास्थ्य लाभ हेतु स्थापित गृह आते हैं।

अध्याय 2 के अधीन केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों को मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए क्रमशः केंद्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण स्थापित करने की शक्तियां प्रदान की गई हैं।

अध्याय 3 के अधीन केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों को, जैसा ये उचित समझें, उन स्थानों पर मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों के दाखिले और देखभाल के लिए मनोरोग अस्पतालों या मनोरोग उपचर्या गृहों की स्थापन और रखरखाव की शक्तियां प्रदान करता है।

अध्याय 4 के अधीन मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह में दाखिले के लिए प्रक्रियाओं का उपबंध करता है।

अध्याय 5 के अधीन मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह के लिए पाँच से अन्यून आगंतुकों की नियुक्ति का उपबंध करता है, जिनमें से कम-से-कम एक मनश्चिकित्सक या कम-से-कम एक चिकित्सा अधिकारी और दो सामाजिक कार्यकर्ता होने चाहिए। यह ऐसे मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह और उसके रोगियों के प्रबंधन और दशा के संबंध में तीन अन्यून आगंतुकों द्वारा मासिक संयुक्त निरीक्षण

का उपबंध करता है। यह मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति की देखभाल के लिए उसके रिशतेदारों या मित्रों से अभिवचन लेने के पश्चात मनश्चिकित्सक द्वारा प्रमाणित किए जाने पर उस मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह से मानसिक रूप एसआर रुग्ण व्यक्ति की छुट्टी का उपबंध भी करता है, जहां पर ऐसे व्यक्ति को किसी मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह में अवरुद्ध स्थल पर तीन माह में दौरा करेगा और उस पर प्राधिकरण को एक रिपोर्ट तैयार करके देगा, जिसके आदेश से उस व्यक्ति का अवरुद्ध किया गया है।

अध्याय 6 के अधीन संपत्ति रखने वाले कथित मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति के संबंध में परीक्षण, उसकी अभिरक्षा और उसकी संपत्ति का प्रबंधन का दायित्व प्रदान करता है।

अध्याय 7 के अधीन मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह में अवरुद्ध मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति की देखभाल की लागत की पूर्ति हेतु उपबंध करता है।

अध्याय 8 के अधीन मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों के मानव अधिकारों की रक्षा करना है और यह इसकी कानूनी पहचान है। इसमें बताया गया है कि मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति का उपचार के दौरान कोई निरादर या क्रूरता नहीं होगी। इसमें यह भी बताया गया है कि उपचार के दौरान मानसिक रूप से रुग्ण किसी भी व्यक्ति का उपयोग अनुसंधान कार्यों के लिए नहीं किया जाएगा जब तक कि निदान या उपचार के लिए ऐसा अनुसंधान सीधा लाभ नहीं पहुंचता है।

अध्याय 9 के अधीन इस बात का प्रावधान है कि अध्याय 3 के उपबंधों का उल्लंघन करने पर मनोरोग अस्पताल या मनोरोग उपचर्या गृह की स्थापना पर जुर्माना लगाया जाए। मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति को ठीक न रखने पर भी इसमें व्यवस्था है।

ज्ञान शांति मैत्री

2.10 भारतीय पुनर्वास परिषद

भारतीय पुनर्वास परिषद को वर्ष 1992 में संसद के एक अधिनियम के तहत स्थापित किया गया था। पुनर्वास परिषद व्यावसायिकों और कार्मिकों के प्रशिक्षण का नियमन और इसको मॉनीटर करती है तथा पुनर्वास एवं विशेष शिक्षा में अनुसंधान को प्रोत्साहित करती है। साथ ही विशेष योग्यता वाले व्यक्तियों के पुनर्वास और अनुरक्षण के लिए प्रशिक्षण और व्यावसायिक उपकरण उपलब्ध कराती है।

2.11 सारांश

इस इकाई में हमने वृद्धों तथा विशेष योग्यता वाले समूहों के सामाजिक हितों का संरक्षण करने तथा उनके जीवन के बेहतरी के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर पारित अधिनियमों को समझा है। हमने देखा कि बदली हुई मानसिकता के अनुसार अपंगों को देखने का नजरिया भी बदलता गया है। शुरुआत में 'अपंग', नि:शक्तजन तथा अपाहिज जैसे शब्दावली का उपयोग किया गया था, किंतु बाद में अधिनियमों में

संशोधनों के अंतर्गत विशेष योग्यता जन तथा दिव्यांग जैसे पदावली का उपयोग होता हुआ नजर आ रहा है।

दूसरी ओर हमने देखा कि दिन-प्रतिदिन बुजुर्गों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है इस कारण उनकी समस्याएं आज केंद्र में हैं। नए दृष्टिकोणों के कारण सामाजिक अधिनियमों में भी काफ़ी बदलाव तथा संशोधन लगातार जारी है। परिणामत: बुजुर्गों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को बदलने में यह अधिनियम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते नजर आते हैं।

2.12 बोध प्रश्न

1. बुजुर्गों के लिए संवैधानिक उपबंधों पर चर्चा करें।
2. वृद्धों के लिए विभिन्न मंत्रालयों द्वारा की गई पहल को समझाएं।
3. वरिष्ट नागरिक अधिकार अधिनियम पर चर्चा करें।
4. विशेष योग्यजन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उनके लिए संवैधानिक प्रावधानों को समझाएं।
5. मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम,1987 के उद्देश्यों की चर्चा करें।

2.13 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, गिरीश. (सं.) (2013). *समाज कार्य के क्षेत्र*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.

पाण्डेय, बालेश्वर एवं शुक्ला, भारती. (2013). *समाज कार्य एक समग्र दृष्टि*. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान.

मिश्र, वी. के. (2008).*विकलांगों के अधिकार*. नई दिल्ली: कल्याणी शिक्षा परिषद.

कच्छल डी. (प्र.सं.) विकलांगता विशेष अंक. योजना, मई 2016.

राष्ट्रीय वृद्धजन नीति. (1999). नई दिल्ली: सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार.

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007. (2007). राष्ट्रीय नीति. गवर्मेंट ऑफ़ इंडिया.

रथ, हिमांशु. (2013). *विशेष आलेख: भारत में बुजुर्गों के लिए कल्याण योजनाएं*. http://pib.nic.in/newsite/hindifeature.aspx?relid=24606 retrived on dated 10 July 2016.

http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%85%E0%A4%82%E0%A4%A4%E0%A4%B0%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AF_%E0%A4%B5%E0%A5%83%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%A7_%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%B8 retrived on dated 12 July 2016.

http://socialwelfare.icdsbih.gov.in/hindi/Policies_Legislations/Policies_Legislations_details.php?grpID=3&PLID=58&SubGroupID=1 retrived on dated 12 July 2016.
http://socialwelfare.icdsbih.gov.in/hindi/Policies_Legislations/Policies_Legislations_details.php?grpID=3&PLID=59&SubGroupID=1 retrived on dated 13 July 2016.
http://hi.vikaspedia.in/social-welfare/ retrived on dated 22 July 2016
http://www.sparsh.samagra.gov.in/Public/Registration/Act.aspx retrived on dated 22 July 2016
https://hi.wikipedia.org/s/yavमानसिक विकलांगता.
http://hi.vikaspedia.in/social-welfareविकलांगों के लिए राष्ट्रीय नीति.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई- 03 आदिवासियों के लिए कानून

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 अनुसूचित जनजाति के निर्धारण संबंधी विधान
3.3 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक प्रावधान
3.4 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989
3.5 अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015
3.6 पंचायत राज विस्तार अधिनियम (पेसा), 1996
3.7 वन अधिकार कानून, 2006
3.8 सारांश
3.9 बोध प्रश्न
3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. भारत में आदिवासियों की संवैधानिक स्थिति को समझ सकेंगे।
2. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार अधिनियम का अवलोकन कर सकेंगे।
3. आदिवासियों के विकास के लिए बने पंचायत राज विस्तार अधिनियम को समझ सकेंगे।
4. वन अधिकार अधिनियम, 2006 से अवगत हो सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

3.1 प्रस्तावना

भारत में मुख्यधारा से अलग-थलग एक समुदाय दिखता है, जो मैदानी इलाकों से दूर जंगलों, पहाड़ियों में निवास करता है। इनके रहन-सहन के तरीके और तकनीकों की वजह से इन्हें आदिम भी कहा जाता है। इस समुदाय को विभिन्न नामों से भी जाना जाता हैं। जैसे- आदिम, आदिवासी, देशज, मूलनिवासी आदि। भारत का संविधान अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित करते हुए, अनुच्छेद 366(25) अनुसूचित जनजातियों का संदर्भ उन समुदायों के रूप में करता है, जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार, अनुसूचित जनजातियाँ वे आदिवासी या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासियों और आदिवासी समुदायों का भाग या उनके समूह हैं, जिन्हें राष्ट्रपति द्वारा एक सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा इस प्रकार घोषित किया गया है। अनुसूचित जनजातियाँ

देश भर में, मुख्यत: वनों और पहाड़ी इलाकों में फैली हुई हैं। मुख्यधारा से अलग होने के कारण इनमें बहुत बड़ी मात्रा में पिछड़ापन पाया जाता है।

आदिवासी समुदायों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- आदिम लक्षण
- भौगोलिक अलगाव
- विशिष्ट संस्कृति
- बाहरी समुदाय के साथ संपर्क करने में संकोच
- आर्थिक रूप से पिछड़ापन

भारत के संविधान में अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हित और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषणों से उनकी रक्षा के लिए विशेष प्रावधान हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक रणनीति बनाई गई है, जिसका नाम आदिवासी उप-योजना रणनीति है, जिसे पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के शुरू में अपनाया गया था। इस रणनीति का उद्देश्य राज्य योजना के आवंटनों, केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों, वित्तीय और विकास संस्थानों की योजनाओं/कार्यक्रमों में आदिवासी विकास के लिए निधियों के पर्याप्त प्रवाह को सुनिश्चित करना है। इस रणनीति की आधारशिला राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों द्वारा TSP के लिए निधियों का आवंटन उन राज्यों/ केंद्रशासित प्रदेशों में अनुसूचित जनजाति की आबादी के अनुपात में सुनिश्चित करना रहा है। राज्यों/ केंद्र

शासित प्रदेशों और केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों के अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की प्राप्ति के लिए आदिवासी उप-योजना का सूत्रीकरण और कार्यान्वयन करने के अलावा, आदिवासी मामलों का मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों के लाभ के लिए कई योजनाओं और कार्यक्रमों को कार्यान्वयित करता है।

इस इकाई में हम आदिवासी/अनुसूचित जनजातियों के संदर्भ में उनके हितों के लिए बनाए गए अधिनियमों को समझेंगे। इसमें मुख्यत: हम एट्रोसिटी एक्ट, पेसा एक्ट तथा फारेस्ट एक्ट का सिंहावलोकन करेंगे।

3.2 अनुसूचित जनजाति के निर्धारण संबंधी विधान

अनुच्छेद 366 (25) ने अनुसूचित जनजातियों को "ऐसी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासी जातियों और आदिवासी समुदायों के भाग या उनके समूह के रूप में, जिन्हें इस संविधान के उद्देश्यों के लिए अनुच्छेद 342 में अनुसूचित जनजाति माना गया है" परिभाषित किया है। अनुच्छेद 366 (25), जिसे नीचे उद्धृत किया गया है, अनुसूचित जनजातियों के विशिष्टिकरण के मामले में पालन की जाने वाली प्रक्रिया को निर्दिष्ट करता है।

अनुच्छेद 342 के अनुसार राष्ट्रपति, किसी भी राज्य या केंद्रशासित प्रदेश के विषय में, और जहाँ वह राज्य है, राज्यपाल से सलाह के बाद सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा, आदिवासी जाति या आदिवासी समुदायों या आदिवासी जातियों या आदिवासी समुदायों के भागों या समूहों को निर्दिष्ट कर सकते हैं, जो इस संविधान के उद्देश्यों के लिए, उस राज्य या केंद्रशासित प्रदेश, जैसा भी मामला हो, के संबंध में अनुसूचित जनजाति मानी जाएगी।

संसद कानून के द्वारा धारा (1) में निर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में किसी भी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या किसी भी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय के भाग या समूह को शामिल कर या उसमें से निकाल सकती है, लेकिन जैसा कि पहले कहा गया है, इन्हें छोड़कर, कथित धारा के अधीन जारी किसी भी सूचना को किसी भी बाद की सूचना द्वारा परिवर्तित नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार, किसी विशेष राज्य/केंद्रशासित प्रदेश के संबंध में अनुसूचित जनजातियों का पहला विशिष्टिकरण संबंधित राज्य सरकारों की सलाह के बाद, राष्ट्रपति के अधिसूचित आदेश द्वारा किया जाता है। ये आदेश तदनुपरांत केवल संसद की कार्रवाई द्वारा ही संशोधित किए जा सकते हैं। उपरोक्त अनुच्छेद अनुसूचित जनजातियों का सूचीकरण अखिल भारतीय आधार पर न करके राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों के अनुसार करने का प्रावधान भी करता है।

अनुसूचित जनजातियों को विनिर्दिष्टत करने वाले संवैधानिक आदेशों में संशोधन

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम 37) द्वारा 1956 में राज्यों के पुनर्गठन के फलस्वरूप उपरोक्त 2 संवैधानिक आदेश अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम 63) दिनांक 25 सितंबर, 1956 की धारा 4 (i) और 4 (ii) के तहत संशोधित किए गए थे। राज्य पुनर्गठन अधिनियम की धारा 41 और बिहार एवं पश्चिम बंगाल (क्षेत्रों का हस्तांतरण) अधिनियम, 1956 (1956 का 40) का अनुसरण करते हुए, राष्ट्रपति ने अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति सूची (संशोधन) आदेश, 1956 जारी किया। संविधान (अनुसूचित जनजाति) आदेश, 1950 को सूची संशोधन आदेश, 1956 की धारा 3(1) के तहत संशोधित किया गया जबकि संविधान अनुसूचित जनजाति (भाग ग राज्य) आदेश, 1951 को सूची संशोधन आदेश, 1956 की धारा 3(2) के तहत संशोधित किया गया।

3.3 अनुसूचित जनजातियों के लिए संवैधानिक प्रावधान

संविधान का अनुच्छेनद 46 प्रावधान करता है कि राज्य समाज के कमज़ोर वर्गों में शैक्षणिक और आर्थिक हितों विशेषत: अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति का विशेष ध्यान रखेगा और उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से संरक्षित रखेगा। शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण का प्रावधान अनुच्छेद 15(4) में किया गया है। जबकि पदों एवं सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान संविधान के अनुच्छेंद 16(4), 16(4क) और 16(4ख) में किया गया है। विभिन्न 5 क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति के

हितों एवं अधिकारों को संरक्षण एवं उन्नत करने के लिए संविधान में कुछ अन्य प्रावधान भी समाविष्ट किए गए हैं, जिससे कि वे राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ने में समर्थ हो सके।

अनुच्छेद 23 जो देह व्यापार, भिक्षावृत्ति और बालश्रम का निषेध करता है, का अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष महत्व है। इस अनुच्छेद का अनुसरण करते हुए, संसद ने बंधुआ मज़दूर प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 अधिनियमित किया। उसी प्रकार, अनुच्छेद 24 जो किसी फैक्ट्री या खान या अन्य किसी जोखिम वाले कार्य में 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों के नियोजन को निषेध करता है, का भी अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष महत्व है, क्योंकि इन कार्यों में संलग्न बाल मज़दूरों का अत्यधिक भाग अनुसूचित जनजातियों का ही है। संविधान की 5वीं और 6वीं अनुसूचि में उल्लिखित प्रावधानों के साथ पठित अन्य विशिष्ट संरक्षण अनुच्छेद 244 में उपलब्ध हैं।

अनुच्छेद 164(1) उपबंध के अनुसार छत्तीसगढ़, झारखंड, मध्य प्रदेश और उड़ीसा राज्यों में जनजाति के कल्याण का भारसाधक एक मंत्री होगा जो साथ ही में अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण का या किसी अन्य कार्य का भी भारसाधक हो सकेगा।

अनुच्छेद 243(घ) पंचायतों में अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण का उपबंध करता है।

अनुच्छेद 330 लोक सभा में अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण का उपबंध करता है।

अनुच्छेद 332 विधान सभाओं में अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों के आरक्षण का उपबंध करता है।

अनुच्छेद 334 प्रावधान करता है कि लोक सभा और राज्य विधानसभाओं (और लोक सभा और राज्य विधानसभाओं में नामांकन द्वारा एंग्लो-इंडियन समुदायों का प्रतिनिधित्व) में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए सीटों का आरक्षण जनवरी 2010 तक जारी रहेगा।

राज्य विशेष प्रावधान

अनुच्छेद 371(क) नागालैंड राज्ये के संबंध में विशेष प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 371(ख) असम राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 371(ग) मणिपुर राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 371(च) सिक्किम राज्य के संबंध में विशेष प्रावधान करता है।

3.4 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के व्यक्तियों पर अत्याचार या उत्पीड़न को रोकने के लिए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम (The Scheduled Castes and Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989) भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया। यह कानून एस.सी., एस.टी. वर्ग के सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान एवं उनके हितों की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में किए गए विभिन्न प्रावधानों के अलावा इन जाति के लोगों पर होने वाले अत्याचार को रोकने

के लिए 16 अगस्त 1989 को उपर्युक्त अधिनियम लागू किया गया। वास्तव में अछूत के रूप में दलित वर्ग का अस्तित्व समाज रचना की चरम विकृति का द्योतक हैं।

भारत सरकार ने दलितों पर होने वालें विभिन्न प्रकार के अत्याचारों को रोकने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के आलोक में यह विधान पारित किया। इस अधिनियम में छुआछूत संबंधी अपराधों के विरूद्ध दंड में वृद्धि की गई हैं तथा दलितों पर अत्याचार के विरूद्ध कठोर दंड का प्रावधान किया गया हैं। इस अधिनिमय के अंतर्गत आने वाले अपराध संज्ञेय गैरजमानती और असुलहनीय होते हैं। यह अधिनियम 30 जनवरी 1990 से भारत में लागू हो गया।

यह अधिनियम उस व्यक्ति पर लागू होता हैं, जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं हैं और इस वर्ग के सदस्यों पर अत्याचार का अपराध करता है। अधिनियम की धारा 3 (1) के अनुसार जो कोई भी यदि वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति का सदस्य नही हैं और इस वर्ग के सदस्यों पर निम्नलिखित अत्याचार का अपराध करता है, तो कानून के अंतर्गत वह दंडनीय अपराध माना जायेगा-

1. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को जबरन अखाद्य या घृणाजनक (मल मूत्र इत्यादि) पदार्थ खिलाना या पिलाना।
2. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को शारीरिक चोट पहुंचाना या उनके घर के आस-पास या परिवार में उन्हें अपमानित करने या क्षुब्ध करने के उद्देश्य से कूड़ा-करकट, मल या मृत पशु का शव फेंक देना।
3. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को बलपूर्वक निर्वस्त्र करना या उसके चेहरे पर कालिख पोत कर सार्वजनिक रूप में घुमाना या इसी प्रकार का कोई ऐसा कार्य करना जो मानव के सम्मान के विरूद्ध हो।
4. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के आवंटित भूमि पर से गैर-कानूनी ढंग से खेती काट लेना, खेती जोत लेना या उस भूमि पर कब्जा कर लेना।
5. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को गैर-कानूनी ढंग से उनकें भूमि से बेदखल कर देना (कब्जा कर लेना) या उनके अधिकार क्षेत्र की संपत्ति के उपभोग में हस्तक्षेप करना।
6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्य को भीख मांगनें के लिए मजबूर करना या उन्हें बुंधुआ मज़दूर के रूप में रहने को विवश करना या फुसलाना।
7. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्य को वोट (मतदान) नहीं देने देना या किसी खास उम्मीदवार को मतदान के लिए मजबूर करना।
8. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के विरूद्ध झूठा, परेशान करने के उद्देश्या से, पूर्ण अपराधिक या अन्य कानूनी आरोप लगा कर फंसाना या कारवाई करना।

9. किसी लोक सेवक (सरकारी कर्मचारी/ अधिकारी) को कोई झूठी या तुच्छ सूचना अथवा जानकारी देना और उसके विरूद्ध अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुब्ध करने के लिए ऐसे लोकसेवक उसकी विधि पूर्ण शक्ति का प्रयोग करना।
10. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को जान बूझकर जनता की नजर में ज़लील कर अपमानित करना, डराना।
11. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी महिला सदस्य का अनादर करना या उन्हें अपमानित करने के उद्देश्य से शील भंग करने के लिए बल का प्रयोग करना।
12. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी महिला का उसकी इच्छा के विरूद्ध या बलपूर्वक यौन शोषण करना।
13. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले जलाशय या जल स्त्रोतों को गंदा कर देना अथवा अनुपयोगी बना देना।
14. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को किसी सार्वजनिक स्थानों पर जाने से रोकना, रूढ़िजण्य अधिकारों से वंचित करना या ऐसे स्थान पर जाने से रोकना जहां वह जा सकता हैं।
15. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान अथवा निवास स्थान छोड़नें पर मजबूर करना या करवाना।

इस अपराध के लिए दंड का प्रावधान भी किया गया है। ऊपर वर्णित अत्याचार के अपराधों के लिए दोषी व्यक्ति को छह माह से पाँच साल तक की सजा, अर्थदंड (जुर्माना) के साथ प्रावधान हैं। क्रूरतापूर्ण हत्या के अपराध के लिए मृत्युदण्ड की सजा है।

ज्ञान शांति मैत्री

3.5 अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015

26 जनवरी, 2016 से अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के विरुद्ध अत्याचार को रोकने के लिए अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 को लागू किया गया है।

मुख्य अधिनियम अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 में संशोधन के लिए अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन विधेयक 2015 को लोकसभा द्वारा 4 अगस्त 2015 तथा राज्य सभा द्वारा 21 दिसंबर, 2015 को पारित करने के बाद 31 दिसंबर, 2015 को इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल चुकी हैं। 01 जनवरी, 2016 को इसे भारत के असाधारण गजट में अधिसूचित किया गया है। नियम बनाए जाने के बाद केंद्र सरकार द्वारा इसे 26 जनवरी, 2016 से लागू किया गया है।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैः-

- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध किए जाने वाले नए अपराधों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के सिर और मूंछ के बालों का मुंडन कराने और इसी तरह अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के सम्मान के विरुद्ध किए गए कृत हैं। अत्याचारों में समुदाय के लोगों को जूते की माला पहनाना, उन्हें सिंचाई सुविधाओं तक जाने से रोकना या वन अधिकारों से वंचित करने रखना, मानव और पशु नरकंकाल को निपटाने और लाने-ले जाने के लिए तथा बाध्य करना, कब्र खोदने के लिए बाध्य करना, सिर पर मैला ढोने की प्रथा का उपयोग और अनुमति देना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं को देवदासी के रूप में समर्पित करना, जाति सूचक गाली देना, जादू-टोना अत्याचार को बढ़ावा देना, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करना, चुनाव लड़ने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने से रोकना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं का वस्त्र हरण कर आहत करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के किसी सदस्य को घर, गांव और आवास छोड़ने के लिए बाध्य करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पूजनीय वस्तुओं को विरुपित करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य के विरुद्ध यौन दुर्व्यवहार करना, यौन दुर्व्यवहार भाव से उन्हें छूना और भाषा का उपयोग करना आदि शामिल है।
- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य को आहत करने, उन्हें दुखद रूप से आहत करने, धमकाने और अपहरण करने जैसे अपराधों को, जिनमें 10 वर्ष के कम की सजा का प्रावधान है, उन्हें अत्याचार निवारण अधिनियम में अपराध के रूप में शामिल करना। अभी अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों पर किए गए अत्याचार मामलों में 10 वर्ष और उससे अधिक की सजा वाले अपराधों को ही अपराध माना जाता है।
- मामलों को तेज़ी से निपटाने के लिए अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों में विशेष रूप से मुकदमा चलाने के लिए विशेष अदालतें बनाना और विशेष लोक अभियोजक को निर्दिष्ट करना।
- विशेष अदालतों को अपराध का प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करना और जहां तक संभव हो आरोप पत्र दाखिल करने की तिथि से दो महीने के अंदर सुनवाई पूरी करना।
- पीड़ितों तथा गवाहों के अधिकारों पर अतिरिक्त अध्याय शामिल करना आदि शामिल है।

3.6 पंचायत राज विस्तार अधिनियम (पेसा), 1996

आदिवासी समुदायों में स्वालंबन पर आधारित स्थानीय स्वशासन और सार्वजनिक संसाधनों का समुदाय आधारित प्रबंधन एक स्वाभाविक एवं समृद्ध प्रक्रिया रही है। लेकिन आधुनिक प्रशासन की प्रणाली के साथ इसके विभिन्न अंतरविरोधों ने आदिवासी समुदाय के लिए गंभीर चुनौतियां पैदा की हैं। जटिलता यह है कि आधुनिक विकास संबंधी गतिविधियों को नकारा नहीं जा सकता और आदिवासी समुदाय को आगे बढ़ने के अवसर देने के लिए विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का समुचित लाभ मिलना भी आवश्यक है।

इसी उद्देश्य से वर्ष 1993 में पारित 73 वें संशोधन के अंतर्गत देश में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की गई। लेकिन यह महसूस किया गया कि इसके कई प्रावधानों में अनुसूचित इलाकों को ध्यान में नहीं रखा गया है। इस कमी को पूरा करने के लिए सांसद दिलीप सिंह भूरिया के नेतृत्व में एक कमेटी को अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने संबंधी प्रावधान सुझाने का दायित्व सौंपा गया। भूरिया समिति की अनुशंसा के आलोक में संसद ने 1996 में पेसा कानून बनाया। इसका पूरा नाम है – पंचायत राज विस्तार अधिनियम 1996

पंचायती राज मंत्रालय (एमओपीआर) का अधिदेश संविधान, के नौवें भाग, भाग IX क के अनुच्छेद 243 य घ के अनुसार जिला योजना समिति के संबंध में प्रावधान और पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों में पंचायत के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 (पेसा) के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए है।

पांचवीं अनुसूची के क्षेत्र

संविधान की पांचवीं अनुसूची किसी भी राज्य- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के अलावा अन्य राज्य में रहने वाले अनुसूचित जनजाति के रूप में भी प्रशासन और अनुसूचित क्षेत्रों के नियंत्रण के साथ संबंधित है। संविधान की पांचवीं अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों तथा असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के अलावा अन्य किसी भी राज्य में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण से संबंधित है। "पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996" (पेसा), कुछ संशोधनों और अपवादों को छोड़कर संविधान के नौवें भाग को, संविधान के अनुच्छेद 244(1) के अंतर्गत अधिसूचित पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों के लिए विस्तारित करता है। वर्तमान में, 10 राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और तेलंगाना में पांचवीं अनुसूची क्षेत्र मौजूद हैं।

पेसा अधिनियम के अंतर्गत, {अनुच्छेद 4 (ख)}, आमतौर पर एक बस्ती या बस्तियों के समूह या एक पुरवा या पुरवों के समूह को मिलाकर एक गांव का गठन होता है, जिसमें एक समुदाय के लोग रहते हैं और अपनी परंपराओं और रीति-रिवाजों के अनुसार अपने मामलों के प्रबंधन करते हैं।

पेसा अधिनियम, {अनुच्छेद 4 (ग)} के अंतर्गत उन सभी व्यक्तियों को लेकर हर गांव में एक ग्राम सभा होगी, जिनके नाम ग्राम स्तर पर पंचायत के लिए मतदाता सूची में शामिल किए गए हैं।

पेसा ग्राम सभा को निम्न के लिए विशेष रूप से शक्ति प्रदान करती है-

i) (क) लोगों की परंपराओं और रिवाजों, और उनकी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखना, (ख) समुदाय के संसाधन, और (ग) विवाद समाधान के परंपरागत तरीके की रक्षा और संरक्षा

ii) निम्नलिखित कार्यकारी कार्यों को पूरा करना-

सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं को मंजूरी देना, गरीबी उन्मूलन और अन्य कार्यक्रमों के अंतर्गत लाभार्थियों के रूप में व्यक्तियों की पहचान करना, तथा पंचायत द्वारा योजनाओं; कार्यक्रमों और परियोजनाओं के लिए धन के उपयोग का एक प्रमाण पत्र जारी करना।

पेसा उपयुक्त स्तर पर ग्राम सभा/पंचायतों को निम्न लिखित की शक्ति प्रदान करता है-

i) भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और विस्थापित व्यक्तियों के पुनर्वास में अनिवार्य परामर्श का अधिकार।

ii) एक उचित स्तर पर पंचायत को लघु जल निकायों की योजना और प्रबंधन का कार्य सौंपा गया है।

iii) एक उचित स्तर की ग्राम सभा या पंचायत द्वारा खान और खनिजों के लिए संभावित लाइसेंस पट्टा, रियायतें देने के लिए अनिवार्य सिफारिशें करने का अधिकार।

iv) मादक द्रव्यों की बिक्री / खपत को विनियमित करना।

v) लघु वनोपजों का स्वामित्व।

vi) भूमि हस्तांतरण को रोकना और हस्तांतरित भूमि की बहाली।

vii) गांव बाजारों का प्रबंधन।

viii) अनुसूचित जनजाति को दिए जाने वाले ऋण पर नियंत्रण। तथा

ix) सामाजिक क्षेत्र में कार्यकर्ताओ और संस्थानों, जनजातीय उप-योजना और संसाधनों सहित स्थानीय योजनाओं पर नियंत्रण।

पेसा के कार्यान्वयन पर सबसे व्यापक दिशा-निर्देशों को 21 मई 2010 को जारी किए गए थे। दिशा निर्देशों में राज्यों को निम्न सलाहें दी गई हैं:

- आदर्श (मॉडल) पेसा नियमों को अपनाना।
- राज्य पंचायती राज अधिनियमों में पेसा के प्रावधानों के अनुरूप संशोधन।
- खान एवं खनिज, लघु वनोपज, आबकारी, पैसा उधार देने, आदि पर कानूनों, नियमों, कार्यकारी निर्देशों में संशोधन।

- ग्राम सभा को सशक्त बनाना और ग्राम सभा द्वारा पालन करने के लिए 2 अक्टूबर, 2009 को जारी दिशा निर्देशों का अनुपालन।
- मिशन मोड के रूप में ग्राम सभा को सक्रिय करना।
- पंचायत पदाधिकारियों (निर्वाचित प्रतिनिध एवं कर्मचारी) के लिए पेसा पर नियमित प्रशिक्षण का आयोजन।
- पेसा के कार्यान्वयन की समीक्षा करने के लिए मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक अंतर-विभागीय समिति का गठन।
- जनजाति सलाहकार परिषदों और जनजातीय अनुसंधान संस्थानों को सक्रिय करना।
- पांचवीं अनुसूची क्षेत्रों में प्रशासनिक मशीनरी को मजबूत बनाना।
- राज्य निर्वाचन आयोगों को 'गांवों' को परिसीमित करने के लिए अधिदेश।
- वन अधिकार अधिनियम, 2006 में दी गई लघु वनोपजों की परिभाषा को सभी कानूनों और नियमों में शामिल करना।

3.7 वन अधिकार कानून, 2006

इस अधिनियम के पारित होने से पहले हम देखते हैं कि एक सदी से अधिक समय से भारत के वनों की शासन व्यवस्था उन भारतीय वन कानूनों के प्रावधानों के अनुसार की जाती रही है, जो अंग्रेज़ों द्वारा पारित किए गए थे। 1927 का कानून भारत का केंद्रीय वन कानून बना रहा। इन कानूनों का पर्यावरण संरक्षण से कोई लेना-देना नहीं था। इसके बजाय ब्रिटिश शासकों ने इमारती लकड़ी का इस्तेमाल एवं प्रबंधन अपने हाथ में लेना चाहा, जिसके लिए जरूरी था कि सरकार वनों पर अपना अधिकार जमाए और पारंपरिक सामुदायिक वन प्रबंधन की प्रणालियों को दबा दे, जो देश के अधिकतर हिस्सों में लागू थीं।

संसद ने 18 दिसंबर, 2006 को सर्वसम्मति से अनुसूचित जाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) कानून, 2006 पारित किया। 31 दिसंबर, 2007 को इसे लागू करने की अधिसूचना जारी होने के एक साल बाद इसे अधिसूचित किया गया।

कानून की विषय-वस्तु

यह कानून तीन मामलों में एक बुनियादी ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो निम्नलिखित हैं :

पात्रता

इस कानून के तहत पात्रता के दो चरण हैं। प्रथमतः किसी भी दावेदार को यह साबित करना है कि वह 'मुख्यतः वनों का बाशिंदा' है और जीविकोपार्जन के लिए वनों तथा वन-भूमि पर निर्भर है (अपने

वास्तविक जीविकोपार्जन के लिए)। द्वितीयतः दावेदारों को यह साबित भी करना है कि उपर्युक्त स्थिति पिछले 75 साल से बनी हुई है और इस मामले में वे अन्य पारंपरिक वनवासी हैं - धारा 2(ओ), अथवा वे अनुसूचित जाति के हैं और उस इलाके में रह रहे हैं, जहाँ वे अनुसूचित - धारा 2(सी) और 4(1) हैं और वे वनवासी अनुसूचित जनजाति के हैं।

अधिकार

तीन बुनियादी अधिकारों को मान्यता दी गई है :

1. विभिन्न प्रकार की जमीन, जिसकी निर्धारण की आधार तिथि 13 दिसंबर, 2005 है (अर्थात उस तिथि से पूर्व से उस पर उसका कब्जा है और वह उसे जोत रहा है) और यदि कोई दूसरा दस्तावेज उपलब्ध न हो तो प्रति परिवार 4 हेक्टेयर की भू-हदबन्दी लागू होगी।
2. पारंपरिक रूप से लघु वनोत्पाद, जल निकायों, चरागाहों आदि का उपयोग कर रहा हो।
3. वनों एवं वन्य-जीवों की रक्षा एवं संरक्षण। यह वह अंतिम अधिकार है, जो इस कानून का अति क्रांतिकारी पक्ष है। यह उन हजारों ग्रामीण समुदायों के लिए महत्त्वपूर्ण है, जो वन माफियाओं, उद्योगों तथा जमीन पर कब्जा करने वालों के खतरों से अपने वनों तथा वन्य जीवों की रक्षा में लगे हुए हैं। इनमें से अधिकतर वन विभाग की साँठ गाँठ से इस काम को अंजाम देते हैं। पहली बार यह वास्तविक रूप से भावी जनतांत्रिक वन प्रबंधन का द्वार खोलता है और इसकी संभावना पैदा करता है।

प्रक्रिया

कानून की धारा 6 में तीन चरण वाली इस प्रक्रिया की व्यवस्था है, जिसके अनुसार, यह तय किया जाएगा कि किसे अधिकार मिले। प्रथम ग्राम सभा (पूरी ग्राम सभा, ग्राम पंचायत नहीं) सिफारिश करेगी कि कितने अरसे से कौन उस जमीन को जोत रहा है, किस तरह का वनोत्पाद वह लेता रहा है, आदि। यह जाँच ग्राम सभा की वनाधिकार समिति करेगी, जिसके निष्कर्ष को ग्राम सभा पूरी तरह स्वीकार करेगी। ग्राम सभा की सिफारिश भी छानबीन के दो चरणों से गुजरेगी- तहसिल और जिला स्तरों पर। जिला स्तरीय समिति का फैसला अंतिम होगा (धारा 6 (6) देखें)। इन समितियों में छह सदस्य होंगे– तीन सरकारी अधिकारी और तीन निर्वाचित सदस्य। दोनों, तहसिल और जिला स्तरों पर कोई भी व्यक्ति, जो यह समझता है कि दावा गलत है, इन समितियों के सामने अपील दायर कर सकता है और यदि उसका दावा साबित हो जाता है, तो दूसरों को अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा (धारा 6 (2) और 6 (4) देखें)। अंतिम, इस कानून के तहत स्वीकृत जमीन न बेची जा सकेगी और न उसका अधिकार दूसरे को हस्तांतरित किया जा सकेगा।

मूल्यांकन

कानून के पास होने के समय भी इसके लागू करने के लिए हुए आंदोलनों के दौरान इस कानून की अनेक खामियों की ओर सरकार का ध्यान खींचा गया था। इन खामियों में यह बात शामिल है कि मूल रूप से

वन में निवास करने के लिए सिर्फ वे ही पात्र होंगे जिनके घर वनों में होंगे। वनवासियों के बीच भी ऐसी स्थिति मुश्किल से होती है। उनमें से अधिक लोगों के स्थायी घर भू-राजस्व वाली जमीन में होते हैं, जो वास्तव में वन-भूमि में रहते भी थे उनमें से अधिकतर को पहले ही वहाँ से जबरन हटा दिया गया है अथवा वन विभाग ने उनके घर को छोड़कर अपनी चाहरदीवारी बना ली है, ताकि उनसे प्रत्यक्ष संघर्ष को टाला जा सके।

इसके अलावा 75 साल की आवासीय शर्त लगाने के कारण गैर-आदिवासियों के कुछ अति संवेदनशील समूह इस सुविधा से वंचित हो जाएँगे। इनमें वे लोग भी शामिल हैं, जो वन ग्रामों में रहते हैं। अधिकारों की मान्यता देने की प्रक्रिया में उच्चतर समितियों को मिले व्यापक अधिकारों के कारण भ्रष्टाचार की भारी संभावना बनी हुई है। साथ ही कानून में यह स्पष्ट नहीं किया जा सका है कि इस कानून पर अमल के मकसद से जिस ग्राम सभा का उल्लेख है वह वहाँ के वासियों की होगी अथवा पुनर्वास बस्तियों की जो न तो ग्राम पंचायत है और न राजस्व गाँव, क्योंकि यह अपेक्षाकृत बृहत अस्तित्व वाली बस्ती होगी, जिनमें अनेक वास्तविक पुनर्वास बस्तियाँ शामिल होंगी।

इन सारे बिंदूओं पर संयुक्त संसदीय समिति ने अपनी ठोस तथा स्पष्ट सिफारिशें की थी, परंतु सरकार ने उन्हें खारिज कर दिया। ये खामियाँ अब अमल के दौरान उभरकर सामने आ रही हैं, जो मार्च 2008 के दौरान मध्य भारत के अनेक राज्यों में देखने को मिली। कानून की इस अस्पष्टता के कारण अनेक लोग अपने अधिकारों से वंचित हो गए और कुछ क्षेत्रों में वनाधिकार समितियों के गठन में गड़बड़ियाँ करना आसान हो गया।

इन खामियों के बावजूद इस कानून का असर भारत के व्यापक वन क्षेत्रों में अच्छा पड़ा है, जबकि इस पर अमल अभी शुरू ही हुआ है, वन क्षेत्रों में आमूल बदलाव नज़र आ रहा है। वन अधिकार समितियों में गोलमाल करने की कोशिशों का ग्रामीण स्तर पर प्रतिरोध किया जा रहा है, अपने अधिकारों का दावा किया जा रहा है, बेदखली के खिलाफ संघर्ष किया जा रहा है और सामुदायिक वन संसाधनों का सीमांकन किया जा रहा है।

3.8 सारांश

इन अधिनियमों के तहत बदलावों के ठोस परिणाम सामने आने में अनेक वर्षों का समय लगेगा, परंतु मौलिक बदलाव सहज है। डेढ़ सौ साल की अवधि के बाद पहली बार वनवासी समुदायों के जीवन, जीविकोपार्जन तथा घर की जमीन पर किसी का वर्चस्व खत्म हो गया है। अनुसूचित जनजातियों के लिए पारित अधिनियमों में यह खामी देखी गई हैं कि उनके क्रियान्वयन में काफ़ी कमियाँ है। दूसरा कारण यह भी है कि उनके लिए पारित किए गए अधिनियमों में उनका प्रतिनिधित्व न के बराबर है।

आदिवासी स्वयं मुख्यधारा से अलग होने के कारण उनमें जागरूकता तथा आधुनिक समझ की कमी पाई जाती है ऐसे में मैदानी इलाके के लोग उनके लिए, उनके अधिकारों का निर्धारण करने लगते हैं, जो कि

गलत है। बावजूद इसके सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से वे लगातार अपने अधिकारों को प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। हमने जिन अधिनियमों का अध्ययन किया है उनमें भी काफ़ी कमियों को देखा जाता है इस कारण उनकी काफ़ी आलोचना भी हुई है। बावजूद इसके लोकतांत्रिक पहल के अंतर्गत अधिनियम आदिवासियों के अधिकारों के प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3.9 बोध प्रश्न

1. आदिवासियों के अनुसूचित जनजाति में निर्दिष्टिकरण संबंधी विधानों पर चर्चा करें।
2. भारतीय संविधान में निहित अनुसूचित जनजातियों के विभिन्न प्रावधानों को लिखिए।
3. अनुसूचित जनजाति पर होने वाले अत्याचार के रोकथाम के लिए पारित अधिनियमों की समीक्षा करें।
4. पेसा अधिनियम के मुख्य बिंदूओं की चर्चा करें।
5. वन अधिकार कानून, 2006 का मूल्यांकन करें।

3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

शर्मा, जी. एल. (2015). सामाजिक मुद्दे. नई दिल्ली: रावत प्रकाशन.

(1989). *अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त की रिपोर्ट*. नई दिल्ली: भारत सरकार.

चौबे, कमल नयन. (2015). *जंगल की हकदारी: राजनीति और संघर्ष*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

गोपालकृष्णन, शंकर. (2008). *वन अधिकार कानून, 2006 एक सिंहावलोकन.योजना*, सितंबर Retrieved by http://hindi.indiawaterportal.org/node/49138

Press Information Beurou. Gov. of India. (2016, january 25). Retrieved July 17, 2016, from http://pib.nic.in/newsite/hindirelease.aspx?relid=45520

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान. (2016, july 11). Retrieved july 2016, 2016, from http://hi.vikaspedia.in/social-welfare/90592894193894291a93f924-91c92891c93e92493f-91593294d92f93e923/90592894193894291a93f924-91c92891c93e92493f92f94b902-915947-93593f91593e938-915947-93293f90f-93890293594892793e92893f915-92a94d93093e93592793e928

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989. (2016, March 20). Retrieved july 17, 2016, from https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A5%82%E0%A4%9A%E0%A4%BF%E0%A4%A4_%E0%A4%9C%

E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A4%8F%E0%A4%B5%E0%A4%82_%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A5%82%E0%A4%9A%E0%A4%BF%E0%A4%A4_%E0%A4%9C%E0%A

आदिवासियों का सशक्तीकरण. (2016, june 19). Retrieved july 15, 2016, from http://hi.vikaspedia.in/social-welfare/90692693f93593e938940-91593e-93893691594d924940915930923

पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996. (n.d.). Retrieved july 17, 2016, from http://pesadarpan.gov.in/

राजगडिया, विष्णु. (n.d.). Retrieved जुलाई 14, 2016, from http://www.jharkhand-panchayat.org/%E0%A4%86%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A5%80-%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B8-%E0%A4%95%E0%A5%80-%E0%A4%9C%E0%A4%B0%E0%A5%82%E0%A4%B0%E0%A5%80-%E0%A4%B6%E0%A4%B0/

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई- 04 सामाजिक विधान के समकालीन संदर्भ

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 सामाजिक विधान
4.3 सामाजिक विधान के समकालीन संदर्भ
4.4 राष्ट्र-राज्य की भूमिका
4.5 विश्व-व्यवस्था
4.6 समकालीन सामाजिक समस्या और सामाजिक विधान
4.7 वर्तमान समय के ज्वलंत मुद्दे
    4.7.1 तृतीय जन/समलैंगिक
    4.7.2 आरक्षण के मुद्दे
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- सामाजिक विधान के महत्त्व और उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- सामाजिक विधान के समकालीन संदर्भ से अवगत होंगे।
- सामाजिक विधान के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले विभिन्न कारकों की चर्चा कर सकेंगे।
- भारतीय संदर्भ में समकालीन मुद्दों पर बात रख सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रबोधन के बाद विश्व में व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। परिणामत: व्यक्ति के हितों को ज्यादा महत्त्व प्राप्त हुआ। आगे राष्ट्र-राज्य के उभार ने नई अस्मिताओं के निर्माण का रास्ता खोल दिया। राष्ट्र-राज्य के उभार के शुरूआती समय में हम देखते हैं कि इसका स्वरूप कुछ हद तक कल्याणकारिता का था। भारत जैसे औपनिवेशिक जाल में फंसे राष्ट्र के निर्माण को देखें तो पता चलता है कि यहाँ शुरुआत *समाज-सुधार* से हुई थी स्वतंत्रता के बाद वंचितों के कल्याण की बात सामने आ सकी। उस समय संविधान

निर्माताओं ने इसे बखूबी इसे जगह भी दी है। इस समय में वंचितों की सुरक्षा और कल्याण का भार सरकार पर था और इसका निर्वहन करने के लिए स्वतंत्रता के बाद विभिन्न अधिनियमों के आधार पर इसका अनुपालन लगातार किया जा रहा है।

राष्ट्र-राज्य साठ के दशक तक अपनी कल्याणकारिता की भूमिका को निभा रहे थे, परंतु उसके बाद नीती निर्माताओं के सोच में आया परिवर्तन, समाज में असंतोष और अन्य समस्याओं का स्थायी रूप धारण करना, इन सबके कारण समाज में प्रत्येक समूह, समुदाय अपने अधिकार तथा पहचान को लेकर काफ़ी उत्तेजित हो रहे थे। नब्बे के दशक में आते-आते अस्मिताई आंदोलनों ने ज़ोर पकड़ा इसका असर यह हुआ कि समाजिक अधिनियमों को फिर से संशोधित करना पड़ा।

उक्त बातों से पता चलता है कि समाज परिवर्तनशील होता है और उसके संदर्भों में लगातार बदलाव शामिल होते हैं। ऐसे में पुराने मानक किसी काम के नहीं होते, उसकी जगह नए मानक लेते हैं। सामाजिक अधिनियम या विधान बनने की प्रक्रिया के साथ भी यही हुआ है। बदली हुई समाजिक परिस्थितियों ने सामाजिक अधिनियमों को बदलने पर मजबूर किया है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि महिलाओं के साथ बढ़ते अत्याचार के आंकड़ों ने बलात्कार संबंधी कानून में परिवर्तन के लिए मजबूर किया। ऐसे कई सारे संदर्भ हैं, जिसके कारण सामाजिक विधान में काफी परिवर्तन तथा संशोधन लाए/कराए जा रहे हैं। इस इकाई में हम इन्हीं संदर्भों के साथ सामाजिक विधान को समझने की कोशिश करेंगे।

4.2 सामाजिक विधान

समाज की प्रत्येक अवस्था में हम देखते हैं कि समाज का एक वर्ग स्वयं को प्रभु बताता है तथा कुछ विशेष अधिकार (जातिय, जन्मजात, वर्ग आदि के आधार पर प्राप्त अधिकारों) के आधार पर अन्य को दबाता हैं तथा उनके प्राकृतिक अधिकारों का हनन करता है। मार्क्स के अनुसार कहें तो वे समाज को दो वर्गों में विभाजित करते हैं- शोषक और शोषित। सामाजिक रूप से निर्मित इस भेदभाव के कारण कुछ तबके स्वयं को दाबित, दलित, पिछड़ा तथा कमज़ोर मानने लगते हैं।

फ्रांस की क्रांति से उपजे समता, बंधुता तथा स्वतंत्रता जैसे मूल्यों ने समाज को नए सिरे से ढांचागत परिवर्तन के लिए मजबूर किया। लोकंतंत्र का सूत्रपात यहीं से होता हैं। राष्ट्र-राज्य के उदय के पश्चात उसने समाज के इस शोषणकारी व्यवस्था तथा इस भेदभावपूर्ण रवैये पर नकेल कसने के भरसक प्रयत्न किए। राष्ट्र-राज्य को इस प्रक्रिया में जिस महत्वपूर्ण साधन का सहयोग मिला वह कानून, अधियम या विधान कहलाया जाता है। वंचित समूहों के कल्याण के लिए अधिनियम के साथ राज्य का हस्तक्षेप प्रजातंत्र का अनिवार्य पहलु है।

समाज में बढ़ती असमानता को नियंत्रित करने, वंचित समूहों के सुरक्षा तथा कल्याण हेतु राष्ट्र-राज्य कानून बानाता हैं। इन्हें ही सामाजिक विधान कहा जाता है।

होगन एवं इन्नी के शब्दों में कहें तो, "सामाजिक विधान के अंतर्गत सरकारी तंत्र या शासन निकाय द्वारा की जाने वाली कार्यवाही शामिल है, जो ऐसे तत्वों को दूर करती है, जो आपत्तिजनक है और जो इसके बदले कुछ अन्य तत्वों को सामने रखते हैं, जिसके लिए पद्धति के पास कोई प्रावधान नहीं हैं। अत: सामाजिक विधान, असमानताओं को दूर करने का प्रयास करता है, जिससे कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के बजाय पूरे समुदाय को फायदा होता हैं। इस के अंतर्गत समय-समय पर कानूनों को समायोजित किया जाता है, इनमें कुछ और कानून जोड़े जाते हैं और कभी-कभी मौजूदा कानूनों में परिवर्तन भी किया जाता है। इसलिए सामाजिक विधान न केवल व्यक्तियों की सामाजिक दशाओं को सुधारता है, बल्कि निश्चित समयावधि में समाज की मांग/अपेक्षाओं और मौजूदा कानूनों के बीच की दूरी भरने में सेतु का भी काम करता है।"

सामाजिक विधान का महत्त्व

- सामाजिक विधान और अन्य विधानों में अंतर है, क्योंकि सामाजिक विधान का मुख्य ज़ोर मानवतावादी और समतावादी सिद्धांतों को ध्यान में रख कर सामाजिक न्याय स्थापित करने वाली विधायी नीतियों को मुख्य रूप से उजागर करता है।
- समाज के गरीब, उत्पीड़ित और सुविधावंचित वर्गों की सहायता के लिए सामाजिक विधान सृजित किया गया है।
- शोषण को दूर करना, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय दिलाने के लिए सामाजिक अधिनियम का भरसक प्रयास रहता है।

सामाजिक विधान के दो बुनियादी कार्य हैं-

1. सामाजिक संबंध का क्रमबद्ध समंजन प्रदान करना, तथा
2. समाजी इकाई में सभी व्यक्तियों के कल्याण करना और उन्हें सुरक्षा प्रदान करना।

सामाजिक विधान का मुख्य उद्देश्य यह है-

समाज में समानता स्थापित करना और समाज की आवश्यकताओं की और ध्यान देना तथा सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन या असमानताएं पैदा करने वाले तत्वों की रोकथाम करना।

4.3 सामाजिक विधान के समकालीन संदर्भ

सामाजिक विधान को समझते हुए हमने यह जाना कि सामाजिक विधान समाज के वंचितों के हितों के लिए क्रियान्वित किए जाते हैं। ऐसे में समकालीन संदर्भ का असर उस पर अनिवार्य रूप से होता है। जैसे कि हमने इकाई की प्रस्तावना में ही बात की है कि राष्ट्र-राज्य की भूमिका का असर सामाजिक अधिनियम पर पड़ता हैं। वैसे ही सामाजिक समस्याओं, राजनैतिक-अर्थशास्त्र, विचारधारा आदि कारक

सामाजिक विधान के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभातें है। इसे निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर हम समझने की कोशिश करेंगे।

4.4 राष्ट्र राज्य की भूमिका

सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दियों को यूरोप में 'पूर्व आधुनिक' काल मान लिया गया है, क्योंकि इस काल में राष्ट्र-राज्यों की स्थापना हुई और एशिया, अफ्रीका व अमेरिका में उनका विस्तार हुआ। आधुनिकता का आरंभ आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिक क्रांति और राजनैतिक क्षेत्र में फ्रांसीसी क्रांति से माना जाता है। इसकी शुरूआत उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया से हुई, जिससे औद्योगिकरण को बल मिला। इसी पूँजीवादी औद्योगिकरण के कारण उत्पादन के सभी संबंध बदल गए। उत्पादन के तरीके बदले और समाज में ऐसे नए वर्गों का उदय हुआ, जिसकी प्रतिष्ठा पुरातन और पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक जीवन से जुड़ी हुई नहीं थी। यही वर्ग आधुनिकता के प्रसार का माध्यम बना।

फ्रांसीसी क्रांति के कारण राजनीति में भागीदारी व्यापक हुई और शासन को प्रभावित करने की संभावनाओं का जन्म हुआ। इससे गणराज्य के विचार की उत्पत्ति हुई। लोकतंत्र का प्रथम अनुभव हुआ और समाजवाद व उदारवाद जैसी विचारधाराओं की नींव रखी गई। इसी से राष्ट्र-राज्य का उदय हुआ, जो भाषा, क्षेत्र और संस्कृति पर आधारित माना गया। वर्तमान में ज्यादातर राष्ट्र-राज्यों ने लोकतंत्र प्रणाली को अपनाया है। राजनीति के क्षेत्र में समानांतर प्रक्रिया को लोकतंत्रीकरण कहा गया है। लोकतंत्रीकरण का अर्थ है- राज्य का केंद्रीकरण एवं राजनैतिक नेतृत्व की प्रजा के प्रति जवाबदेही। प्रजा की परिभाषा यहाँ नागरिक के रूप में की गई। नागरिक राजनैतिक प्रणाली में भाग लेकर राज्य को मात्र सैद्धांतिक रूप में नियंत्रण करते हैं। इस प्रकार राज्य नागरिकों की आवश्यकता पूरी करने का अतिरिक्त भार अपने ऊपर ले लेता है।

भारतीय संदर्भ में देखे तो ओपनिवेश से स्वतंत्रता के बाद यहाँ लोकतंत्र स्थापित हुआ। इस समय में भारतीय संविधान ने ज़्यादातर औपनिवेशिक अधिनियमों को कुछ सुधार के साथ आगे बढाया। कुछ अधिनियम जस के तस आगे बढाए गए। नतीजतन उस समय के राष्ट्र निर्माणकर्ताओं ने जिस भारत के निर्माण के लिए यह सब कुछ किया था उसे स्थिरता प्रदान करने में वे नाकाम रहें। परिणामत: युवा असंतोष जैसी चीजे सामने आने लगी स्वतंत्रता पूर्व समस्याओं ने नया रूप धारण कर लिया था। इससे निपटने के लिए शुरुआत में तो राष्ट्र-राज्य की भूमिका कल्याणकारी राज्य की तरह थी, किंतु बाद में इसमें काफ़ी परिवर्तन आते गए और विचारधारात्मक परिवर्तनों के कारण सामाजिक नीतियों में भी परिवर्तन हुए, जिसका असर सामाजिक अधिनियमों पर भी पड़ा। जैसे कि 1974 के पहले तक बालकों के प्रति राष्ट्र-राज्य ज़्यादा सजग नहीं था, किंतु साठ के दशक के बाद की उथल-पुथल के बाद 1974 में बाल नीति बनाने के लिए उसे मजबूर होना पड़ा। आगे बालक/बालिकाओं के बढ़ते शोषण के प्रति सामाजिक विधान के लिए 21वीं सदी तक राह देखनी पड़ी।

भारत को विविधता में एकता वाला देश माना जाता है, जहां विभिन्न धर्म, जाति समूह के लोग निवास करते हैं। ऐसे में उन सबको एक साथ बनाएं रखते हुए उनके अधिकारों का संरक्षण बड़ा जटिल कार्य है किंतु हम विवाह अधिनियम के संदर्भ देखते हैं कि हिंदू विवाह अधिनियम, मुस्लिम विवाह अधिनयम तथा क्रिश्चन विवाह अधिनियम के तहत उनके इस अधिकार का संरक्षण सरकार बखूबी वहन कर रही हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि जिस तरह का चरित्र राष्ट्र-राज्य का होगा उसी के आधार पर वहां सामाजिक अधिनयम का निर्माण भी होता है।

4.5 विश्व-व्यवस्था

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शांति स्थापना के लिए वैश्विक स्तर पर प्रयास किए गए जिससे परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण हुआ। UNO, UNESCO, UNDP, WHO, तथा विश्व बैंक आदि इसी संदर्भ में बने वैश्विक संगठन हैं। इनके अपने अलग-अलग उद्देश्य हैं, किंतु मूल उद्देश्य विश्व में संतुलन बनाएं रखना है। इसके लिए वे लगातार कार्यरत रहते हैं। सूचना प्रणाली के विकास के बाद मानो पूरा विश्व सिमट गया है। इस कारण विभिन्न समाजों में आपसी मेल-जोल बढ़ गया है। विचारों के आदान-प्रदान में शीघ्रता आ गई है। इसका असर यह हुआ है कि समूचा विश्व एक व्यवस्था में बंध गया है। उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण के साथ पूरा विश्व एक दूसरे के साथ जुड़ गया है। इन सभी कारकों का असर आम लोगों पर पड़ना लाजमी है।

हम देखते हैं, वैश्विक स्तर पर होने वाले बदलाओं का असर भारत के विभिन्न समूहों पर भी पड़ने लगा हैं। उदाहरण के लिए समलैंगिकता का मामला देखते हैं। इसके बारे में विश्व भर में विभिन्न देशों में समलैंगिकता को कानून के अंतर्गत मान्यता मिल रही हैं। इसका असर हम भारत में भी देखते हैं। भारत में भी यह मांग उठ रही हैं कि समलैंगिकता को कानून के तहत अनुमति प्रदान की जाए।

दूसरे मामले में हम देखते हैं कि *विकिलीक्स* द्वारा दुनियाभर के भ्रष्ट नेताओं की सूचि सामने आने के पश्चात भारत में भष्टाचार विरोधी आंदोलनों को प्रेरणा मिली और ठंडे बसते में पड़े लोकपाल को पुनर्जीवित किया गया, परिणामत: लोकपाल विधेयक पारित हुआ। ऐसे कई सारे मामले हैं, जिसके संदर्भ वैश्विक व्यवस्था के साथ जुड़ते हैं।

4.6 समकालीन सामाजिक समस्या और सामाजिक विधान

वर्तमान समाज को कई विद्वान उत्तराआधुनिक समाज के रूप में व्याख्यायित करते हैं। इसके बावजूद औद्योगिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि उत्तरऔद्योगिकता के द्वार पर समाज खडा है। पुराने मानक ढहते नजर आ रहे हैं। ऐसे में समस्याएं भी नए-नए रूपों में सामने आ रही हैं। एक समय था जब सती प्रथा को एक सामाजिक समस्या के रूप में मानकर लोगों ने सती प्रथा का विरोध किया। फलस्वरूप 1929 में इसके निषेध के लिए अधिनियम पारित हुआ। किंतु आज सती प्रथा जैसी समस्या नहीं रही है, किंतु महिलाओं

की समस्याओं ने नया रूप धारण कर लिया है, जिसके कारण उन पुराने अधिनियमों में संशोधन की मांग की जा रही है।

बलात्कार के संदर्भ में हम देखते हैं कि इस समस्या के संबंध में 1974 से पहले का आंकड़ा एनसीआरबी द्वारा उपलब्ध नहीं होता है। इसका यह मतलब नहीं कि इससे पहले बलात्कार नहीं होते होंगे। ज़रूर होते होंगे, परंतु उसके प्रतिरोध में कार्यवाही नहीं होती होगी या उस समय के लोग ज़्यादा सजग नहीं होंगे। बाद में हम देखते हैं कि बलात्कार के अपराधों पर रोक लगाने के संदर्भ में एक अधिनियम पारित होता हैं। हम आगे 'निर्भया मामले' में देखते हैं कि यह अधिनयम कितना आधा-अधूरा है। इसकी कमी को पूरा करने के लिए 2013 में संशोधन करवाने की मांग को समझते हुए उसमें काफ़ी हद तक परिवर्तन भी किए गए हैं। महिला आन्दोलनों की तीव्रता का ही असर है कि 2005 में घरेलु हिंसा अधिनियम, 2013 तथा कार्यस्थल पर महिला यौन उत्पीडन: विशाखा दिशा-निर्देश तथा अधियम, 2013 आदि महिलाओं के सुरक्षा हेतु पारित किए गए।

सन 2000 के उपरांत भारत में विभिन्न मुद्दों पर हुए आंदोलनों पर खुलकर बहस हुई। इसी कारण सामाजिक नए-नए सामाजिक अधिनियमों को पारित किया गया। वर्ष 2005 में सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम सूचना का अधिकार पारित किया गया। इसी साल घरेलु हिंसा अधियम भी पारित किया गया। सन 2006 में आदिवासियों के वन अधिकारों को प्रदान करने वाला वन अधिनियम पारित हुआ। सन 2013 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम पारित किया गया। इसी साल भ्रष्टाचार के रोकथाम के लिए *भ्रष्टाचार: लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम,2013* लागू हुआ। इन सबके बावजूद सरोगेसी, मानवाधिकार, पर्यावरण, अस्मिता आदि मुद्दे केंद्र में बने हुए हैं। सूचना के अधिकार के बाद, खाद्य का अधिकार तथा अब स्वास्थ्य का अधिकार की मांग भी तेज हो रही हैं।

अधिनियमों में कानून बनाने से बेहतर हैं कि उसे अधिकार के रूप में घोषित किया जाए, क्योंकि अब यह विचार तेज हो रहें हैं कि ये सब अपने अधिकार हैं।

4.7 वर्तमान समय के ज्वलंत मुद्दे

जैसे कि हमने ऊपर बात की है, इस समय के सामाजिक आंदोलन सुरक्षा या मुआवजा पाने के लिए नहीं है, बल्कि अधिकार प्राप्ति के लिए हैं। नई अस्मिताओं के उभार के पश्चात वे समूह अपने अधिकारों की मांग के लिए खुल कर सामने आ रहें हैं। जैसे कि तृतीय जन, समलैंगिक आदि समूह। इसी के साथ आरक्षण के मुद्दे लगातार गरमाते रहें हैं। इस संदर्भ में राजस्थान के गुर्जर एवं गुजरात के पटेलों का मुद्दा महत्वपूर्ण हैं। इन मुद्दों को हम निम्नलिखित रूप से देखेंगे।

4.7.1 तृतीय जन/समलैंगिक

समलैंगिक से तात्पर्य है, समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग या सेम सेक्स की इच्छा रखने वाले लोग। यह जरूरी नहीं कि समलैंगिक इच्छा रखने वाले लोग अपनी पहचानों (जैसे- औरत, मर्द, दलित, हिंदू, मुसलमान इत्यादि) में यौनिकता से जुड़ी पहचान भी शामिल करें। जो लोग अपनी पहचान को यौनिकता से जोड़ते हैं जैसे गे, लेस्बियन इत्यादि, उनमें ज्यादातर ऐसे लोग हैं जिन्हे इस तरह की पहचान के बारे में जानकारी है। तृतीय पंथी समुदाय समाज का सबसे वंचित वर्ग माना जाता है।

वर्तमान समय में विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर एल.जी.बी.टी. अधिकार या यौनिक अधिकारों पर काम किया जा रहा है। यह देखा जाता रहा है कि यौनिक अल्पसंख्यको के साथ सरकार तथा लोगों द्वारा भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जा रहा है। ऐसे मामले भी प्रकाश में आए हैं जो गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन की स्थिति को दर्शाते हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने 11 दिसंबर 2013 को अपने एक फैसले में देश में होमोसेक्शुअलिटी को गैर-कानूनी मानते हुए इसे सेक्शन 377 के तहत अपराध करार दिया था। अपने फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली हाईकोर्ट के फैसले को दरकिनार कर दिया था जिसमें सेक्शन 377 को अपराध की श्रेणी से हटाया गया था। सुप्रीम कोर्ट के फैसले से भारत के एलजीबीटी समुदाय के लोगों को करारा झटका लगा था।

तृतीय जनों के प्रति सरकारी रवैया कुछ इस प्रकार है-

भारतीय दंड संहिता, धारा 377 (अप्राकृतिक अपराध): "जो भी कोई स्वेच्छा से किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कामुक संभोग करता है, उसे आजीवन कारावास या फिर 10 वर्षों तक बढ़ाई जा सकती है और जुर्माना भी हो सकता है।"

धारा 377 की मुख्य बातें- धारा यह स्पष्ट नहीं करती कि 'अप्राकृतिक' यौन में क्या-क्या शामिल हैं, न ही यह सहमति युक्त तथा जबरन यौन आचरण में कोई फर्क करती है।

- धारा के तहत यह स्पष्ट कहा गया है कि 'लिंग प्रवेश यौनिक संभोग को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।' इस व्याख्या के कारण इसमें मुख व गुदा भी शामिल हो जाता है।
- विषम-लैंगिक के संदर्भ में मुख व गुदा मैथुन, शादी के अंतर्गत भी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है।
- पूरे भारतीय कानून में यौनिक भिन्नता को कहीं भी मान्यता नहीं मिली हुई है।
- यह धारा भिन्नता पर एकरूपता थोपती है और इस तरह यह भिन्न यौनिकता का अपराधिकरण करती है।

मानव होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपने क्षमताओं का विकास करते हुए सम्मान तथा आत्मनिर्णय के अधिकारों के आधार पर अपना जीवन-यापन कर सके। वर्तमान में, भारत में एल.जी.बी.टी. के अधिकारों से संबंधित गैर-सरकारी संगठनों का कार्य जोरों पर है। परिणामत: भारत में तृतीय पंथी जन के अधिकारों से संबंधित मुद्दे ने एक नए आंदोलन का रूप धारण किया है।

4.7.2 आरक्षण के मुद्दे

आरक्षण को लेकर भारत में हाल ही में हुए दो आंदोलन प्रमुख हैं- राजस्थान के गुर्जर समुदाय का आन्दोलन तथा गुजरात के पटेलों का आंदोलन। यह आंदोलन इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन आंदोलनों में आरक्षण की मांग को लेकर बड़ी मात्रा में हिंसा भी हुई है। साल 2006 में भी गुर्जर आंदोलन सुर्खियों में रहा था। 2007 में भी चले आंदोलन में 23 मार्च को पुलिस कार्रवाई में 26 लोग मारे गए थे। 2008 में भी ये आंदोलन फिर से चल पड़ा। दौसा से भरतपुर तक पटरियों और सड़कों पर बैठे गुर्जरों ने रास्ता रोके रखा। पुलिस की कार्रवाई में उन दिनों 38 लोग मारे गए।

देश भर में उत्तर-पश्चिमी भारत के कई राज्यों में गुर्जर समुदाय के क़रीब साढ़े पांच करोड़ लोग हैं। इनमें 11 फ़ीसदी, यानी क़रीब 6 लाख लोग राजस्थान में हैं। जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश में इन्हें अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल है। जबकि राजस्थान में वो ओ.बी.सी. में आते हैं और इस तौर पर उन्हें आरक्षण के फ़ायदे मिलते हैं।

लेकिन गुर्जर समुदाय को लगता रहा है कि उन तक पिछड़ा वर्ग के लाभ पहुंच नहीं पा रहे। उनकी मांग है कि उन्हें आदिवासियों में शामिल किया जाए। हालांकि इस मांग के ख़िलाफ़ राज्य का मीणा समुदाय भी आंदोलन कर चुका है, जिसे लगता है कि अगर गुर्जरों को आदिवासी मान लिया गया, तो उनके हक़ मारे जाएंगे।

फिलहाल राजस्थान में गुर्जरों के आंदोलन को विश्राम मिला है। सरकार ने कानून बनाकर उन्हें विशेष पिछड़ा वर्ग के तौर पर 5 फीसदी आरक्षण देने का वादा किया है। केंद्र सरकार और आंदोलनकारियों की बातचीत के बाद ये फ़ैसला हुआ है।

दूसरी ओर गुजरात के पटेल समुदाय ने गुर्जरों से प्रेरणा लेते हुए जुलाई 2015 में अपने *पाटीदार आरक्षण आंदोलन* की शुरुआत की। पाटीदार समुदाय जिसे पटेल उपनाम से भी जाना जाता है, के युवाओं ने जुलाई, 2015 से सार्वजानिक आंदोलन शुरू कर दिया। इन्हें सामुदायिक सेवा में लगे संगठन, सरदार पटेल सेवादल का समर्थन प्राप्त है। युवा सरकारी नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण के लिए अपने समुदाय का नाम भी अन्य पिछड़ी जातियों में चाहते हैं। पटेल आरक्षण आंदोलन के दबाव के मद्देनज़र गुजरात की भाजपा सरकार ने सामान्य वर्ग में पाटीदारों सहित सभी आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण देने का एलान किया है। घोषणा के मुताबिक, छह लाख रूपए से कम सालाना आय वाले परिवार आरक्षण के पात्र होंगे।

महाराष्ट्र में भी मराठाओं को आर्थिक आधार पर आरक्षण देने की बात चली है, किंतु इस पर अमल होना बाकी है। ऐसे कई सारे मामले देखे जा रहें हैं, जिनमें जातियां, समुदाय अपने उन्नति के लिए, सामाजिक-आर्थिक स्तर पर आरक्षण की मांग कर रही हैं।

इन सबके बावजूद भारत में समकालीन स्थितियों में विभिन्न सामाजिक मुद्दे उभरते हुए दिखते हैं। सूचना क्रांति के बाद समस्याओं में और भी इजाफा हो गया है। जल, जमींन और जंगल, जैसे बुनियादी

अधिकारों के साथ-साथ सायबर अधिकार की बात भी सामने आ रही हैं। स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दे आगे आने लगे हैं, उसपर नीतियाँ बनाने की प्रक्रिया तथा संशोधन में तीव्रता आ रही हैं। स्वास्थ्य सुरक्षा के बाद आज स्वास्थ्य अधिकार की बात की जा रही है। बाल श्रम को नए संशोधनों के अंतर्गत फिर से व्याख्यायित किया जा रहा है।

इसके बावजूद राजनीति, जातिवाद, लिंगभेद, नव-उदारवाद और सांप्रदायिकता जैसी गलत धारणाओं के कारण कुछ समूहों का लगातार शोषण आज भी जारी है। इसके संदर्भ में कई अधिनियमों की आलोचना भी हो रही हैं। वन अधिकार कानून तथा बाल श्रम अधिनियम में 2016 में किया गया संशोधन समाज को गलत दिशा में ले जा रहें हैं। ऐसे मामलों में सामाजिक कार्यकर्ता लोगों को जागरूक कर उन्हें सही राह दिखाने का कार्य कर सकता है तथा सही दिशा में जनमत जुटाने का कार्य भी उसे करना होगा.

4.8 सारांश

इस इकाई में हमने आधुनिकता तथा राष्ट्र-राज्य के उदय के साथ लोकतंत्र में निहित प्रकिया को समझने की कोशिश की है। इसी आलोक में आगे हमने सामाजिक विधान को भी समझने की कोशिश की है। सामाजिक विधान के उद्देश्य तथा उसकी आवश्यकता को समझा। दूसरी ओर हमने सामाजिक अधिनियम के निर्माण में शामिल तथा उसकों प्रभावित करने वाले समकालीन संदर्भों पर भी बात की है। इन सबके बावजूद भारतीय जनमानस में न्याय की प्राप्ति के लिए लगातार आंदोलनों की तादाद बढ़ रही है। उनमें से आर्थिक आधार पर आरक्षण प्राप्त कर समुदाय की उन्नति करने वाले आंदोलन महत्वपूर्ण हैं। इसे भी हमने संक्षेप में समझा है।

समकालीन संदर्भ में जिस तरह के मुद्दे उभर रहें हैं उसी के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता को अपनी भूमिका में परिवर्तन लाना आवश्यक हैं। जनहित याचिका, सूचना का अधिकार आदि हथियारों के साथ-साथ सामाजिक विधान के निर्माण में भी इन्हें प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता है।

4.9 बोध प्रश्न

- सामाजिक विधान के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए उद्देश्यों पर चर्चा कीजिए।
- सामाजिक विधान के संदर्भ में राष्ट्र-राज्य की भूमिका का वर्णन कीजिए।
- सामाजिक अधिनियमों पर वैश्विक प्रभावों की चर्चा कीजिए।
- भारतीय संदर्भ में नए सामाजिक मुद्दों की समीक्षा कीजिए।

4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

हाब्सबाम, ए.जे. (1996) *अतिरेकों का युग (एज ऑफ एक्ट्रीमस, 1914-1991).* न्यूयार्क: ब्रिटेन, दिल्ली : Reprinted 2009 संवाद प्रकाशन.

Gangrade, k. d.(1978). *Social Legislation in India.* New Delhi: Concept Publishing Co..

योजना आयोग. (1956). *सामाजिक विधान: सामाजिक कल्याण में इस भूमिका.* नई दिल्ली: भारत सरकार.

Jansatta. (2016, April 29). Retrieved July 28, 2016, from www.jansatta.com: http://www.jansatta.com/rajya/gujarat-announces-10-per-cent-ebc-quota/90030/

khabar.ndtv. (2015 , August 28). Retrieved July 28, 28, from http://khabar.ndtv.com: http://khabar.ndtv.com/news/india/gujjars-call-off-agitation-after-rajasthan-government-agrees-to-5-quota-in-jobs-766817

पाटीदार आरक्षण आंदोलन. (2016, April 23). Retrieved July 28, 2016, from https://hi.wikipedia.org: https://hi.wikipedia.org/s/8k6e

मधोक, अ. (n.d.). Virtual Learning Environment. Retrieved July 26, 2016, from अवधारणा एवं परिकल्पनाएं : समकालीन युग: आधुनिकता पूँजीवादी, औद्योगिकरण, साम्राज्यवाद: http://vle.du.ac.in/mod/book/view.php?id=8713&chapterid=11869

(2009). सामाजिक विधान. In ए. डी. राव (Ed.). दिल्ली : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय.

ज्ञान शांति मैत्री